CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहजानन्द वाणी

- मनोहर जी वर्णी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4900

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहजानन्द वाणी

4900

—मनोहरजी वर्णी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक—
सहजानन्द शास्त्रमाला
185, रंजीतपुरी
सदर मेरठ—1

© प्रकाशकाधीन

तृतीया संस्करण 1994
मूल्य : बारह रूपये

सम्पादक :
सुमेर चन्द जैन
(सम्पादक वर्णी प्रवचन मासिक)

मुद्रक -
विमल ऑफसैट
मेरठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

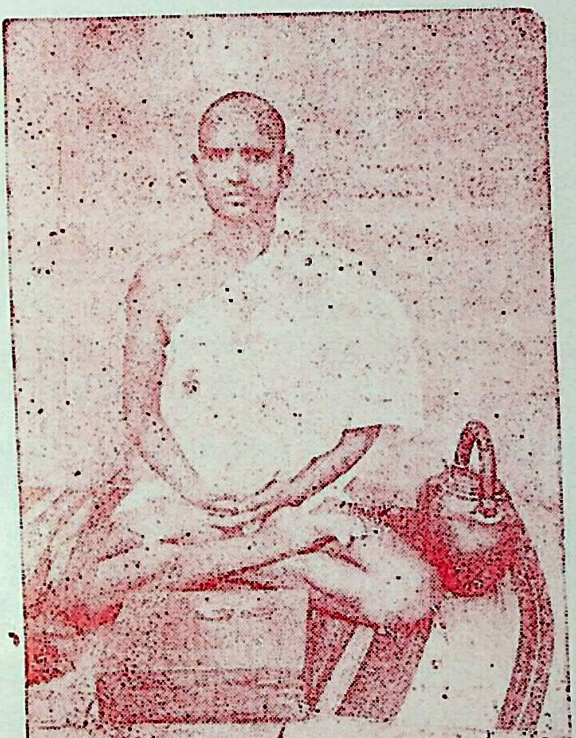

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द'
महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो शब्द

मानव जीवन का लक्ष्य है मोक्ष की प्राप्ति। शुद्ध, चैतन्य, सहजानन्द स्वरूप आत्मा के साथ मन-चित्त जुड़ जाने से लक्ष्य से भटकाव हो जाता है। मन का कार्य ही संकल्प-विकल्प करना है। चित्त की वृत्तियों में. रागद्वेष, लोभ-मोह आदि कब से चिपके पड़े हैं।

प्रस्तुत पुस्तक श्री 105 क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज की डायरी का सम्पादित रूप है। किस प्रकार अनेकानेक तरंगें मन में उठती हैं। कैसे उन तरंगों का स्वरूप तथा जिन शासन के आदेश के अनुरूप दृष्टि बनावें कि तरंगें शांत हों और आत्मस्वरूप का ठीक-ठीक अनुभव हो यह इस पुस्तक का प्रतिपाद्य है।

अनेकानेक व्यक्ति इसका नित्यप्रति स्वाध्याय करते हैं और अपने जीवन को ठीक पथ पर चलाने की प्रेरणा करते हैं। आप भी लाभ उठावें ऐसी प्रकाशक की कामना है।

—प्रकाशक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के

कतिपय महत्वपूर्ण प्रकाशन

1.	आत्मा संबोधन	10/-
2.	सहजानन्द गीता	5/-
3.	अध्यात्म सहस्री	10/-
4.	भागवत धर्म	8/-
5.	मनोहर पद्यावली	4/-
6.	धर्म प्रवचन	10/-
7.	प्रवचनसार प्रवचन	/-
8.	देवपूजा प्रवचन	7/-
9.	श्रावक षट्कर्म प्रवचन	4/-
10.	समयसार प्रवचन	70/-
11.	परमात्म प्रकाश प्रवचन	6/-
12.	सुख यहाँ	60/-
13.	सुख कहाँ	4/-
14.	भक्तामर स्तोत्र प्रवचन	5/-
15.	सरल दार्शनिक प्रवचन	2/-
16.	ज्ञानार्णव प्रवचन	63/-
17.	पंचास्तिकाय प्रवचन	26/-
18.	पुरुषार्थसिद्धि उपाय प्रवचन	15/-
19.	अध्यात्म सहस्री प्रवचन	50/-
20.	मोक्ष शास्त्र प्रवचन	100/-
21.	रत्नकरंड श्रावकाचार प्रवचन	25/-
22.	सरल आध्यात्मिक प्रवचन	12/-
23.	सहजानन्द वस्तुतथ्य प्रवचन	7/-
24.	आत्म परिचयन	22/-
25.	दर्शन पाहुड़ प्रवचन	3/-
26.	सूत्र पाहुड़ प्रवचन	3/-
27.	चारित्र पाहुड़ प्रवचन	5/-
28.	लिंग पाहुड़ प्रवचन	2/-
29.	शील पाहुड़ प्रवचन	3/-
30.	भाव पाहुड़ प्रवचन	30/-
31.	मोक्ष पाहुड़ प्रवचन	20/-
32.	परीक्षामुख सूत्र प्रवचन	40/-
33.	आप्त परीक्षा प्रवचन	7/-
34.	आप्त मीमांसा प्रवचन	30/-
35.	सप्त भंग तरंगिणी प्रवचन	5/-
36.	पंचाध्यायी प्रवचन	50/-
37.	छहढाला टीका	4/-
38.	द्रव्य संग्रह प्रश्नोत्तरी टीका	20/-
39.	समयसार संस्कृत टीका	50/-
40.	प्रवचनसार संस्कृत टीका	5/-
41.	तत्त्वकार्यसूत्र संक्षिप्त टीका	10/-
42.	लघु जीव स्थान धर्म	3/-
43.	लघु कर्म स्थान धर्म	3/-
44.	गुण स्थान दर्पण	3/-
45.	कर्म क्षपण दर्पण	2/-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

49.00...

अपना सार देखो

अपना सार क्या है ? जो अपना स्वरूप है वही अपना सार है। अपना स्वरूप है ज्ञान ! ज्ञानघन यह मैं आत्मा हूँ ऐसा अपने में सर्वतः अनुभव करो। यह मैं मेरे ही निकट ही निकट बाएँ बगल से चलकर, मेरे के सामने आकर, ऐसा सामने आकर कि सामने तो ज्ञानघन आत्मा है और पीठ पर, पीछे में सकल परतत्त्व पड़ा हुआ है, यों मैं मेरे को ही कह रहा हूँ। अपने को ज्ञानघन निरखो यह मैं सर्वतः ज्ञानेकरस हूँ, ज्ञानप्रकाश मात्र, निर्भार हल्का विचित्र तेज वाला अमूर्त ज्ञानज्योति मात्र हूँ। ऐसा निरन्तर देखते हुए अब इस ही के निकट ही निकट सामने से दायें बगल से आकर एक मुख हो जाओ और समा जाओ इस अभेदज्ञान ज्योति में। यही मैं ज्ञान मात्र आत्मा हूँ इस स्थिति में जो स्वयं है, वही सार है, अपना सार देखो।

अपना सार कैसे देखें, सार होता है स्वरूप में, अपना स्वरूप है ज्ञान। अपने को ज्ञान मात्र हूँ, ज्ञान मात्र हूँ ऐसी अन्तर्भावना से भावित कर दें। इस ही अन्तर्भावना के समुचित विस्तार में यह भी निरखने लगें कि यह ज्ञानमात्र मैं क्या करता हूँ, जानता ही तो हूँ, जानता रहता हूँ इतना ही कार्य करता हूँ, यह ज्ञानमात्र मैं क्या भोगता हूँ, ज्ञान के सिवाए अन्य कुछ इसमें नहीं है सो जानन रूप परिणमता हूँ, होता हूँ, भवता हूँ, अनुभवता हूँ जाननं भाव को भोगता हूँ। मेरा सर्वस्व जानन है, ज्ञान है, ज्ञान स्वरूप है। अपने ज्ञान मात्र निरखते रहने में निरखने वाला ज्ञान व निरखा जाने वाला ज्ञान यों दोनों ज्ञान ज्ञेय जब एक हो जाते हैं, तब सार सत्य आनन्द प्रकट करता हुआ स्पष्ट हो जाता है। ज्ञान मात्र हूँ ऐसी अन्तर्भावना करो और अपना सार देखो।

अभव होने का प्रोग्राम मत बिसारो

अनादि काल से पुनर्भव कर करके अनन्त काल बिता डाला, अनन्ते अनेक प्रकार के भव पा पा कर नाना क्लेश सहते रहे। कीट, पतंग, पेड़, पशु, पक्षी आदि कुछ भी देह धारण कर विषय कषाय के विकल्पों में जिन्दगी पूरी की मरे, फिर नया कोई देह धारण किया, फिर वैसी ही जिन्दगी, मरण, देह धारण यही यही प्रोग्राम रचा गया। किसी भी भव में इस भव भ्रमण प्रोग्राम में ऊबा नहीं, कुछ पाया नहीं, रीता का रीता ही भटकता रहा। इसी भटकने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीच आज दुर्लभ मानव जन्म पाया, सत्कुल, सत्समागम, धर्मप्रसंग, धर्मश्रवण, सत्यचिन्तनशक्ति, धर्मधारणशक्ति, स्वानुभवसामर्थ्य उत्तरोत्तर दुर्लभ साधन पाया, अब भव में रुलने का प्रोग्राम मत रचो, भव रहित होने की स्वाधीन ज्ञानमय वृत्ति बनाओ। अभव होने का प्रोग्राम मत बिसारो।

भव बढ़ाने वाले भाव में रुचि मत करो

अहंकार, ममकार, मोहभाव जन्म मरण की परम्परा बढ़ाने वाले भाव हैं। इन भावों में शान्ति का नाम नहीं, प्रत्युत घोर अज्ञानमय भाव होने से अपना मार्ग नहीं सूझता। इन भावों में तो जैसे डिब्बे में चारों ओर से बन्द जीव जैसे घुटता है ऐसे ही अज्ञान आवरण से चारों ओर से घिर जाने के कारण यह जीव घुट रहा है। अपने ज्ञानानन्द विकास का घात कर रहा है। इसमें कठिन बात एक यह भी बन जाती है कि है तो घोर दुःखमयी अवस्था और मानता है उसमें भी यह मौज। अहो इससे बढ़कर विपदा और क्या कही जा सकती है। भव सारे दुःख मय ही हैं। भव में अर्थात् जन्म मरण में रुचि मत करो, एतदर्थ आवश्यक है कि भव बढ़ाने वाले भाव में रुचि मत करो।

अपने में समाये हुए आनन्द की सम्हाल करो

बाहर में तेरा कहीं कुछ नहीं है। किसी पर पदार्थ की ओर तुम कल्पना द्वारा जाते हो सो किस लिये ? इसीलिए ना, कि तुझे आनन्द मिल जाए। बता किसी पर पदार्थ में क्या तेरा आनन्द रखा है। जिसे लेने की चाह करते हो या किसी पर पदार्थ में आनन्द भरा है, उसे खींचने की उत्सुकता करते हो ? पर पदार्थों में जो अचेतन पदार्थ हैं उनमें आनन्द स्वरूप होता ही नहीं, उनसे आनन्द खिंचेगा ही क्या ? चेतन पदार्थों का आनन्द उनका उनमें ही उन्हीं के लिए है यदि वे स्वरूप की सम्हाल कर सकें तो, न कर सकें तो वे भी तेरी ही तरह कल्पना में आनन्द हीन हैं उनसे भी तुझे कुछ मिल नहीं सकता, तेरा कोई सा भी गुण कोई सा भी परिणमन, कोई सा भी तत्त्व तेरे से बाहर नहीं है। तेरा तो आनन्द स्वभाव ही है। तू तो आनन्द मय ही है, अपने इस स्वरूप की सम्हाल न होने से तू अपने को आनन्द हीन मान रहा है, आनन्द मग्न होना हो तो अपने में समाये हुए आनन्द की सम्हाल करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःखों से और दुःखों के उपायों से दूर रहो

जो चाहा जाता है वैसा नहीं होता है यह तो लगा रखा है दुःख और चाह के विषय भूत पदार्थों का संग्रह विग्रह करना, संयोग वियोग करना इसके लिए जो श्रम किया जाता है वह है दुःख पाने का उपाय। यह दुःख चाह करके, चाह पूरी करके, चाह पूरी करने का उपाय श्रम करके नहीं मिटाया जा सकता है। इस कारण चाह न करो, चाह पूरी करने में हित न समझो, चाह पूरी करने के लिए श्रम न करो। सर्व पर पदार्थ से उपेक्षा करके, सर्व विकल्पों से उपयोग मुख मोड़ करके निष्कांक्ष शान्त आनन्द धाम निज अन्तस्तत्त्व में आओ। दुःखों से और दुःखों के उपायों से दूर रहो।

हित केवल जानन हार रहने में है

हित वही है, जहाँ आकुलता लेश मात्र नहीं है। आकुलता उस ही स्थिति में नहां है जहाँ मोह-रागद्वेष नहीं है। ऐसी निर्मल स्थिति का अविनाभाव केवल जानन हार स्थिति से है। अतः केवल जाननहार रहो, अर्थात् जानन के साथ विकल्प, स्नेह, रोष-घ्रणा, ईर्ष्या, लोभ, छल आदि किसी विभावरूप प्रवर्तन न रहे। बुद्धि पूर्वक विभाव प्रवर्तन न रहे, यह तो अब भी किया जा सकता है। इसके लिए केवल जानन हार रहो। अर्थात् सकल औपाधिक संपर्क से रहित सहज ज्ञान स्वभाव के जानन हार बनो और ऐसा यथा बल जानन हार रहो। इसके लिए केवल के द्वारा जानन हार बनो अर्थात् इन्द्रियों का व्यापार बन्द करके मानसिक विकल्पों को निरुद्ध करके अन्तः ही मात्र जानन परिणमन के द्वारा जानन हार बनो और यथा बल जानन हार रहो। हित केवल जानन हार रहने में है।

हित केवल जानन हार रहने में है

केवल के द्वारा जानन हार बनकर, केवल के जानन हार होकर, केवल जानन हार रहकर जो अनुभव किया जाता है वही मात्र एक सारभूत पुरुषार्थ है, इस आत्मा का जिसके द्वारा समस्त संकटों से, अहितों से, यह मुक्त हो जाता है। इस अनुत्तर समृद्धि के पाने के लिए सकल सन्यास करना होगा, सकल परिजनों का परित्याग करना होगा। यह निश्चय कर चुको और केवल के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानन हार रहो अर्थात् इस जानन हार स्थिति से अन्य कुछ वांछा नहीं, ऐसी ही जानन हार स्थिति बनी रहे, इतना ही इसका फल रहे। इसके लिए केवल जानन हार रहो। अर्थात् स्वयं को आधार करके, स्वयं में अवस्थित होकर यही निस्तरंग निरुपम विश्राम पूर्वक जानन हार रह जाओ। यह जानन हार स्थिति इस ही निज ध्रुव ज्ञान स्वभाव से प्रकट होती है, जो शाश्वत है, अतः निःशंक जानन हार रहो। हित केवल जानन हार रहने में है।

अब तक मैंने किया क्या ?

मैं हूँ अमूर्त (रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित) अशब्द ज्ञानानन्द घन चेतन पदार्थ। यह इस ही अपने स्वरूप में किसी भी प्रकार बरतता रहे इसके अतिरिक्त अन्य कुछ त्रिकाल कभी कुछ हो ही नहीं सकता, वस्तु स्वरूप ही ऐसा है। मैं क्या, कोई भी पदार्थ चाहे अणु हो, आकाश हो, कुछ भी चेतन अथवा अचेतन हो अपने स्वरूप में किसी भी प्रकार बरतता रहे इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कर सकता। सो अपनी बात किसी भी भव की देख लें किसी भी स्थिति को देख लें, गड़बड़ भी हुआ तो ज्ञान का रूप कल्पना में ही तो बदला, कल्पना करता रहा, अन्य कुछ तो न कर सका, आनन्द का रूप क्लेश रूप में बदला, क्लेश अनुभवता रहा, अन्य कुछ तो न कर सका, मैं अपने में अपना ढंग ही तो बदलता रहा, अन्य कुछ मैंने क्या किया ?

अब तक मैंने किया क्या ?

भव भव में नये नये विचित्र विचित्र विरुद्ध विरुद्ध देहों में बंध बंध कर कल्पनाओं का जाल ही तो पूरता रहा, अन्य कुछ किया नहीं; कर नहीं सका, कर ही नहीं सकता था। उन कल्पना जालों में कुछ नहीं मिला, कोई पर पदार्थ तो मिल ही नहीं सका, काक तालीय न्याय से कदाचित् कुछ इष्टबाह्य पदार्थ निकट हो गया तो उसमें किया क्या ? केवल अपने में कल्पना जाल पूरता रहा, सो अज्ञान भरी कल्पनाओं से आशा के, भ्रम में क्लेश ही तो रहा ! इन कल्पना जालों से पर पदार्थ कुछ मिलता तो है नहीं निकट भी कुछ नहीं हुआ तो निराशा से आकुलता की आग में जलता रहा कल्पना जाल पूरना, और क्लेश भोगना, इसके सिवाये अन्य कुछ अपनी भलाई में मैंने किया क्या ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानानुभूति के लिये ही यह जीवन है

जीवन अनन्त पाये और छोड़ने पड़े फिर जीवन पाते रहे। उनमें मनुष्य भव का जीवन तो कदाचित् ही पाया होगा, वृक्ष, आग, पानी, जमीन, हवा, कीड़ा, पतंग, पशु, पक्षी, नारकी आदि जैसे जीवन अनेकों पाये। उन जीवनों से मुझे लाभ क्या हुआ ? कुछ नहीं, लाभ नहीं हुआ इतने तक भी बात न रही, उल्टी बरबादी ही हुई उसका वर्तमान स्पष्ट प्रमाण तो यही है कि अब भी जीवन मरण की श्रृंखला में जकड़ा हुआ हूँ। जीवनों से जी जी कर मोह, स्नेह, घृणा, विषयाशा, मानसिक कष्ट, व्याधिजन्य कष्ट सारे कष्ट ही कष्ट सहे और सहते जा रहे हैं। ऐसे जीवन को धिक्कार है। अरे अपने आत्मा के वास्तविक जीवन को देखो जहाँ विशुद्ध ज्ञान प्रकाश है । इस शाश्वत ज्ञान की अनुभूति में ही सत्य स्वायत्त सहज आनन्द है। अपना निश्चल निर्णय बनाओ ज्ञानानुभूति के लिए ही यह जीवन है।

ज्ञानानुभूति के लिये ही यह जीवन है

जब ज्ञान भाव का ज्ञान होकर इकटकी से इसका ही ज्ञान किया जा रहा होता है तब सारे विकल्प हट कर एक मात्र ज्ञानप्रकाश ज्ञान में होता है ऐसी स्थिति को ज्ञानानुभूति कहते हैं। यहाँ अपनी वास्तविक, आन्तरिक, शाश्वतिक दुनिया का आत्यन्तिक साम्राज्य मिलता है। जहाँ कोई संकट ही नहीं, संकट का कारण भूत विकल्प ही नहीं। यहाँ परम आनन्द से भरपूर छका जा रहा है, तृप्ति भी ऐसी परमतृप्ति है कि तृप्ति में कहीं अन्तर ही नहीं आता है। अलौकिक परम सहज आनन्द को निरन्तर अपने में समाये रहने वाली और प्रकट करने वाली है ज्ञानानुभूति। जयवंत होओ। मेरा जीवन तुम पर न्यौछावर है। ज्ञानानुभूति के लिये ही यह जीवन है।

विकल्प विष का परित्याग कर

विकल्प कुछ कार्यकारी तो है नहीं, केवल कल्पना कर करके अपने आप में राजी रहने की प्रकृति बनाए हुए है। इस विकल्प विष के पान करने से इस मालिक का, विकल्पक जीव का, मेरा निरन्तर भाव मरन होता रहता है। निराकुल शान्त स्वरूप से दूर होकर धधकती आकुलता की आग में जल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जलकर अपनी प्रभुता की राख कर रहा हूँ। इस मूढ़ता पर तुझे क्या कुछ भी पछतावा नहीं हो रहा है, अपने आप की इस बेहोशी की तीव्र वेदना भोगकर अपने पर रंच दया की बात मन में नहीं आ रही है। हे प्रियतम आत्मन् ! अब अपना होश सम्हाल, स्वरूप के अज्ञान की बेहोशी दूर कर स्वप्नसम माया रूप, स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द विषयों का आंश्रय छोड़ अपने को भाव मरन से बचाने के लिए विकल्प विष का परित्याग कर।

निर्विकल्प शान्त ज्ञान सुधारस का पान कर

किसी भी विषय का आश्रय करने और विकल्पी से शेखचिल्ली बनने में तेरी ही बरबादी है। अतः सब विषयों का आश्रय तज कर समस्त विकल्पों का स्पर्श छोड़कर नीचे भीतर खिसक कर अपनी मुद्रा पलट कर पूर्ण विश्राम से अपने में ठहर जा। निरख अन्तः ही अन्तः; शान्त हल्का। सूक्ष्म प्रकाश की प्रतीकता से, प्रकट, सर्वांग; समक्ष सहज ज्ञान की शान्त सुधा बरस रही है ना, इस ही में मन माना स्नान कर पहले औपाधिक भवताप की गर्मी शान्त कर, अब पुनः निरख अन्तः ही अन्तः। जो कुछ शेष शोध रह गया है उसके प्रतिशोध से सुरक्षित रहने के लिये इस ही आनन्द मय निज पद में अमर रहने के लिए ज्ञानाञ्जुली के द्वारा इस ही शान्त ज्ञानसुधा रस का पान कर देख, विकल्प संकटों का व्यामोह तज और निर्विकल्प शान्त ज्ञान सुधा रस का पान कर।

ज्ञानानुभव के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं चाहिए, नाथ !

नाथ ! कैसा पावन निर्मल ज्योतिर्मय स्वरूप है आपका। इसमें सर्व समृद्धियाँ निहित हैं। उत्कृष्ट समृद्धि तो विशुद्ध आत्मोत्थ परिपूर्ण सहज आनन्द है वह तो निरन्तर ही सघन आप में तन्मय है। अहो कितना अद्‌भुत प्रताप है इस परमात्म स्वरूप का कि इस प्रभु स्वरूप को अविछिन्न धारा से निरखते निरखते निरखनहार इस मुझ स्वयं को पावन स्वभाव के दर्शन हो रहे हैं। निजनाथ का दर्शन हो चुका, अब चिन्तन है, स्मरण है लेकिन इस चिन्तन स्मरण में उसी आनन्द का प्रकाश अवकाश पा रहा है। अहा हे परमात्म तत्त्व !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हीं तो सर्व विश्व में उत्कृष्ट सार भूत आदर्श हो सभी विद्वानों, संतों, योगियों, देवेन्द्रों आदि के द्वारा ध्येय हो, आराध्य हो। हे नाथ ! आप विशुद्ध ज्ञान घन हो, इस ज्ञान स्वरूप की अभेद आराधना में ही परम कल्याण है, ज्ञानानुभव के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए, नाथ !

अज्ञानभाव की अंगीकारता सर्व संसार विडम्बना है

राग, द्वेष भाव मुझ चेतन में प्रकट तो होते हैं, किन्तु इनका स्वरूप अज्ञान है। ये स्वयं स्वयं को न चेत सकते न अनुभव कर सकते ये ज्ञान के द्वारा ही अनुभवे जाते हैं। ये मेरे परमार्थ प्रयोजन से भी विपरीत हैं, स्वरूप से तो विपरीत हैं ही, मेरा आनन्द स्वरूप है, इनका आकुलता स्वरूप है। मेरा अनिवार्य परमार्थ प्रयोजन है मात्र जानन, इनका प्रयोजन कुछ नहीं, फिर भी ये मेरी बरबादी के प्रबल हेतु भूत हो रहे हैं। अहो इस सब अनर्थ में भूल तो मेरी ही है, मैंने इन अज्ञान भावों का आदर किया, इनको प्रश्रय दिया, इनको अपनाया, इससे ही ये मेरे सिर हो गये हैं। अज्ञान भाव की अंगीकारता ही सर्व संसार विडम्बना है।

यही तो मैं ज्ञान मात्र आत्मा हूँ

सब इन्द्रियों का व्यापार (कार्य) बंद करके अन्तः ही अन्तः चलिये, निरखिये। तो यह सहज ज्ञान प्रकाश, इस सहज ज्ञान प्रकाश के वर्तन में गम्य यह सहज ज्ञान स्वभाव, कैसा शान्त, पावन धाम है, इसमें बसना यही मात्र अब मेरा काम है। इसको लखे जावो, आत्मरूप अनुभव किये जावो, यही इसके परिचय का उपाय है, यही इसके स्वाद का सहजानन्दानुभव का उपाय है, क्योंकि न इसका नाम हैं, न इसका दाम है कि कहीं बुलाकर इसे निकट करें या खरीद कर अपना काम करें। सर्व पर को अहित हेतु जान कर उस सबसे उपेक्षा करके उनका विकल्प तोड़कर इसी एक सहज स्वसंवेदन साध्य ज्ञान ज्योतिर्मय कारण परमात्म तत्त्व के निकट रहो, इस ही ज्ञान मात्र आत्मा के सहज संवेदन से तृप्त होओ, कृतार्थ होओ। एतदर्थ बार बार अनुभव करो—यही तो मैं ज्ञान मात्र आत्मा हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानमय भाव ही तो मेरे वास्तविक शत्रु हैं।

मेरी बरबादी कर सकने वाला कोई भी पर पदार्थ नहीं है, जिनसे परिचय नहीं ऐसे लोग तो शत्रु हैं ही कहाँ, यह तो सब मानते हैं, किन्तु जिनसे परिचय हुआ है किसी रूप में वे भी मेरे शत्रु नहीं हैं वे स्वतन्त्र परिपूर्ण पदार्थ अपने स्वयं का ही कुछ कर रहे हैं, मेरा कुछ नहीं कर रहे फिर शत्रु कैसे ? राग द्वेष विकल्प आदि जिन भावों में झुलस कर मैं निरन्तर भव मरण कर रहा हूँ ये अज्ञान मय भाव ही मेरे शत्रु हैं। जिन कर्मों के उदय के निमित्त से अज्ञानमय भाव हो रहे हैं वे कर्म भी बरबादी रूप परिणमन तो नहीं रहे, मेरे स्वरूप से तो बाह्य ही हैं तथा अचेतन हैं वे भी क्या शत्रु हैं ? अन्य सबमें शत्रुता की कल्पना तजकर यही निर्णय रखो अज्ञानमय भाव ही तो मेरे वास्तविक शत्रु हैं।

विकल्प कोई सा हो, सभी अहित है

यहाँ ज्ञान के स्वरूप रूप (जानन रूप) विकल्प की बात नहीं कही जा रही है उसको विकल्प शब्द से कहने की प्रथा भी नहीं। परवस्तु के सम्बन्ध में जो संग्रह, विग्रह प्रबन्ध व्यवस्था न करने भोगने आदि के जो विचार उठते हैं, उन सर्व प्रकार के विकल्पों की बात कही जा रही है। विकल्प सभी आत्म के अहित रूप हैं। जो इन्द्रियों के विषय हैं उनके भोगने के विकल्पों में तो आत्मा का साक्षात् अहित है यह बात तो एक दम व्यक्त है असार अनुचित अनित्य इन्द्रिय विषयों को भोगने के समय जीव का उपयोग अशुद्ध, सशंक व निष्करुण रहता है सो विषय भोग का विकल्प तो अहित है ही। किंचित शुभोपयोग के नाम पर संस्था सेवा समाज सेवा के कार्य करने की मन में आते ही मन रूपी घोड़ा विचारों में दौड़ लगाने लगता है। इस घुड़दौड़ के समय की भी तो बात सोच लो। क्या वहाँ आत्मा की सुध रहती है ? क्या कर्तृत्व जाल के आशय की धारा नहीं बहने लगती है ? ये आन्तरिक नटखट जब होने लगते हैं तो वहाँ भी हित की आशा कहाँ ? अच्छा अब समाज में ज्ञान प्रचार व धर्म प्रचार के यत्नों की बात भी देखिये यहाँ लोगों को यों समझावेंगे यों पढ़ावेंगे। नियम दिलावेंगे इस प्रकार छोटे विकल्प से प्रारम्भ करके इस विकल्प की जवानी भी ऐसी बना ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती है जहाँ मायामय लोगों के तकने के व मायामय प्रयत्न के विकल्पों का ताता लग बैठता है। क्या उसमें भी ज्ञान घन आत्मा की कुछ सुध रहती है ? अहो, विकल्प कोई सा हो सभी अहित है।

ज्ञानातिरिक्त कार्यों के उत्तरदायी बनकर मत रहो

किसी भी सेवा कार्य के प्रसंग में वचन व्यवहार सावधानी से करो। भावुकता में आकर कहीं रहने, कुछ करने का सर्वथा वचन मत कहो। उस सेवा कार्य के सम्बन्ध में योजना ऐसी बनाओ जो योजना धर्म के नाते से चल सकती रहे और कदाचित् किसी विषय में तुम्हारी प्रतिकूलता होने पर वहाँ रहने का भाव न रहे व कुछ करना बोलना न पड़े तो भी वहाँ विशेष बिगाड़ न आ सके, ऐसी योजना बनाना चाहिये। कारण यह है पर द्रव्य की जिम्मेदारी कोई ले ही नहीं सकता और पर द्रव्य की जिम्मेदारी तो असंभव है ही अपने आज के परिणाम की और इस परिणाम में सोची हुई बात की भी जिम्मेदारी नहीं ली जा सकती है। पर के उत्तरदायित्व की विकट शल्य होती है, क्योंकि पर पदार्थ पर वश तो है नहीं और उत्तरदायित्व का वायदा कर लिया तो वहाँ ऐसी विडम्बना है जैसे कि मान न मान, मैं तेरा मेहमान बनने में है। यदि जीवन में शान्ति चाहते हो तो खुद के जिम्मेदार बनो। अपने आप में निरखो अवगुण, विकार और उसको दूर करने का जो अमोघ उपाय है, अपने को अविकार ज्ञान मात्र स्वीकारने का, सो इस स्वीकारता की दृढ़ता करके विकारों को, विपदाओं को दूर करने की जिम्मेदारी निभाओ। निज ज्ञान भाव की सम्हाल के उत्तरदायीं बनो और ज्ञान मात्र के उपयोगी बनकर रहो। ज्ञानातिरिक्त कार्यों के उत्तरदायी बन कर मत रहो।

निर्विकल्प रहने में ही भलाई है

अनादि काल से अब तक अनन्तों जन्म पा चुके। उन जीवनों में किया क्या ? विकल्प ही विकल्प किये सुख प्राप्ति की आशा में विकल्प ही विकल्प किये। उन विकल्पों के फल में कुछ लाभ मिला। क्या मिलता, रीता ही रीता रहा, आज भी रीता ही हूँ। 'अच्छा' अनन्त जन्मों की कहानी न सुन कर एक इस वर्तमान की घटनाओं को ही सोच लो। गर्भ में नव मास रहे वहाँ विकल्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही विकल्प तो किये मनः पर्याप्ति तो गर्भ में पहुँचते ही अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण हो जाती है। विकल्पों का विशेष साधन तो पर्याप्त हो जाना है। गर्भ में रहकर क्या-२ न सोचा होगा। उन विकल्पों से लाभ रहा क्या कुछ ? अच्छा, गर्भ से निकले, शिशु अवस्था में अनेक विचार विकल्प किये कुछ का जोग जुड़ा, कुछ का तरसना रहा, कुछ होकर भी खुद के ख्याल में न आए, कुछ के प्रतिकूल उपचार हुए, उन सब विकल्पों में क्षोभ ही क्षोभ तो पाया। उन विकल्पों से लाभ रहा क्या कुछ ? अच्छा, अब बड़े शिशु हो गये, बाल्य अवस्था पा ली। वहाँ भी किया क्या ? विकल्प ही विकल्प, उनसे भी लाभ रहा क्या कुछ ? अच्छा कुमार हुये, फुर्तीलापन आया, चंचलता बढ़ी वहाँ भी किया क्या ? विकल्प ही विकल्प। कुछ कर तो सकता ही नहीं कभी कोई अन्य में उन विकल्पों से भी क्या मिलता इसे। अच्छा किशोर हुआ फिर जवान हुआ अन्त में वृद्ध हुआ। उन सब अवस्थाओं में किया क्या ? विकल्प ही विकल्प उन सब विकल्प में आत्मगुणों का घात किया, शान्ति का विनाश किया, जन्म मरण की परम्परा को प्रश्रय दिया, अपनी बरबादी ही बरबादी की। विकल्पों में तो क्षोभ ही क्षोभ भरा है, विकल्पों में भलाई कहाँ से आये ? निर्विकल्प रहने में ही भलाई है।

मुझे तो ज्ञान मात्र रहना है

अन्य सब कुछ बनकर, सब ढंगों से रहकर देख लिया किसी भी स्थिति में आनन्द नहीं है। मैं नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव बना तो बाह्य में उन-उन देहों के भव रूप बना, इसका विचार गौण करके आन्तरिक दृष्टि से देखो मैं वैसा आशय रखता रहा, सो ही तो नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव कहलाया अर्थात् मैं नारकी हूँ, तिर्यंच, हूँ, मनुष्य हूँ, देव हूँ, इस अध्यवसान से अपने को कल्पना जगत में नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव बनाता रहा। सो इन बनावटों में पाया क्या ? उसके अनुकूल विविध कल्पना जाल रच कर क्लेश ही भोगता रहा। ज्ञान मात्र रहने के अतिरिक्त अन्य सब ढंगों से रहकर भी देख डाला। समाज सेवा के नाम पर लौकिक सभ्य विधि में योजना उनके प्रोग्राम में उपयोग को उलझाकर क्षोभ ही तो वहाँ मचाया। संस्था सेवा के नाम पर संस्था के विकास की योजनाओं की कल्पना कर-कर के इस श्रेष्ठ मानव जीवन का दुर्लभ समय ही तो खोया। किसी व्यक्ति के उपकार के नाम पर उसको आराम देना, प्रसन्नता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहुँचाना, खेद दूर करना आदि भावों से स्वयं के उपयोग को थकाया ही तो गया। अथवा उक्त सब विकल्पों में किया क्या ? इस पर्याय कीर्ति चाह की दाह से अपनी चैतन्य भूमि को बंजर बना डाला, अथवा कषाय में जो योग बन सका किया किन्तु उन सब ढंगों से रहने में भी आनन्द नहीं मिला। अब एक ही मात्र उपाय करना है—वास्तविक निज को निज, पर को पर जान कर सर्व विकल्प तोड़ कर मुझे तो ज्ञान मात्र रहना है। इस उपाय से जब परमात्मत्व प्रकट हो जायेगा तब तो फिर भविष्य में अनन्त काल तक ज्ञानमय ही रहना है। जब अनन्त काल तक ज्ञानमात्र रहना उसका उपाय भी है अपने को ज्ञान मात्र अनुभवना। तब तो अभी से मेरा यह यत्न होगा कि मुझे तो ज्ञानमात्र रहना है।

मेरा सब कुछ मेरे से ही बनता है

मेरा कुछ भी बनना मेरा ही तो परिणमन है वह अन्य किसी पदार्थ से कभी भी नहीं हो सकता है जब मेरा बनना विकृत हो रहा है तब भी किसी अन्य से वह नहीं हो रहा है। जरा अन्तर्दृष्टि करके निहारो—मैं जानता रहूँ ऐसा ज्ञान रूप परिणमन करते रहने वाला एक सत् है। मैंने अब तक जानने के सिवाय और कुछ नहीं किया। वह जानना मेरा मेरे स्वभाव के कारण ही तो हुआ है। यह जानना अब तक मेरा जैसा वह 'क्लेशानुभव' करता हुआ है। क्लेशानुभवनों में भी मैंने जानने के सिवाय और क्या किया ? उस समय जिस किसी बाह्य पदार्थ को उपयोग में लेकर कल्पना करके क्लेशानुभवन किया वहाँ जानन (कल्पना) किसी बाह्य पदार्थ से नहीं हुआ। हाँ वैसा जानन बनना किसी बाह्य पदार्थ का उपयोग रखता हुआ ही होता है, सो ही हुआ। वैसे जानन बनना मेरे स्वभाव का परिणमन तो है, किंतु सहज स्वभाव से नहीं हुआ, वह औपधिक परिणमन है, मोह कर्म विपाक का निमत्त पाकर हुआ, तथापि कर्म से नहीं हुआ, कर्मोदय से नहीं हुआ किसी अन्य से नहीं हुआ, किसी अन्य की परिणति से नहीं हुआ। वैसा जानन बनना कर्म विपाक के सन्निधान में ही हुआ करता है सो ही हुआ। वह जानन कर्म परिणति से नहीं हुआ। यों गड़बड़ जानन भी मेरे से ही बनता है और विशुद्ध जानन तो बाह्य पदार्थ का आश्रय लिये बिना होता है, कर्म विपाक के सन्निधान बिना होता है, सो सीधा, अविकृत जानन मेरे से ही बनता है यह तो स्पष्ट ही है। यहाँ हर प्रकार से स्वद्रव्य का ही आश्रय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस विशुद्ध जानन में सहज आनन्द का अनुभवन है। एतदर्थ पर के विकल्प छोड़ो, स्वद्रव्य का सहज़ आश्रय लो, मेरा सब कुछ मेरे से ही बनता है।

पराधीन रहने में ही क्लेश है।

देश में विदेशियों का शासन हो तो देश वासी लोग बड़ा क्लेश मानते हैं, क्योंकि वे विदेशियों की हकूमत के अधीन बनकर अपने को दीन अनुभव करते हैं। समाज पर अन्य समाज का रुतबा हो तो समाज के लोग बड़ा क्लेश मानते हैं, क्योंकि अन्य समाज के प्रभाव के अधीन बनकर समाज़ के लोग अपने को दीन अनुभव करते हैं। घर में किसी बड़े का मनचाहा आर्डर चले तो घर के अन्य लोग बड़ा क्लेश मानते हैं क्योंकि उस बड़े के आर्डर से काम करना पड़ता है। तैसे गृह वासी अपने को दीन अनुभव करते हैं। किसी विभाग में आफीसर की हकूमत में रहने पर वर्कर लोग बड़ा क्लेश मानते हैं क्योंकि वे अपनी प्रतिष्ठा खोकर अफसर के हुक्म के अधीन रहकर काम करने से अपने को दीन अनुभव करते हैं। इसी प्रकार संसार के ये बड़े छोटे सभी प्राणी इन्द्रिय विषयों की अभिलाषा की हकूमत में रह कर विषयों की आशा प्रतीक्षा करके बड़ा क्लेश मानते हैं, क्योंकि विषयाभिलाषी प्राणियों ने अपने ज्ञानानन्द स्वरूप की प्रतिष्ठा खोकर विषयों को प्रकृष्ठ अर्थना (प्रार्थना) करते हुए विषयों के अधीन बनकर अपने को दीन अनुभव करते हैं। हकूमत करने वाले और लोगों की हकूमत में रहने वाले के अधीन प्राणियों ने यह नहीं सोचा कि वास्तविक पराधीनता तो कषाय भावों के होने से है। ये बड़े छोटे सभी कषायों के अधीन हैं अतः दुःखी हैं। निज सहज ज्ञानानन्द स्वरूप में न रहकर विषय कषाय भावों के अनुसार चलना ही वास्तविक पराधीनता होना है, पराधीन रहने में ही क्लेश है।

स्वाधीन रहने में ही वास्तविक आनन्द है

जब देश पर से विदेशियों की हकूमत हट जाती है तब देश वासी आनन्द मानते हैं, क्योंकि अब वे देशवासी विदेशियों के अधीन न रहने से स्वाधीन रहकर अपने को अपने वैभव से समृद्धि अनुभव करते हैं। समाज पर अन्य समाज का रुतबा हट जाने से समाज के लोग आनन्द मानते हैं, क्योंकि अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये समाज के लोग अन्य जनों से आक्रान्त न रहने से स्वाधीन रहकर अपने की अपने वैभव से समृद्धि अनुभव करते हैं। घर में किसी बड़े का मनचाहा आर्डर न चलने से घर के लोग आनन्द मानते हैं, क्योंकि अब वे अपने को पराधीन न मानने से अपने को महत्वशाली और वैभव समृद्ध अनुभव करते हैं। स्कूल की छुट्टी होने पर बच्चे लोग आनन्द मानते हैं, क्योंकि अब बच्चे अपने को पराधीन न मानकर अपने को स्वाधीन अनुभव करते हैं। अफसर की हकूमत न रहने पर वर्कर लोग आनन्द मानते हैं क्योंकि अब वे अपने को प्रतिष्ठा सम्पन्न समृद्ध अनुभव करते हैं। छोटे बड़े सभी प्राणी स्वाधीन रहकर आनन्द मानते हैं। उक्त तत्सम स्वाधीनता अनुभवने वाले लोग अभी वास्तविक स्वाधीन नहीं हुए तभी तो इस हालत में भी अनेक बातों से परेशान रहते हैं, इस सब में विषयाशा की आधीनता तो बनी हुई है। जब निःसंकट अविकार सहजानन्दघन सहजज्ञायक स्वभावी अन्तस्तत्त्व की समृद्धि अनुभूत हो जाने से विषयों से परम उपेक्षा हो जाती है तब वास्तविक पराधीनता न रहने से सत्य आनन्द प्रकट होता है। स्वाधीन रहने में ही वास्तविक आनन्द है।

दुर्लभ नरभव का अमूल्य समय क्यों व्यर्थ में खोया जा रहा है

अब तक विकल्प ही विकल्प तो किये बता तेरे अमूर्त ज्ञानानन्द भावमात्र आत्मा में क्या वृद्धि हुई ? क्या समृद्धि हुई ? अरे समस्त पर द्रव्यों से पर भावों से भिन्न इस आत्मा में वाह्य से आवेगा क्या। लोक में मनुष्यों को कुछ पोजीशन दिखाने का विकल्प किया तो मनुष्यों से कुछ मिलेगा क्या। मिलता क्या हैरानी ही हैरानी भोगी। ये मनुष्य तो तुम्हें जानते भी नहीं। तू तो ज्ञान ज्योति मात्र अमूर्त इन्द्रियागोचर है, इस मनुष्य के ज्ञान में तू आया कहाँ। यदि किसी बिरले ज्ञानी पुरुष के ज्ञान में आ भी जाय तो तू ज्ञान में नहीं आया, चित्स्वरूप ज्ञान में आया। तू व्यक्ति रूप है यद्यपि चित्स्वरूप किन्तु किसी ज्ञानी के उपयोग में चित् स्वरूप आने से अकेला तू ही तो नहीं आया। प्रियतम ! अपनी सुध सम्हाल, बाहर से तेरा वास्ता नहीं तुझे किसी भी पर द्रव्य से कुछ मिलना नहीं, व्यर्थ विकल्प करके क्यों अपने को बरबाद कर रहा। संसार तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्प जाल माया जाल है, इससे निवृत्त होकर सदा के लिये सहज शाश्वत आनन्दमय हो जाने का उपाय नरभव से मिलता है जो कि बड़ा दुर्लभ है। निगोद से प्रत्येक एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय उसमें भी मनुष्य वहाँ भी सज्जाति सत्कुल सद्धर्मश्रवण सद्धर्मावबोध सद्धर्मग्रहण में उत्तरोत्तर दुर्लभ है। इस दुर्लभ तत्त्व का समागम पाया इसका एक भी समय प्रमाद में मत खो। मैं ज्ञान मात्र हूँ इस प्रतीति अमृत का पान कर। खूब गहराई से सोच कि दुर्लभ नरभव का अमूल्य समय क्यों व्यर्थ में खोया जा रहा है।

ज्ञान मात्र स्वरूप का अनुभव ही मेरा एक मात्र शरण है

मैं अनुभव के अतिरिक्त अन्य कुछ करता ही नहीं हूँ, न कभी कुछ कर सका, न कभी कुछ कर सकूँगा। कितने ही पदार्थों के प्रसंग में रहा हो, बहुधंधी रहा हो युद्धनिरत रहा हो कोई, वह भी अनुभव ही कर रहा पर पदार्थों का, कुछ नहीं कर रहा है। पर पदार्थों के संग्रह विग्रह करने के ख्याल भी तो विकल्प ही हैं, इन विकल्पों का अनुभव ही तो चल रहा है इनके सर्व जीवों की बात सोच लो अनुभव ही कर पाते। इन विकल्पों के अनुभव में क्लेश लगा हुआ है सो उसका भोगना भी क्लेश का ही तो अनुभव है। अप्रमत्त, निर्विकल्प साधु सन्त जन अपने शुद्ध अन्तस्तत्त्व का ध्यान करते हैं सो उनके शुद्ध अन्तस्तत्त्व के ज्ञान का अनुभव है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा निर्विकल्प शुद्ध स्वच्छ ज्ञान रूप परिणमते हैं, सो वे परिपूर्ण शुद्ध जानन रूप स्वयं को अनुभवते हैं। अनुभव के अतिरिक्त कोई कुछ नहीं करता। तू भी केवल सदा अनुभव ही करता है। जब अनुभव के सिवाये तू अन्य कुछ करता ही नहीं, अनुभव ही करता है तो ऐसे अनुभवों को क्यों करता है जिन अनुभवों में तू क्लेश उठाता है, व्यर्थ क्लेश उठाता है। अब चेत, पर का विकल्प छोड़। कुछ भी चेतन या अचेतन पर पदार्थ तुझे शरण नहीं बल्कि इनको शरण मानने से इनमें अपनी पोजीशन मानने से तू अशरण बन रहा है! अब अशरण न बन तू। जो सत्य शरण है वह तेरा प्रभु तुझमें ही विराजमान है। वह स्वयं तू ही है। इन इन्द्रियों से निरखने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से वह न मिलेगा, इस मन से (विकल्प) से निरखने से वह न मिलेगा। इन्द्रियों व मन के व्यापार को बंद करके समस्त पर तत्त्वों से उपेक्षा करके, अन्तः परम विश्राम होने में ज्ञान स्वरूप का अनुभव होता है। उसको दृष्टि में रखकर निश्चय कर—ज्ञान मात्र स्वरूप का अनुभव ही मेरा एक मात्र शरण हैं।

समय विकल्प में गुजर रहा है इस अनर्थ को दूर करो

यह समय अर्थात् आत्मा विकल्प में गुजर रहा है। यह अपनी परिणमन शीलता के कारण परिणमन में तो चलता ही चलता इसे कौन रोकता, इसको रोकने की बात नहीं कही जा रही है किन्तु विकल्प परिणमन में चल रहा है यह, विकल्पों में मर रहा है यह, तो अनर्थ ही है, इसे दूर करो। विकल्प तो अनर्थ ही है, क्योंकि इससे आत्मा का लाभ नहीं, बरबादी ही है। इस परिचित दुनिया में हित क्या है ? जिस-२ बात के विकल्प कर रहे हो बताओ उसमें लाभ क्या पाते। ये विकल्प ६ जाति के होते हैं— ५ तो इन्द्रियों के विषय के विकल्प, छठा मन के विषय का विकल्प। सुहावने कोमल स्पर्श के विकल्प किये, परदेहस्पर्श, काम सेवन आदि के विकल्प किये तो उन विकल्पों में गुजर-गुजर कर क्या समृद्धि पाई, रहा तो रीता का ही रीता। रसास्वाद के विकल्प किये, रसास्वाद लिये, किया क्या, कल्पना ही तो की, मिला क्या, रहा क्या, रहा तो रीता का ही रीता। सुगन्ध लेने के विकल्प किये, उनसे भी आत्मा को मिला क्या ? सुहावने रूप निरखने के विकल्प किये। वह तो मूढ़ता की बात रही, उस रूप से न तो भेंट होती, न स्पर्श होता, दूर ही दूर खड़ा रहकर कल्पना का जाल पूरा जाता, यह भी किसके बारे में जहाँ सार नहीं अशुचिता है, मायारूपता है उसके बारे में, इससे मिला क्या ? सराग शब्दों के विकल्प किये, उससे मिला क्या ? कीर्ति चाह मन की घुड़ दौड़ तो महामूढ़ताभरी बात है, मिलता तो कुछ नहीं, नपुंसक की भाँति कल्पना कर मौज मानता, उसका कटुफल भोगता। जिस पर भी नही चेतता अरे आत्मन ! नरभव का सुयोग तो निर्विकल्प समाधि के लाभ से सफल होता है। यह अमूल्य समय विकल्प में गुजर रहा है इस अनर्थ को दूर करो। अपने स्वकाल को देखो तो यह समय अर्थात् आत्मा विकल्प में गुजर रहा है इस अनर्थ को दूर करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं ज्ञान मात्र हूँ ऐसा ही अनुभव करो, इससे ही जीवन सफल है

जीवन तो सफल तब है यथार्थ में जबकि आगे जीवन ही मिट जाय। जिस जीवन में ऐसा काम बने कि जिससे आगे सदा के लिए जीवन ही मिट जाय वह जीवन सफल है। ऐसी सफलता आज के जीवन में नहीं मिल सकती है तो जीवन की कम से कम इतनी ही सफलता बनालो कि जीवनों के मिटने की जो कुन्जी है, उसे प्राप्त कर लो। मैं ज्ञान मात्र हूँ ऐसा अनुभव ही जीवनों को मिटाने की कुञ्जी है। देखो मुझे सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं ऐसी परख करने में तो भ्रम भी हो सकता है सम्यग्दर्शन के जो चिह्न हैं देवशास्त्र गुरु का श्रद्धान, सप्त तत्त्वों का श्रद्धान, आत्मा के एकत्व विभक्त स्वरूप का श्रद्धान आदि, तद्विषयक विकल्प की ध्वनि में भी माना जा सकता कि मुझे सम्यग्दर्शन हुआ है अथवा सम्यग्दृष्टि पुरुष को चूंकि अपनी राग द्वेष वाली त्रुटि खूब समझ में आती है और सम्यक्त्व का स्वरूप स्पष्ट झलक में है। सो अपनी त्रुटि पर कभी बड़ा खेद करता हुआ वह ऐसी भावना कर सकता है कि सम्यक्त्व से ही जीव का कल्याण है, मुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति होओ। लो मुझे सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं ऐसी सीधी परख करने में अन्य प्रकार से भी ज्ञान किया जा सकता है। किन्तु, मैं ज्ञान मात्र हूँ ऐसा अनुभव हुआ या नहीं ऐसी परख ठीक बन सकती है, क्योंकि सब कोई अपने-२ अनुभव अनुभवते हैं, समझते हैं और मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसे अनुभव के द्वार से सम्यक्त्व का निश्चय भी यथार्थ हो जाता है। मैं ज्ञान मात्र हूँ ऐसे अनुभव से ही आत्मा का कल्याण है। अन्य रूप अपना अनुभव करने में तो आकुलतायें हैं। उन प्रवर्तनों में चलना तो जीवन बेकार गंवाना है। मैं ज्ञान मात्र हूँ ऐसा ही अनुभव करो, इससे ही जीवन सफल है।

ज्ञान भाव ही मेरा सर्वस्व है

मैं ज्ञान रूप हूँ जानता हूँ इतना ही मेरा काम है जो जानन प्रकाश हो रहा है इतना ही मेरा धाम है। यही जानता हुआ अब मैं सदा रहा करता हूँ, इससे बाहर मैं अन्य कहाँ जा सकता हूँ, इससे अतिरिक्त मैं और क्या कर सकता हूँ इसको ही तो मैं अनुभवता हूँ, अन्य किसी पदार्थ को मैं क्या भोग सकता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब ज्ञान भाव से अतिरिक्त न मेरा काम है न धाम है न ही अन्य कुछ अनुभवन है तब फिर बाहर कहाँ उपयोग को लगाया जाय। धन, वैभव, घर इन्द्रियविषय आदि सर्व परपदार्थों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, फिर इनके संग्रह से, इनके संग्रह के श्रम से, इनके संग्रह के विकल्प से कोई लाभ ही नहीं, लाभ तो क्या, उल्टी हैरानी, परेशानी और बरबादी ही है। इस जड़ वैभव को तू अपना कुछ भी नहीं समझ, ज्ञान भाव ही तेरा वास्तविक वैभव है। परिजन मित्रजन भी तेरे क्या हैं, वे तेरा करते क्या ? उनका द्रव्यत्व गुण उनमें है, उनका भाव उनमें है, वे सभी अपनी शान्ति के लिये अपनी समझ के अनुसार अपनी चेष्टा करते हैं, तेरा कुछ नहीं करते हैं। किसी की चेष्टा तेरी कषाय के अनुकूल पड़ गई तो तू उसमें राग भाव करके उन्हें अपना समझ लेता है, इस समझ से तेरा गुजारा न चलेगा। तू इन परिकरों को अपना कुछ भी मत समझ, ज्ञान भाव ही तेरा वास्तविक साथी और गुरु है। मैं जानन प्रकाश मात्र हूँ, इसका कोई नाम नहीं, नाम हो कुछ तो इसका व्यवहार चले, लोग इसकी नामवरी करें, किन्तु जिस मेरे का नाम ही नहीं उसकी नामवरी क्या ? माया की खिड़की से माया की चीजें निरख कर स्वयं को माया रूप मानता हुआ मायामय मायामयों में मायामय नामवरी की अनर्थमयी चाह किया करता है। मैं माया से निराला हूँ, केवल ज्ञान स्वरूप हूँ, सहजसत्यआनन्द से भरपूर हूँ मुझे अब कुछ नहीं चाहिये, ज्ञान भाव ही मेरा सर्वस्व है।

यहाँ थोड़े ही समय रहना है, फिर चल देना है, तब क्या चाहना

देखो ना यहाँ कोई गर्भ में ही मर गया, कोई शिशु अवस्था में ही मर गया, कोई बाल अवस्था में ही मर गया, कोई विद्या पढ़ते ही पढ़ते छोटी क्लास में ही मर गया, कोई कुछ विशेष पढ़कर बड़ी-२ डिग्रियाँ पाकर मर गया कोई जवानी में मरा। क्या इन अवस्था में से किसी भी अवस्था में तुम मर नहीं सकते थे ? अवश्य मर सकते थे। अच्छा मर जाते तो अन्यत्र किसी भव में जन्म लेते, फिर यहाँ का समागम तेरे लिए क्या था। अच्छा, बच गये, न मरे अब तक, तो आगे की कुछ खबर है कब तक और यहाँ रहना है, आज का ही पता नहीं कल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ही पता नहीं। कुछ दिन और बच गये तो क्या, आखिर शीघ्र मरना तो है ही। जैसे गुब्बारे में फूँक भरी है हवा भरी है, निकल गई हवा तो फिर पचड़ा ही तो रह गया, ऐसे ही इस शरीर में हवा भरी है, चेतना पड़ी है, निकल गई हवा (चेतना), निकल भी जाती है एक दम अचानक; निकल गई हवा तो फिर मुर्दा ही तो रह गया, तू तो चल देगा अन्यत्र। अब बता यहाँ कुछ चाहने का फायदा क्या रहा। चाह में समय गँवाया अपने भगवान के बैरी बने, विकल्प कर करके आकुलतायें भोगीं रहा कुछ नहीं, उल्टी दुःखों की परम्परा बढ़ा ली। जन्म मरण करते रहने को बहुत बड़ी मियाद वाली रजिस्ट्री करा ली। ऐसे जीवन से जीना बेकार है। जैसे कुत्ता, बिल्ली, गधा, भैंसा, चूहा, मच्छर, सूअर आदि जानवरों की दशा देखकर सोचते हो कि इनका जीना बेकार रहता, ऐसी ही तो फिर तुम्हारी भी बात है, विषय विकल्प ही तो किये। कुत्ता, बिल्ली आदि ने भी विषय विकल्प ही किये। ऐसा जीना बेकार है कुछ भी चाह करने में अनर्थ है। अरे कुछ गहराई से सोच, यहाँ थोड़े ही समय रहना है फिर चल देना है, तब क्या चाहना।

ज्ञान में रहने और अज्ञान में रहने का भेद तो समझ लो

ज्ञान तो परमार्थतः वह है जिस ज्ञान में ज्ञान स्वरूप बसा हो, जिस ज्ञान का ज्ञेय ज्ञान हो, जो ज्ञानोपयोग ज्ञानप्रकाश में मिलकर अपने को लीन कर लेता है, जो ज्ञान अपने स्रोतभूत सहज ज्ञान स्वभाव को अभेद रूप से जानकर अपने को एक रस कर लेता हो, अब समझ कीजिये इस दृष्टि से ज्ञान के अतिरिक्त जो अब हो। वे सब क्या कहे जावेंगे ? अज्ञान। जो परिजन ज्ञान व वैभव को अपना मानता हो, जो ज्ञान, इस देह को अपना मानता हो, जो ज्ञान इन्द्रियों के विषय को रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द को भोगकर राजी रहता हो, जो ज्ञान मायामयी फैलाव में व्याप्त रहता हो, जो ज्ञान विषय कषाय के परिणामों को राग द्वेष मोह भावों की विकल्प वितर्क विचारों को अपना कर अपने को सही समझता हो, जो ज्ञान-ज्ञान स्वरूप को छोड़कर अन्य स्वरूप को ज्ञेय बनाता रहता हो वह सब वस्तुतः अज्ञान है। तुम ज्ञान स्वरूप हो सो जानने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के सिवाय तुम और क्या किया करते हो, चाहे कल्पना रूप में ढल कर जानो या कल्पना रूप में न ढलकर विशुद्ध ढंग से जानो। अब अपने को परख लो, तुम ज्ञान में रहते हो या अज्ञान में, अथवा कब तो ज्ञान में रहते हो और कब अज्ञान में रहते हो। तुम्हारे तुम ही विधाता हो, अन्तः वही सर्वत्र अपने सबके निर्माण के तुम ही अनोखे मूल आधार हो, तुम्हारे तुम ही शरण हो। ज्ञान में रहकर अपने को शान्त अनुभव करते हुए अन्तर्वर्हिजजाल से मुक्त हो सकते हो। एतदर्थ सर्व प्रथम ज्ञान में रहने और अज्ञान में रहने का भेद तो समझ लो।

इस दुनिया के लिये मेरी सत्ता ही है कहाँ

असल में पूछो तो तुम तुमही को नहीं जान रहे हो अथवा नहीं जान रहे थे। यहाँ तुम्हें तो कोई दूसरा जान ही नहीं रहा है और न जान ही सकता है। अच्छा निरखो तो अन्दर ! तुम क्या हो ? वचन जाल बन्द करके, आँखें बन्द करके, सभी इन्द्रियो का व्यापार छोड़ करके, मन से सकल पर का विचार बन्द करके, अन्तर्जल्प भी त्याग करके मात्र परम विश्राम से अवस्थित होकर। यहाँ तो उपयोग ज्ञान स्वरूप को जान कर ज्ञान स्वरूप में समाया जा रहा है, अहा अब रह गया ज्ञान मात्र अनुभव, लो अलौकिक अद्भुत आत्मोस्थ स्वाधीन सहज आनन्दका अनुभव यह है मेरा मैं ! अहा, अब समझा कि मैं क्या हूँ ? इसे तो यहाँ कोई दूसरा जान ही नहीं रहा है ! जो लोग भी मिलते हैं, जो लोग भी मुझसे बोलने का, राग करने का, द्वेष करने का, अधिक जो भी व्यवहार करते हैं वह व्यापार मुझसे कहाँ किया जा रहा है। ये तो मेरे बारे में जिस किसी भी परतत्त्व को मुझे मान लेते हैं और फिर उससे व्यवहार करते हैं। इन लोगों की दृष्टि में मैं आया ही नहीं। जब कभी इन लोगों में से कोई बिरला ज्ञानी जीव मेरी ही भाँति ज्ञानोपयोग का विधान करके याने इन्द्रिय मन का व्यापार बन्द करके परम विश्राम से अवस्थित होकर सहज ज्ञानानन्द स्वरूप का परिचय भी करेगा तो उसमें उसने अपना ही परिचय किया, तबभी मुझे तो न जाना। हाँ यह भी समझ लिया उसने कि अहो सभी जीव मेरी भाँति सहज ज्ञानानन्द स्वरूप हैं, तो इसमें यह मैं ही तो नहीं आया सब आये अथवा अन्य कोई न आया, वहाँ वही आया। मुझमें मैं ही आया मुझे यहाँ कोई जानता ही नहीं, फिर किससे व्यवहार करना, राग विरोध करना। इस दुनिया के लिए मेरी सत्ता ही है कहाँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस दुनिया के लिये मुझे अपना बताना क्या ?

यह दुनिया क्या है ? जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-काल इन ६ जाति के पदार्थों का समूह। इसमें से हम धर्म अधर्म आकाश काल इनसे तो कुछ बात किया नहीं करते। जितना बोल चाल, संग्रह, विग्रह आदि व्यवहार करते हैं सो जीव पुद्गल के प्रति। उनमें से भी जो जीवत्यक्त पुद्गल हैं ईंट, पत्थर आदि उनको हम अपना कुछ बताने का भाव भी नहीं करते हैं। जिनको हम अपना कुछ बताना चाहते हैं वे हैं ये संसारी जीव। संसारी जीवों में से भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पशु, पक्षी, इनको बताने का भाव भी नहीं करते। नारकी देव तो मिलते ही नहीं, नारकी तो यहाँ कभी आ ही नहीं सकते, इनको कुछ बताने का भाव भी नहीं होता। केवल मनुष्यों को ही कुछ अपना वैभव जौहर बताने का भाव करते और इस विकल्प के नाते इन मनुष्यों के समूह को हम दुनिया समझते। सो यह दुनिया क्या है ? याने यह मनुष्य क्या है ? प्रत्येक मनुष्य क्या है ? जीव, अनन्त शरीर वर्गणायें, अनन्तानन्त कर्म वर्गणायें, इन सबका पिण्ड है हर एक मनुष्य| सो शरीर वर्गणायें व कर्म वर्गणायें तो अजीब हैं, कुछ जानते ही नहीं इनको हम अपना कुछ बतायें क्या ? जीव है सो अदृश्य है और फिर इन शरीरों से निराला जो जीव तत्त्व है वह निर्विकल्प है इस जीव तत्त्व को हम लोग लक्ष्य में लेते भी नहीं हैं। यदि इसे लक्ष्य में लें तो इसे अपना कुछ बताने का भाव भी नहीं रहता और ऐसे पर जीव को कोई अपना कुछ बताना भी नहीं है। जिन किन्हीं को अपना कुछ बताने का भाव रहता है वे हैं ये दृश्य मात्र मनुष्य नामक मायामय पर्यायें। ये खुद कर्मों के प्रेरे जन्म मरण करने वाले असहाय और दुःखी हैं और इन्हें हम अपना जो कुछ बताना चाहते वह अपना नहीं ! फिर इस दुनिया के लिये मुझे अपना बताना क्या ?

इस दुनिया में रम्य पदार्थ है ही क्या ?

जीव जिन पदार्थों का आश्रय करके अपने को रमाया करता है वे पदार्थ हैं पुदगलस्कन्धायें भौतिक शब्द से भी कहे जाते हैं। भौतिक पदार्थों में ५ बात पायी जाती हैं—स्पर्श, रस, गन्ध, रूप व शब्द। यह जीव इनमें ही रमकर राजी रहना चाहता है, किन्तु यथार्थ दृष्टि से सोचो—इनमें रम्यता की बात है क्या ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी स्कन्ध का स्पर्श कर लिया, कोमल, चिकना, ठंडा आदि जो सुहाया, छू लिया इससे आत्मा में क्या वृद्धि हुई ? विकल्प विपदा ही पाई। हाड़ मांस वाले शरीर को कामवासना से विपन्न होकर स्पर्श किया, इसमें आत्मा को मिला क्या ? बन्धन बढ़ाया, विकल्प विडम्बना की; कठिन पापबन्ध किया और जन्म मरण की परम्परा बढ़ाई। खट्टा-मीठा आदि इष्ट रस वाले खान-पान. से तत्काल दिल को राजी किया इसमें आत्मा का क्या लाभ पाया ? घाटी नीचे माटी, आसक्ति बनाई सो आगे के लिए भी खटपट मचाना; मद चढ़ा तो प्रमादी हो मूढ़ता में समय गँवाना आदि अपनी विडम्बना ही तो की। सुगन्ध को सूँघ-सूँघ करके मौज मानने में आत्मा को प्राप्त क्या होता है ? व्यर्थ परदृष्टि करके अपने सहजानन्द धाम से दूर होकर विकल्पों का क्लेश ही तो भोगा जाता है। रूप देखकर राजी होने की मूढ़ता के बारे में क्या कहें, रूप न पकड़ में आता, इसे निकट कर लें तो दिखने में भी नहीं आता, न इससे कुछ हाथ आता, दूर ही दूर स्थित होकर रूप निरखे जाना और आशा, स्नेह, बन्धन के गड्ढे में अपने को पटक कर धक्के खाते जाना कितनी विकट मूढ़ता है। सुहावने राग भरे शब्द सुनकर भी ग्रहण में आया क्या ? आकुलता ! विनाशीक अहित मायामय भौतिक पदार्थों से सम्पर्क में अब तक तो क्लेश सहा अपने सहज, असीम ज्ञानानन्द धाम प्रभु की सुध भूलकर कीट, स्थावर नारक, पशु, पक्षी आदि दुर्गतियों में जन्म मरण करता रहा। अब भी चेत विषयों से विरक्त रह । इस दुनिया में रम्य पदार्थ है ही क्या ?

मेरा मेरे से बाहर है ही क्या ?

बाहर तो अन गिनता ढेर लगा है अनन्तानन्त परमाणुओं के स्कन्धों का। तुम्हें यदि उन ढेरों को अपना मानने की पड़ गई है तो मानते रहो। पर इस मान्यता से कहीं कोई भी पदार्थ परमाणुमात्र भी तेरा हो थोड़े ही जायेगा। तुझे पर पदार्थ अपना सा लगता है इस भ्रम का कारण निज में तो अज्ञान है और निमित्त दृष्टि से कर्मोदय है। इसके साथ-साथ कुछ यहाँ का यह वातावरण भी मददगार बन जाता है पर को अपना मानने में कि जैसा तू चाहता है इन भौतिक ढेरों को, ऐसे ही प्रायः ये सारे मनुष्य भी चाहते हैं इन भौतिक ढेरों को सो इस मोही मानव जगत ने तत्काल का कलह मिटाने के लिये सरकार बनाई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सबको यह कल्पना हो गई है कि मेरे को तो कम मिले हैं ये ढेर, जो चाह में चाह बढ़ती ही चली गई है, जितना ढेर रह पाया है निकट, उसमें ममता घनी हो गई। अब कर लो खूब ममता के विकल्प और हो लो दुःखी, कितने ही सिर पैर पीट लो, होगा नहीं परमाणुमात्र भी तेरा कुछ। अरे अज्ञान में अनन्ते जीवन पाये और मिटाये और पातें रहे, रहा सदा रीता का ही रीता। पर के आकर्षण में तो क्लेश ही होता है, जन्म मरण की परम्परा ही बढ़ती है, अज्ञान में और होगा क्या ? प्रियतम आत्मन् ! सच्चा ज्ञान कर, तू क्या है, कितना है, कैसा है यह अपने अन्तर में निरख ! ये भौतिक पदार्थ मोटी नजर से भी पर विदित हो रहे हैं इतनी समझ से भी पर जानकर एक बार तो सर्व की एक दम उपेक्षा करके अन्तर में रख तो अपने को तू जो है, जितना है, जैसा है, यथार्थ रूप से स्वयं अपने ज्ञान प्रकाश में अनुभूत हो जायगा फिर दृढ़ता पूर्वक जान लेगा कि मेरा मेरे से बाहर है ही क्या ?

जो मेरा है सो वह सब मेरे में ही है

पदार्थ का स्वरूप ही ऐसा है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप से है पर स्वरूप से नहीं, अपने ही प्रदेशों में अपने ही गुणों से परिणमता है पर के प्रदेशों में पर के गुणों से नहीं परिणमता है। तब जो मैं नहीं हूँ याने पर पदार्थ का बाह्य वस्तु का जो प्रदेश है गुण है परिणमन है वह सब उसी पर में ही तो रहेगा। तथा मेरा जो प्रदेश है गुण है परिणमन है वह मुझ में ही रहेगा। इससे यह निर्णय तो हो ही गया कि कोई भी पर पदार्थ चाहे धन वैभव हो, चाहे परिजन मित्रजन हों, चाहे कर्म नोकर्म (शरीर) हो वे सब खुद के अपने अपने द्रव्य में हैं, मुझमें तो मैं ही हूँ। अब इसके आगे एक समस्या और आती है कि राग, द्वेष, विकल्प आदि विभाव भी तो मेरा परिणमन हैं, मेरा क्या नहीं है, हाँ ठीक है जब विभाव हो रहा है तब वह मेरा परिणमन है, मेरे गुणों का परिणमन है मेरे प्रदेशों में परिणमन है। लेकिन इन में एक और बात भी पाई जाती है, जो स्वभाव परिणमन में नहीं है, इसका अन्वय व्यतिरेक निमित्तभूत पर पदार्थ के साथ है। इसी कारण वे अनित्य हैं और दुःख रूप हैं, उन पर मेरा अधिकार नहीं रहा; इनमें मेरे स्वभाव की प्रतिक्षता हो गई सो जैसे पहिले स्व-पर में चर्चा की थी वैसे ही अब स्वभाव विभाव चर्चा का विषय हो गया—स्वभाव शाश्वत है मुझ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में और दुःख रूप नहीं तथा नैमित्तिक नहीं, सो स्वभाव, ज्ञान दर्शनादिक अनन्ते गुण वैभव मेरा है और मेरे में है, विभाव राग द्वेषादिक विकार अनित्य हैं, विषम हैं, दुःख रूप हैं, दुःख हेतु हैं, नैमित्तिक हैं, हैं सो मेरे नहीं, मेरे स्वरूप में नहीं। जो मेरा है वह सब मेरे में ही है।

विकल्पों का राग मूढ़तापूर्ण राग है ?

मानव जीवन एक ऐसा अमूल्य जीवन है कि जिस जीवन में अध्यात्म साधना बन जाये तो जन्म पाते रहने का संकट ही दूर हो जायेगा। इससे आत्मार्थ की सिद्धि का लक्ष्य रखने वाले पुरुष को कुछ समय तक यह जीवन बनाये रखने के भाव से देह का राग हो जाता है तो वह मूढ़तापूर्ण राग नहीं है। उक्त आशय वाले गृहस्थ को गृहस्थी में आवश्यक होने से धनार्जन का राग हो जाता है तो यह मूढ़तापूर्ण राग नहीं है। उक्त आशय वाले श्रावक को पापों से बचने के लिये लोक लिहाज का भी सहयोग होता है ऐसा जानकर यश का राग हो जाय तो यह मूढ़तापूर्ण राग नहीं है। उक्त आशय वाले गृहस्थ को गृहस्थी में भी शान्त एवं प्रसन्न वातावरण का धर्म पालन में बहुत सहयोग मिलता है इस भाव से परिजन का राग हो जाये तो यह मूढ़तापूर्ण राग नहीं है। लेकिन जो राग विकल्प होता है यदि उस विकल्प में भी राग हो जाय तो यह मूढ़तापूर्ण राग है। विकल्प राग होते ही यह ज्ञानी ज्ञान भाव को छोड़कर अज्ञान भाव में आ जाता है। देह, धन, यश, परिजन आदि के विकल्प तो कुछ मोटे रूप से समझ में भी आते हैं उनका राग तो मूढ़तापूर्ण राग है ही, किंच धर्म चर्चा का स्वांग रचकर धर्म अधर्म आकाश काल जैसे, अमूर्त पदार्थों के चिन्तन, प्रतिपादन के समय जो बोध विकल्प होता है उस विकल्प का भी राग हो तो वह भी मूढ़तापूर्ण राग है। अरे, अमृत पदार्थ विषयक चिन्तनादि विकल्पों का भी राग होता है क्या ? हाँ होता है। वस्तु स्वरूप चर्चा करते समय प्रतिपादित बात न मानने से किसी को दूसरे पर क्रोध, विवाद, कलह हो जाता है यह उसका प्रमाण है। अहो, न विकल्पों से कुछ लाभ है, न राग से कुछ लाभ फिर विकल्पों के राग की अनर्थता की सीमा ही कौन बता सकता है विकल्पों का राग मूढ़तापूर्ण राग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार सारा दुःखमय है मुझे इससे पार होना है

संसार में सर्वत्र दुःख ही दुःख हैं, किसी भी स्थिति को देख लो। निगोद में था तो सर्वाधिक बुरी दशा थी, एक सेकेंड में करीब २३ बार जन्म मरण किये, ज्ञान न कुछ जैसा था, कहने को एक स्पर्शन इन्द्रिय भर थी महा संक्लेश। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पेड़, पौधा हुआ तो निज चाह के द्वारा संघटित हुआ। कीड़े मकोड़ों की दयनीय दशा तों प्रकट दिखती है, कौन उन्हें बचाता है, हिंसक लोग उनकी नाना रूप में उनकी हत्या कर डालते हैं। जैसे मछली पकड़ने वाले हिंसक केंचुओं को डोर में बाँधकर मछलियों को खिलवाते हैं। मछली आदि जलचरों की, पशुओं की, पक्षियों की भी हत्या निर्दयी निर्दयता पूर्वक किया करते हैं। कौन सी स्थिति ऐसी है यहाँ, जहाँ दुःख न हो। कुछ लगता है ऐसा कि मनुष्यों को तो मौज मिलती है। मनुष्यों की दशा भी देख लो दीन दरिद्र, भिखारी, लंगड़े, कोढ़ी, अन्धे तो दुःखी समझ में आ ही जाते हैं। जो कुछ मौजी मालूम देते हैं उनकी स्थिति देख लो, तृष्णा पिशाचिनी से इतने ग्रस्त है कि अहर्निश चैन नहीं, कुछ मोहनिद्रा में सम्मान पाने का ख्याल बना लिया तो उसमें क्षोभ की हैरानी बढ़ी हुई ही है। खैर कल्पित असार मौज सही, लेकिन यह भी कितने क्षण का है, शीघ्र मिटता है। इस मौज के रौद्रध्यान से नरक आदि दुर्गतियों में जन्म और लेना पड़ता है। संसार की सारी परिस्थितियाँ जीव के विकल्प अहित की उत्पादिका हैं। यहाँ विश्राम का कोई स्थान नहीं है। कहाँ मन रमाया जावे। जिस वस्तु में मन रमाओगे, उसकी अनेक स्थितियाँ दुःख का कारण बनेंगी अथवा कुछ अनुकूलता भी रहे, तो वियोग तो कोई मिट नहीं सकता, तब इकट्ठा विकट दुःखी होना पड़ेगा। हे आत्मन् तेरे अलौकिक पवित्र ज्ञानानन्द स्वरूप से बाहर कुछ भी विश्राम को ठौर नहीं है। तू यही निर्णय रख कि इस दुनिया से निराला बनने में, मुक्त होने में ही मेरी भलाई है। अपनी धुन यही बना—संसार सारा दुःख मय है मुझे इससे पार होना है।

सच्चे मायने में निर्मोह हो जावो, क्यों वृथा संक्लेश सहते हो

इस लोक में जिस-जिस को सुख हेतु मानकर उससे लगाव करते हो वही धक्का देता है धोका देता है। अनादि से अब तक किया ही क्या, जिस भव में जन्म लिया वहीं देह से, आहार से, परिजन से, वैभव से, समागम से मोह किया,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा कुछ नहीं, मिला कुछ नहीं। मिलता क्या ? प्रत्येक वस्तु अपने ही स्वरूप में सत् है, पर से कुछ मिलने की बात त्रिकाल असम्भव है प्रत्युत, परदृष्टि करके अपने को आकुलित ही बनाते रहे, वृथा संक्लेश सहते रहे। इस ही भव की बातों पर विचार कर लो—कभी दादा दादी से मोह रखा, उनका वियोग हुआ सो धक्का ही तो खाया। माता पिता से मोह रखा सो उनके वियोग पर धक्का ही तो खाया, अन्य भी परिजन से जिस-जिस से मोह रखा आखिर धक्का ही खाया। यश सम्मान से लगाव बना तो कितने विकल्प करने पड़ते किस-किस को प्रसन्न रखने की कल्पनाओं के बोझ से दबते। यह दिखती हुई दुनिया है कितनी, सारे लोक के सामने ? अनगिनते महायोजनों के सागर के समक्ष एक बूंद बराबर भी नहीं, तिस पर भी लोग, जिन्हें अपना असार कल्पित कुछ सकल सूरत नाम बताना चाहते हो, शीघ्र ही तो मर मिटने वाले हैं और ऐसे विकल्पक तुम भी तो मर मिटने वाले हो। अब यथार्थता के प्रकाश में बतावो क्या लाभ मिलता है पर के लगाव में ? कुछ भी तो नहीं, रंचमात्र भी तो नहीं। फिर क्या रखा है मोह में। मोह स्वयं अनर्थ है और अनर्थता की जड़ है। हे आत्मन् ! मोह की दुनिया में चक्कर काटते रहने से कुछ भी गुजारा न होगा। धक्के खा खा कर उस उस से मोह हटाने की बात कभी-कभी मन में लाते भी तो हो, मगर बनावटी। तभी तो फिर-फिर मोह करने लगते, अन्य-अन्य से मोह करने लगते। यदि सच्चे मायने में एक क्षण भी निर्मोह हो लो, तो फिर सारे संकट अवश्य ही मिट जावेंगे। सो अब निर्मोह, निर्विकार, निरंजन, ज्ञानानन्द स्वभाव का आश्रय लो और सच्चे मायने में निर्मोह हो जावो, क्यों वृथा संक्लेश सहते हो ?

अपनी इज्जत करो

इस माया मय लोक समुदाय से अपनी कीर्ति चाहना अपनी इज्जत मिटा देना है। अपने आत्मा की इज्जत तो इसमें है कि स्वच्छ सत्य ज्ञान के प्रकाश में रहकर अपने को निराकुल अनुभव किया जाय। जिस स्थिति में अज्ञान बसा है उसको तो बेइज्जती और तिरस्कार ही कहा जायेगा, इस मायामय मनुष्य समूह को अपना प्रभु समझना, यह विकट निपट अज्ञान ही तो है। जो अपने स्वरूप को जानते नहीं, पाये हुये शरीर की खुशामद करने में अति व्यग्र रहा करते हैं, जड़ को शरीर को अपना स्वरूप सर्वस्व समझते हैं कर्म प्रेरित होकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाना कुकर्मों में लगे हुये हैं, जो आगे नरक पशु जैसी दुर्गति में जन्म लेंगे वे मुझे कुछ अच्छा जान जायें तो मैं सुखी हो जाऊँगा, यों अपने सुख का आधार इन व्यामूढ़ों को समझना इसका अर्थ यही तो है कि इनको अपना प्रभु बना लिया और संसार शरीर भोग व्यामूढ़ी को प्रभु बनाने वाला है यह कौन ? यह अपनी सुध खोकर पाये हुये शरीर को आपा मानने वाला कर्म प्रेरित कामोही संसारी मैं। अहो मैं अपने आप के प्रभु पर कितना जुल्म ढा रहा हूँ। यहाँ किसी लौकिक व्यक्ति पर किसी प्रकार का जुल्म ढाऊँ तो यहीं मार पीट खाना पड़ती है, फिर तो यहाँ अलौकिक सार भूत शरण रूप पावन निज ज्ञायक स्वभाव भगवान आत्मा पर वास्तविक जुल्म ढाया जा रहा है, तो बताओ भगवान आत्मा की बेइज्जती करके संसार में दुर्गतियों में भ्रमण कर क्लेश संक्लेश पाने की बेइज्जती पाये यह तो विधि का न्याय ही है। हे आत्मन् ! अपने को अज्ञान में बसाकर अपनी नाना दुर्गतियें करने की बेइज्जती बहुत की, क्या सार निकला ? अब इस मायामय लोक समूह से अपने माया मय अपावन रूप की मायामयी की इज्जत न ाहकर अपने को पवित्र ज्ञानानन्दस्वरूप अनुभव करके वास्तविक अपनी इज्जत करो।

अपने निरापद स्वरूप को निहार कर निहाल हो जाओ

आत्मा का अपना सहज धाम निरापद है। इसके अतिरिक्त अन्य सब भावों में आपदायें ही हैं। आपत्तियाँ बाहर से न आती हैं, न आ सकती हैं। बाह्य पदार्थ का उपयोग करके और उनकी परिणतियों को अपने कषाय पोषण के अनुकूल न पा करके बनाये गये विकल्प ही आपदायें हैं। ये आपदायें आत्मा के अपने सहज स्वरूप में नहीं हैं। ये विकल्प नैमित्तिक हैं, आश्रित हैं। आत्मा स्वतः सिद्ध और निरपेक्ष है। आत्मा का सुधार बिगाड़ सारा अपने स्वरूप और विकल्प के आधार पर निर्भर है। बरबादी और आबादी का सकल ढंग अन्तः ही पड़ा हुआ है। जब नैमित्तिक, आश्रित विकल्प का लगाव बनाते सहज ज्ञान स्वभाव का आश्रय करते हैं, तब जीव निहाल हो जाते हैं। उपयोग की दिशा पर अवलम्बित है निहाल होने का उपाय, जब कुछ किया जाता है तब यह मर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्ट विदित होता है। हे आत्मन् ! जब सब कुछ तेरी दृष्टि पर निर्भर है तब क्यों नहीं योग्य दृष्टि करने का पुरुषार्थ करता है। बाह्य पदार्थ का आश्रय करके जो विकल्प बनाये जाते हैं वे सब विकल्प भी असार हैं, आत्मा के अस्वरूप हैं उनके निहारने में लगाव में कुछ भी सार नहीं है। उनके निहारने का, आश्रय करने का भी यत्न क्या किया जाय। आत्मा का स्वरूप, शुद्ध ज्ञान प्रकाश ही सार भूत है, शरण है, निरापद है। इस निज में एक रस होकर उपयोगी होने में कल्याण है। अब बाह्य दृष्टि करके बेहाल मत होओ, अपने निरापद स्वरूप को निहार कर निहाल हो जाओ।

मोह में सब कुछ खोया ही खोया है, पाया कुछ नहीं।

अनादि काल से अब तक अनन्ते जन्म मरण किये, सर्वत्र मोह में पर्याय बुद्धि करके संक्लेश में जीवन गँवाये, मरे, रीते के रीते रहे। जिन शरीरों को धारण किया वे अनगिनत जाति के तुच्छ, तुच्छाति, तुच्छ देह थे। उनमें तो पाने का किसी का प्रश्न ही नहीं होता जो कुछ समझदार भाव थे उनमें भी कुछ न पाया, जिसका जीता जागता प्रभाव यह है कि उन भवों में मरण कर कर आज भी तो रीते की स्थिति में हैं। अतीत भवों में पाया कुछ नहीं खोया ही खोया है, यह तो शीघ्र ही समझ में आ जाती है। अब जरा इस जीवन की बात पर विचार करो बचपन में किन किन से मोह किया, उनसे कुछ मिला भी है क्या ? कुछ नहीं मिला ! विकल्प कर कर के समय ही गँवाया। कुछ बड़े होने पर मोह की दिशायें बदलीं, वहीं की बात सोचो, किन किन से मोह किया, आखिर हुआ क्या वे दिन भी गये, वह समागम भी गया, वहाँ भी मिला कुछ नहीं। बूढ़े लोगों की स्थिति देखो, बुढ़ापे की बात भी झट समझ में आ जाती कि कुछ नहीं हाथ है उनके। यह मानव जीवन भी यों ही व्यर्थ समाप्त हो जाने वाला है। ऐसे मोहयुक्त जीवन से जी कर लाभ क्या ? देखो बूढ़े होने पर स्पष्ट विदित होता है कि यों सारा जीवन गँवा डाला, इसमें हमने सब कुछ खोया ही खोया है। क्या क्या खोया ? पहिले तो यही बात समझ लो कि दुर्लभ मानव जीवन की सारी उम्र खोयी, और फिर विषयों के मोह में रहकर अपना बल खोया, देहबल खोया, मोह के विकल्प में दिमाग लड़ा भिड़ाकर बुद्धि खोई। तभी तो लोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं कि ६० वर्ष के बाद मनुष्य सठ्या जाता है, लेकिन सभी मनुष्य नहीं सठ्याते, जिनकी उम्र मोह मोह में ही गुजरती है वे ही सठ्याते हैं, ज्ञान प्रकाश में रहने वाले संतजन तो बूढ़े होने पर और भी विशेष उज्ज्वल ज्ञानी रहते हैं। हाँ तो मोह के विकल्प में बल खोया, बुद्धि खोई, उम्र खोई, आनन्द खोया, श्रम कर कर के धन कमाया वह भी दूसरों के हाथ गया, लो धन खोया। अटपट वचन बोल कर वचन का दुरुपयोग किया शब्द भी साफ नहीं निकला लो वचन बल भी खोया। तन, मन, धन, वचन, ज्ञान, आनन्द, बल आदि सब कुछ खोया। अब तो रहे सहे जीवन की रफ्तार को बदल। मोह से उपयोग को मोड़ निर्मोह बन। देख मोह में सब कुछ खोया ही खोया, पाया कुछ नहीं।

निज स्वरूप दर्शन में सकल संकटहारी प्रभु के दर्शन होते हैं।

प्रभु शरीर का नाम नहीं है कि प्रभु को आँखों से देख लिया जाय, बाहर कहीं ढूँढ लिया जाय। ज्ञान और आनन्द भाव के पूर्ण विकास का नाम प्रभु है। बाहर भी किसी पावन देह में स्थित प्रभु को निरखने चलें तो वहाँ भी अन्तर में ज़ो ज्ञानान्द से पूर्ण विकसित आत्मा है वह प्रभु है। इसके दर्शन चर्म चक्षुओं द्वारा नहीं होते हैं ! विशुद्ध ज्ञान और विशुद्ध आनन्द रूप कुछ परिणति अपनी बने तो इस उपयोग द्वारा प्रभु का अनुभव रूप दर्शन होता है। प्रभु दर्शन में अलौकिक आनन्द साम्राज्य भरा हुआ है। प्रभु दर्शन बिना मानव जीवन का कोई अर्थ नहीं है। प्रभु दर्शन से ही कर्मक्षपक श्रेणी द्वारा बढ़कर व्यक्त प्रभुता पा ली जाती है। प्रभु दर्शन के महोपकार का वर्णन सहस्त्र/जिह्वावाला भी यदि कदाचित् बृहस्पति हो जाय, तो वह भी नहीं कर सकता है। प्रभु दर्शन के प्रसाद से जन्म, मरण, रोग, विकल्प आदि समस्त संशय के संकट सदा के लिये छूट जाते हैं। हे आत्मन ! दुर्लभ यह पावन मानव जीवन पाया है तो प्रभु दर्शन पाने का दृढ़ संकल्प कर लो। प्रभु दर्शन अति सुगम और महत्वशील पुरुषार्थ है। प्रभु दर्शन के लिये ज्ञान भावना एक मात्र साधन है। मैं ज्ञान स्वरूप हूँ, ज्ञान मात्र हूँ ऐसी अनुभूति के लिये अन्तः प्रवेश करके गुप्त होकर विशुद्ध निज ज्ञान प्रकाश रूप स्व का अनुभव होने दो। निज स्वरूपदर्शन में सकल संकट हारी प्रभु के दर्शन होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख नहीं चाहिये तो राग छोड़िये।

जितना भी दुःख होता है उसका कारण राग है। बच्चों को जब जब जो-जो दुःख होता है उन्हें भी किसी विषय का राग है या सम्मान अपमान की कल्पना करके या मेरी इच्छानुकूल मेरी माता आदि मेरी बात नहीं करते ऐसा सम्मान का राग है सो राग का दुःख बच्चों ने बनाया है। कुछ बड़े होने पर उस अवस्था के योग्य मन चलने लगता है सो धन का, स्त्री का, पुत्र का, यश का, आदिक अनेकों विषयों का राग उठने लगता है। कभी घर भी त्याग दिया तो जिस समागम में रहे उस प्रसंग के कोई राग होने लगते अथवा पूर्व घरवासी किसी जीव का सन्निधान हो तो कदाचित् उससे अलग रहने की वृत्ति बना करके या उससे लगाव का अंश रख कर के राग भोगा जाता है। सभी प्रसंगों में यही बात है कि राग है तो अवश्य दुःख है। अब जरा विवेक पूर्वक सोचिये कि तुम तो कैसे हो और राग कैसा है। तुम अमूर्त ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्य भाव हो, तुम्हारे कोई नाम नहीं, तुम्हें यहाँ कोई जानता नहीं, तुम्हारी यहाँ कोई बात नहीं, सिर्फ पर्यायबुद्धि करके इस अशुद्ध देह को आप मान करके विकल्प बनाया करते हो। ये विकल्प, ये राग मात्र कुभाव हैं, विनाशीक हैं, पराश्रित हैं, दुःख रूप हैं, अहित मय हैं। यदि तुम्हें दुःख पसंद नहीं है तो राग छोड़ने का यत्न करो, बाह्य पदार्थ में तुम्हारा दुःख नहीं पड़ा हुआ है और न बाह्य पदार्थ से निकल कर दुःख आता है। दुःख जहाँ होता है वहाँ ही कुछ यत्न करना है, दुःख जिस विधि से होता है उससे विपरीत कुछ यत्न करना है। दुःख होता है अपने स्वक्षेत्र में (अपने में), सो अपने स्वक्षेत्र में ही पुरुषार्थ करना है। दुःख होता है सम्बन्ध ज्ञान की विधि से, सो भेद ज्ञान की विधि से विविक्ता का यत्न करना है। दुःख होता है राग भाव से, राग रहित अविकार विशुद्ध ज्ञान भाव करना है। समस्त पर पदार्थ मुझ से अत्यन्त निराले हैं उनसे राग भाव वाली कल्पना करके दुःख बनाया जाता है। दुःख नहीं चाहिये तो राग छोड़िये।

ओ३म् निर्नाम शुद्धं चिदस्मि।

अपने नाम की कल्पना करना सर्व अनर्थों का मूल है। लोक लोक व्यवहार के लिये इस भव मूर्ति (देह) का नाम रखा करते हैं। मोही जीव इस भव मूर्ति को आपा मान लेते हैं और नाम करण से भव मूर्ति में आत्मत्व का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अति दृढ़ अध्यवसाय कर लेते हैं। बस फिर क्या, तन के सारे परिश्रम इस भव मूर्ति की नाम वरी के लिये करना पड़ गये। देह को कितने ही संकट में डाल दिया जाय, अहर्निश भ्रमण करना पड़ जाय, जनता के सामने कातर मुख मुद्रा में रहना पड़ जाय, सब कुछ करने को यह मोही तैयार रहता है और करता है जिसके एवज में इतना ही ख्याल बनाना चाहता है कि मेरी (भव मूर्ति की) नाम वरी हो रही है और क्या, मन के सारे श्रम इस भव मूर्ति की नाम वरी के लिए करना पड़ गये। मन नाना प्रकार के विकल्पों में उलझा रहता है, कहाँ बैठे, किस लिये बैठे, क्या करने बैठे, कुछ खबर नहीं, मन उड़नखटोला बन रहा है। इस मन की हैरानी से सारा आत्मा झक झुरा जा रहा है, ऐसी कल्पनाओं का जाल गूँथा जाता है कि उन कल्पनाओं को किसी के सामने कहने में शर्म आती है। यह सब बरबादी नाम के लगाव से होती है। और क्या, कभी वचनों की हीनता, कभी वचनों की कठोरता, कभी बकवाद करते रहना, नाना प्रलाप इस नाम के लगाव के कारण करने पड़ते हैं। और क्या, धन कमाने के लिये पहिले तो घोर संकट सहा और फिर नाम वरी का मौका समझ कर धन को लुटाया, यह सारा श्रम भी कितनी सी बात के लिये किया जा रहा है, सिर्फ इस ख्याल को बनाने के लिये कि मेरी (भवमूर्ति की) नाम वरी हो रही है। हे प्रियतम आत्मन् तू अपना स्वरूप तो देख, बाहर के माया रूपों से उपयोग को हटा, तू एक शाश्वत प्रतिभासस्वरूप ज्योतिमात्र है इस तेरे का कुछ नाम ही नहीं है। यदि कुछ इसका नाम रखा जाता है तो वह वाचक शब्द के रूप में ही हो सकता है, सो जो भी नाम कहो वह नाम अनन्तानन्त समस्त जीवों का है, फिर तेरा ही उसमें क्या रहा। तू नाम के चक्कर में आकर बरबाद हो रहा है वस्तुतः तू नाम रहित विशुद्ध ज्ञान प्रकाश मात्र है। तू अपना अनुभव कर—मैं नाम रहित शुद्ध चैतन्य हूँ। ओ३म् निर्नाम शुद्धं चिदस्मि।

देह त्याग कर जो यह जाने वाला हूँ वह मैं हूँ

देह में रहकर भी देह से निराला ज्ञान प्रकाश मात्र यह मैं रहने वाला हूँ। इस ही ज्ञान प्रकाश मात्र मुझमें मेरा समस्त वैभव है, पूर्ण शाश्वत स्वाधीन आनन्द है। मुझमें हितमय तत्त्व की रंच भी कमी नहीं है। मैं मेरे से चिग पर बाह्य में दृष्टि देता हूँ तो मेरे में कमी हो जाती है, फिर क्यों बाहर रहूँ ? बाहर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा कुछ भी नहीं है, बाहरी बात में मेरा कुछ भी सार नहीं। बाहर तो सब धोका ही धोका है, इन्द्र जाल है, कल्पना करके कुछ भी समझते जाओ, पर मिलता कुछ नहीं, तत्त्व कुछ नहीं। अब पूर्ण संकल्प के साथ अपने अन्तः ही प्रवेश कर, प्रवेश करता ही जा, इस ही निज अन्तः ज्ञान प्रकाश मात्र स्वरूप में गुप्त हो जा। यों निराला निरंजन निर्लेप अपने को ज्ञान मात्र अनुभव किये जा ज्ञानानुभूति के सिवाय और कुछ करने का काम भी तो नहीं है, और कुछ करना ही क्या है ? ज्ञान का स्वरूप ज्ञान के आगे रखकर ज्ञान को वहीं के वहीं ज्ञान स्वरूप में मिलाकर ज्ञान भाव अनुभवे जा। इसमें ही तेरा परम हित है। ऐसा करते हुये भी पूर्व वासना वश यदि कुछ थकान मालूम हो तो अब इस तरह भी सोचने लग कि देह में इस समय मैं बँधा हुआ हूँ, रह रहा हूँ, कुछ ही काल बाद यह मैं देह त्याग कर निश्चिन्त हो जाऊँगा ही, वह काल अब अति शीघ्र आने वाला है। मानो आया समय, यह मैं देह त्याग कर जा रहा हूँ, कैसा मैं यह अकेला हूँ, भाव मात्र। यहाँ भी मैं समस्त पर तत्त्व से निराला, केवल चिंज्योतिमात्र हूँ। अहा यह मैं निज विशुद्ध द्रव्य, यह मैं निज विशुद्ध क्षेत्र, यह मैं निज विशुद्ध काल, यह मैं निज विशुद्ध भाव, कैसा अलौकिक पूर्ण साम्राज्य है, इस मेरे को मेरा अभेद भावन मन हो। अच्छा अब पुनः इस साम्राज्य को एक झलक में लेकर अनुभव करो देह त्याग कर जो यह जाने वाला हूँ वह मैं हूँ।

देह में रह कर भी देह से निराला
यह ज्ञान प्रकाश मात्र हूँ मैं

देह त्याग कर जो यह जाने वाला है वह अकेला निर्भार, निष्काम, निर्नाम, निराहार, निर्विहार, निर्विकार चित्प्रकाश मैं हूँ। सदा के लिये देह त्याग कर कैवल्य स्थिति में रहूँगा, तब तो प्रकट ही निर्भार, निराहार, निर्विकार परिपूर्ण ज्ञानानन्दात्मक होऊँगा, वहाँ तो व्यवहार करने के लिये नाम भी नहीं हो सकता। भव का नाम लेकर अभव को पुकारने से नाम थोड़े ही कहा जा सकता है, क्या पूर्व भव के नाम से उत्तर भव का व्यवहार करता है कोई। अथवा करे कोई तो वह उपचार है। तो जैसा देह से सर्वथा पृथक रहकर मैं होऊँगा, स्वरूप दृष्टि करके विचारूँ तो देह में रहकर भी अब भी मैं अपने को ऐसा लख सकता हूँ। शरीर से तो निराला पदार्थ ही हूँ मैं। जरा बाह्य दृष्टि न करके अन्तः विशुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्राम करते हुये अन्तः निहारो तो। द्रव्य कर्मों से भी निराला पदार्थ हूँ मैं, लेकिन इससे भिन्न हूँ मैं, इस भावना के अभ्यास का श्रम करने की जरूरत नहीं, कारण इसका यह है कि यद्यपि सर्वापदाओं का मूल निर्मित कर्म ही है, तथापि यह न दिखाई देता है और न स्वयं बंध है। अब और अन्तः परिशुद्धि करने के लिये चलें—राग द्वेष संकल्प विकल्प वितर्क विचार आदि विभवों से भी निराला विशुद्ध अन्तस्तत्त्व हूँ मैं। ये विभाव यद्यपि पर द्रव्य नहीं, इन्द्रिय गम्य नहीं, तथापि स्वयंविदित होने से इन्द्रिय गम्य पदार्थ से भी अधिक साफ विज्ञात हो जाते हैं ये बाह्य पदार्थ का उपयोग न करके निज में लिखने पर। इतना विविक्त विशुद्ध शान्त अन्तस्तत्त्व हूँ मैं। अब देह से निराला निज को अनुभवने में क्या दिक्कत है। बाह्य दृष्टि हटाकर अन्तर्दृष्टि करके निहारते जावो, विशुद्ध आनन्दानुभूति से तृप्त होते हुये निहारते जावो—देह में रहकर भी देह से निराला यह ज्ञान प्रकाश मात्र हूँ मैं।

बाहर में कुछ गर्जो, बर्सो, वर्तो, रहो, होओ, अब बाहर में मुझे कुछ प्रयोजन नहीं रहा।

जब अन्तः समय में परम पावन परम आत्मतत्त्व के दर्शन हो रहे हैं तब अब अन्य किसी से प्रयोजन ही नहीं रहा, परमात्मतत्त्व के दर्शन लाभ से बढ़कर लोक में कुछ है ही नहीं। बाहर अब कुछ भी होता रहो वह तो उस उसके उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्म से उस का ही सब कुछ हो रहा है उससे मुझे क्या। कोई लोग कैसे ही बोलो, नाना निन्दन करो अथवा प्रशंसन करो, अपना बुद्धि बल लगाकर कैसी ही शब्द रचना करो, कषाय भाव में आकर कैसा ही गर्जो, यहाँ तो यह मैं अचल शाश्वत चिदानन्द स्वरूप परम शरण परमात्मतत्त्व के दर्शन पा रहा हूँ। यहाँ तो विशुद्ध आनन्द ही आनन्द उमड़ रहा है इस आनन्द मय भाव से हटकर विकल्प विपदा में पड़ने का मेरा भाव ही नहीं रहा। कोई मुझसे वर्तमान में लगे हुए देह पर दृष्टि रखकर किसी कारण से वचन काय की तीव्र चेष्टा करके कैसा भी प्रहार करना चाहता है बरसना चाहता है, बर्सो, इससे ही कोई शान्त सुखी हो सकता है तो होओ, यहाँ निर्विकल्प समाधिभाव की झलक के कारण कल्पना उठाने का भाव नहीं रहा। कोई किस तरह प्रवृत्ति करता है, कोई किस तरह, जिस चाहे रूप कोई वर्तो, मेरी वर्तना तो अब सहज सुगम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वतत्त्व के अनुरूप होने की हो रही है। कोई कहीं ही रहो, कैसे ही रहे, बाहर जो कुछ होता रहा है, मुझे मेरा प्रयोजक मेरा प्रभु मेरे पर अब प्रसन्न हो रहा है, मुझे अन्य किसी बात का प्रयोजन ही नहीं है। अहा ! कैसा अलौकिक सारभूत यह स्वरूप मिलन है मुझे कैसा सर्वस्व प्राप्त हो गया। अब किसी विकल्प में आना ही नहीं चाहता है। बाहर में कुछ गर्जो, बर्सो, वर्तो, रहो, होओ, अब बाहर में मुझे कुछ प्रयोजन ही नहीं रहा।

मेरी निधि यह मैं हूँ अनन्त काल बाद इसका अनायास लाभ हुआ, अब इसे मैं अपने में गुप्त ही रखूँगा।

मैं अपना सुख, अपना शरण, अपना हित अब तक बाहर रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द यश कीर्ति नामवरी आदि में ढूँढता रहा, पर ज्यों ज्यों उनमें लगता रहा त्यों त्यों उलझता गया, दुःखी होता गया, धक्का खाता रहा, धोका पाता रहा। बहुत बहुत धक्के खाने के बाद कुछ किसी भी प्रकार उनसे हटने की सोची, तब कुछ बाह्य निमित्त से निश्चयतः कुछ ज्ञान योग से वस्तु स्वरूप की पहिचान पूर्वक समझ पाया कि मेरा सुख, मेरी शरण, मेरा हित यह मैं ही ज्ञान स्वरूप सत् हूँ, मुझ से ही मेरा आनन्द प्रकट होता है, मेरी निधि यह मैं ही हूँ। अनेक श्रम के बाद श्रम करना छोड़ने की ठानी तब देखो अनायास ही इस अपरिहार्य निधि का लाभ हुआ। अब मेरे को अन्य कुछ नहीं चाहिये। अन्य किसी से मेरे को कुछ मिल भी नहीं सकता, पहिले भी कुछ मिल तो नहीं रहा था, पर भ्रम किये हुये था, जो कुछ भी सुख आदि हो रहा था, वह मिल तो रहा था इस ही मेरी निधि से, भ्रम से मान रहा था कि इस बाह्य विषय से ही मुझे सुख मिल रहा है, जैसे कि कुत्ता हड्डी चबाकर खुद के फटने वाले मसूड़े से निकले हुए खून का स्वाद लेता है और भ्रम वश मानता है कि इस हड्डी का स्वाद ले रहा हूँ। अब भ्रम मिटा, सत्य स्वाधीन शाश्वत ज्ञानानन्द स्वरूप निधि का लाभ पाया, अनुभव पाया। अब इस स्वरूप दर्शन को अपने में बनाये रखूँगा, इसे न भूलूँगा, न छोडूँगा, अपने में ही गुप्त विधि से गुप्त ही रहूँगा, सुरक्षित बना रहूँगा। मेरा सर्वस्व लाभ मेरी निधि से ही मिलना है। मेरी निधि यह मैं हूँ, अनन्त काल बाद इसका अनायास लाभ हुआ, अब इसे मैं अपने में गुप्त ही रखूँगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्त ज्ञान को सहज ज्ञान में रमा कर समा कर सहज प्रकाशमात्र रह जाने दो, यही सर्वस्व हित है

यह ज्ञान बाह्य विषयों में रम कर संतुष्ट रहना चाहता है बस यही एक मात्र विपदा है। विपदायें अनेक नहीं हैं, बाह्य विषयों के भेद से मोही जीव ने विपदायें अनेक मान ली हैं। विपदाओं में होता क्या है और विपदाओं का मूल कारण क्या है ? इन दो बातों पर विचार करने से स्पष्ट विदित हो जाता है कि विपदा मात्र एक ही है। विपदाओं में आकुलता का परिणाम ही तो होता है और विपदा निज स्वरूप का आश्रय तज कर अनिज में ज्ञान रमता है इसी कारण से तो होती है। तब विपदा मात्र यही तो हुई कि यह ज्ञान बाह्य विषयों में रम कर संतुष्ट रहना चाहता है। अब समझ लो विपदा का मिटा देना कितना सरल है। चूँकि विपदा एक ही है ना, तो इस एक विपदा को मिटा देने से निरापद आत्मा हो जाता है। जो जीव बाह्य भेद से कल्पित अनेक विपदाओं की बुद्धि करके उन विपदाओं को मेटने का प्रयास करते हैं तो वे बाह्य पदार्थ के संग्रह विग्रह हटाने मिटाने का ही तो प्रयास करेंगे सो, बाह्य पदार्थ का परिणमन बनाना जीव के आधीन बात तो है नहीं, कदाचित् इसकी इच्छा के अनुसार परिणमन मिल जावे तो अज्ञानभाव होने के कारण अन्य इच्छा हो जाती हैं सो अन्य अनेक विपदायें बन जाती हैं। तो यों बाह्य में विपदायें मानकर तो कोई विपदा समाप्त कर ही नहीं सकेगा। अरे बाह्य में क्यों झूठ मूठ विपदा की कल्पना करके दुःखी होते हो। बाह्य में विपदा है ही नहीं। अन्तर में देख तेरा कुछ बुरा है तो वह भी तुझ में ही है, तेरा जो कुछ भला है वह तो तेरे में है ही। तो तुझ पर विपदा यही है कि तेरा ज्ञान बाह्य विषयों में रम कर संतुष्ट रहना चाहता है। यदि विपदा दूर करना हो तो जो ज्ञान स्वभाव को उपादान करके ज्ञान प्रकट हो रहा है, व्यक्त हो रहा है उसको बाह्य विषयों में मत रमाओ, बाह्य में तेरा धर्म नहीं है, बाह्य में तेरा सार नहीं है, बाह्य में तेरा कुछ नहीं है। इस ज्ञान को इस ही ज्ञानस्वभाव में रमाओ जिस ज्ञान स्वभाव के उपादान से ज्ञान प्रकट होता है। देख, तेरे से बाहर तेरा कहीं भी हित नहीं है। व्यक्त ज्ञान को सहज ज्ञान में रमा कर समा कर प्रकाश मात्र रह जाओ यही सर्वस्व हित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा नाथ मेरे निकट रहे, सिवाय इसके अन्य कुछ रंच मात्र भी शरण नहीं है

अनादि काल से अब तक अनन्तों भव पाये, उनमें सभी जीवों से कुछ न कुछ सम्पर्क बना, सबके निकट रहे, किन्तु शान्ति की तो आशा ही क्या, अशान्ति ही अशान्ति प्राप्त हुई। इन अनन्तों भवों में सभी पुद्गलों का उपभोग किसी न किसी ढंग में कर लिया गया। वहाँ भी अशान्ति ही भोगी। सच तो यह है कि पर पदार्थ के सम्पर्क में परतत्त्व के संयोग में शान्ति कभी प्राप्त हो ही नहीं सकती। अब मनुष्य भव में आये। मनुष्य भव बहुत ही श्रेष्ठ भव है। सदा के लिये संसार संकटों से छुटकारा पाना मनुष्य भव से ही सम्भव है। यद्यपि इस युग के इस मनुष्य भव से साक्षात् निर्वाण नहीं है तथापि निर्वाण का कोई उपाय बना लेना तो सम्भव है ही। वस्तु का यथार्थ विज्ञान करके उस सम्यक ज्ञान पर ही डटे रहें, इसमें क्या कोई दूसरा अड़चन डाल सकता है ? नहीं। लेकिन इस श्रेष्ठ मनुष्य भव में आकर कितनी बड़ी छल पूर्ण यह विपत्ति लगाली जाती है कि अपनी पोजीशन बनाना। पोजीशन और पौयजन (Poison) में अन्तर क्या है ? बल्कि पौयजन (विष) से तो एक ही भव का मरण होता है किन्तु पोजीशन की सम्भाल में अनेकों भवों में जन्म मरण करने पड़ते हैं। पौयजन तो कभी निर्विष भी बनकर मरण से बचा देता है किन्तु पोजीशन के परिणाम से रक्षा की गुंजाइश भी नहीं है। मनुष्य गति में मान कषाय की अधिकता बताई गई है वह प्रकट नाच करती हुई विदित हो रही है। पोजीशन के भाव में यह मनुष्य अनेकों से ईर्ष्या करने लगता है, अनेकों को अपने निकट बनाया करता है। सो यह मनुष्य अनेकों मलिन दुर्गत मनुष्यों में सम्पर्क रखता है। विषय लोभ में अनेक परिजनों से सम्पर्क रखता है लेकिन शरण मिलना तो दूर रहा इनकी ओर, पर की ओर दृष्टि जाते ही यह असहाय और आकुल हो जाता है ! अनेकों के निकट रह कर सब हाल बेहाल बन कर सब हाल समझ लिया, अब तो अपना यह दृढ़तम निर्णय बनाओ—मेरा शरण तो मेरा निरपेक्ष निरंजन सहज ज्ञानानन्द स्वभाव ही मेरा नाथ है, इसका ही उपयोग रहे इसकी ही निकटता रहे। इस निजनाथ के दर्शन में ही सर्वस्व हित है। मेरा नाथ मेरे निकट रहे, सिवाय इसके अन्य कुछ रंच मात्र भी शरण नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब आवे सन्तोष धन सब धन तृणहि समान

हाय ! संसार कितना संकट मय है। संकट भी क्या ? एक तृष्णा, जिसका मूल कारण है मोह। जिसकी पद्धति है अज्ञान। यह मोही जीव अपने वास्तविक निरपेक्ष सहज ज्ञानानन्द स्वरूप को न जानकर बाह्य में आनन्द की बुद्धि करके बाह्य अर्थों की ओर चल पड़ा है, यह तो है मोह की पद्धति, तथा इस पद्धति से देह को आपा माना है, विषयों को परिजनों को कीर्ति को अपनी माना है, यह है इसका व्यामोह। बस अब क्या, अज्ञान पद्धति से ध्यानामोही बनकर विषय तृष्णा में अपनी योग्यता की पूरी शक्ति से लग गया है। देखो—वृक्ष कीट पतंगे आदि विषय तृष्णा में लग गये हैं, इस पर कोई अधिक आश्चर्य नहीं हो रहा है। बेचारे वे असंज्ञी हैं, मन उनके है ही नहीं, वे विवेक कर ही नहीं सकते। सो आनन्द के लिये अपनी योग्यतानुसार आहारादिक तृष्णा में लग गये हैं। पशु पक्षी आहारादिक की तृष्णा में कुछ सम्मान अपमान के मोह में लगे हुए हैं इस पर कुछ आश्चर्य होता, किन्तु मनुष्य जो तृष्णा में व्यामोह में फँसा है इस पर अधिक आश्चर्य होता है। लाख, करोड़, अरब आदि कुछ भी तो सीमा नहीं है धनीजन के लिये। अहर्निश कठिन परिश्रम किये जा रहे हैं। इन्द्रिय विषय सेवन में तो पशु पक्षियों से भी बढ़ चढ़कर लगा हुआ है यह मानव कीट। नामवरी कीर्ति की तृष्णा की कहानी कौन कह सकता ? भायाचार, ईर्ष्या, विरोध, हिंसा, असत्यवाद आदि समस्त अवगुणों का स्वागत नामवरी की तृष्णा में किया जा रहा है। इस तृष्णा राक्षसी से ग्रस्त हुए इस मनुष्य को रंच भी चैन नहीं है। और तो क्या तृष्णा का उद्देश्य बना डाला है। नामवरी के लिये क्या-२ हथकण्डे खेले जाते हैं। हाय यह संसार तृष्णा की आग की असंतोष की ज्वाला में जल-२ कर बरबाद हो रहा है। इसमें असार धन वैभव, विषय नामवरी जो माया रूप है। इस जीव को जब स्वपर विवेक प्रकट हो, यथार्थ अन्तस्तत्त्व का ज्ञान हो तो सहज आनन्द की झलक होने से इसका असंतोष मिट सकता है और जब आवे संतोष धन सब धन तृणहि समान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा प्रियतम मुझे मिल गया, अब सब अपने अपने घर जाओ

अनादि से अब तक सुख की आशा से किस २ को निकट रखा, किस २ के निकट रहा इसकी बड़ी लम्बी कहानी है। जिस पर्याय में गया उस पर्याय के अनुकूल पर सम्पर्क करके विकल्पों का श्रम किया शान्ति कहीं प्राप्त न हो सकी। पर को अपना प्रिय बनाया, समय २ की अवस्था के अनुकूल स्थिति व कषाय वाले जनों को अपना मित्र बनाता रहा, उनसे मिला क्या ? मिल भी क्या सकता था, कोई दे भी क्या सकता था। निःस्वार्थ भाव से देने का भाव भी होना कठिन था। उल्टा प्रसन्न रखने के खातिर अनेक विकल्पों का श्रम किया। मोह के आश्रयभूत पुत्र, स्त्री आदि परिजनों को अपना बनाने का विकल्प किया। उनसे मिला क्या, मिल भी क्या सकता था ? उल्टा उन्हें प्रसन्न रखने की खातिर व्यर्थ विकल्पों के बोझ से दबा रहा ! मोह के प्रधान आश्रयभूत नामवरी की चाह में किन-किन के निहोरे किये, किन किन से सम्पर्क बनाया, उनसे मिला क्या मिल भी क्या सकता था ? उल्टा उन्हें खुश करने की खातिर वचन वैभव को बरबाद किया ! अहो किन-किन को अपना प्रिय बनाया ! सब धोका ही धोका रहा। हे आत्मन् ! जरा अनुभवी ऋषि संतों की वाणी पढ़ो सुनो ! विरक्त ज्ञानी संतों के उपदेश को हृदयंगत करो, उसके अनुसार चलो तुझे अपना शरण मिल जायेगा, अपना प्रियतम मिल जायेगा ! वस्तुतः निर्णय करो सबको अपना अपना प्रिय है आखिर ! जो तू स्वयं है स्वतः सिद्ध है, सहज है वही तो तेरा है, वही तो शरण है, वही प्रियतम है। तू है विशुद्ध चित्प्रकाशमात्र, इसमें उपयोग को समा, फिर तू स्वयं सब समझ जायेगा। अहा मेरा तो घर, वैभव, लोक परलोक, सर्वस्व यह शुद्ध चित्प्रकाशमात्र मैं हूँ ! यहीं मैं मेरा शरण है। यही मेरा प्रियतम है। मेरा प्रियतम मुझको मिल गया अब सब अपने अपने घर जाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुनिया में बढ़ने वालों की होड़ मत करो, तुम्हें तो दुनिया से हटना है

जो लोग अधिक धन संग्रह में जुट कर, बढ़कर आज के धनी कहला रहे हैं, वे तो दया के पात्र हैं, क्योंकि वे अन्धकार में हैं, अशान्त हैं। उन्होंने धन के कारण लोगों से पाई जाने वाली प्रतिष्ठा को अपना सर्वस्व मान लिया है। इस मान्यता के कारण उन्होंने अपने आत्म तत्त्व की सुध खो दी है अब शान्ति का कोई साधन नहीं रहा। कल्पना कर-कर के मौज मानते हैं वे सो, उस मौज में तुरन्त भी क्षोभ मच रहा जिससे व्याकुल होता जाना और मौज का भ्रम हो जाने से उस क्लेश से छुटने का विचार भी नहीं आ सकता है। जो लोग ऊपरी परोपकार की मुद्रा रखकर, धार्मिक वेश बना कर देश के नेतृत्व का बाना पहिन कर कीर्ति संग्रह में जुट कर बढ़ कर आज के यशस्वी कहला रहे हैं, वे भी दया के पात्र हैं क्योंकि अन्धकार में हैं, अशान्त हैं। उन्होंने कल्पित यश को अपना सर्वस्व मान लिया है। इस मान्यता के कारण उन्होंने आत्मतत्त्व की सुध खो दी है और यशोवृद्धि अपयश भय की चिन्ता में अशान्त बने रहा करते हैं। इस काल्पनिक मायामय अस्वरूप यश में काल्पनिक मौज मानते हैं वे, सो उस मौज में तुरन्त भी क्षोभ मच रहा है। उसके संपादन के लिए पहिले भी अत्यधिक क्षोभ मचाया था, स्वार्थवश लोगों के द्वारा की गई प्रशंसा के शब्द सुनकर आगे भी कल्पना करके क्षोभ ही मचता रहेगा। इस क्षोभ से यह दीन व्याकुल भी होता जाता है और मौज का भ्रम हो जाने से उस क्लेश से छुटने का विचार भी नहीं ला सकता है। इसी प्रकार परिजन मित्रमण्डली आदि साधनों से जो महिमा में बढ़ रहे हैं उन सबकी ऐसी ही दयनीय दशा है। हे हितार्थी ! ये दुनिया में बढ़ रहे हैं याने जन्म-मरण की परम्परा बढ़ा रहे हैं क्या तुम्हें भी अन्धकारमय क्लेशपूर्ण जन्ममरणान्वित दुनिया में बढ़ना है ? नहीं नहीं इस जन्ममरणमयी दुनिया से हटने में ही कल्याण है। बड़े-बड़े राजा महाराजाओं ने, जिनका भविष्य अच्छा था, दुनिया से अलग होने का, मुक्त होने का ही साधन किया था और वे इस साधना में आनन्दानुभव करते थे और मुक्त होकर सदा के लिए आनन्दमय हो गये, तुम यहाँ किसी प्रलोभन में मत आओ, दुनिया में बढ़ने वालों की होड़ मत करो, तुम्हें तो दुनिया से हटना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारी पोजीशन धूल में मिला दो, निर्नामचित्प्रकाश में समाकर ही शाश्वत आनन्द पावोगे

पोजीशन क्या है ? एक कल्पना है। यह कल्पना होती है दूसरे मनुष्यों की ओर चित ले जाकर। दूसरे सारे मनुष्य पूर्णतया भिन्न हैं, जन्म मरण के प्रेरे, कर्मकलंक से मलिन, मायामूर्ति हैं, तब उनसे पोजीशन चाहना महामूढ़ता है, पहिली बात तो यह है। अब दूसरी बात देखिये—पोजीशन बनाने के लिए रातदिन श्रम करते हैं, अनेक मायाजाल रचते हैं, बेचैन बने रहते हैं, तिस पर पोजीशन बन नहीं पाती ! कुछ पोजीशन काकतालीय न्याय से बन भी जावे, बाकी पोजीशन नहीं बनी इसका खेद तो रहता ही है और जो कुछ पोजीशन बन गई मालूम हुई उसकी ही रक्षा का यत्न बनाना पड़ता है। रक्षा का यत्न करने पर भी अनेकों बार बिगड़ जाती है। पोजीशन तो पौयजन है। पोजीशन की कल्पना उठी कि समझलो जीवन सारा अशान्त हो गया। यह पोजीशन प्रसंग का हाल है। अब उस ज्ञान प्रकाश का महात्म्य देखिये जहाँ नाम तक की भी कल्पना नहीं, पोजीशन की कल्पना की बात तो दूर रही। इस चित्प्रकाश में जिसका उपयोग लग रहा हो, समा गया हो उसको अब कोई विह्वलता नहीं, विशुद्ध आनन्द प्रकाश हो रहा है। और अब यह इस ही परमतत्त्व की उपासना से शीघ्र संकट से छुट जायेगा, यों दो बातें मनुष्य के सामने हैं : १. पोजीशन की कल्पना, २. निर्नाम चित्प्रकाश। दोनों ही भावना से साध्य हैं, जबकि पोजीशन की कल्पना में प्रारम्भ से अन्त तक संकट भरे हुये हैं। एक तो पोजीशन सम्हलती नहीं है, सम्हल भी गई तो क्या मिलता ? प्रायः पोजीशन तो बिगड़ती रहती है और आखिर मिट कर ही रहती, कभी मिटे। तो रही सही काल्पनिक पोजीशन के चिपकाव में क्यों मूढ़ बनते हो, क्यों दुःखी होते हो ! पोजीशन कुछ नहीं ख्याल ही ख्याल है जिसमें बेचैन रहते हो और जन्म मरण के संकट बढ़ाते हो। निसंकट होने के उपाय में उत्साह बनाओ। सारी पोजीशन धूल में मिला दो, निर्नाम चित्प्रकाश में समाकर ही आनन्द पाओगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त ज्ञान योग्यता का सदुपयोग कर लो

जब तुम निगोद भव में थे तब कितना ज्ञान पाया था ? क्या पाया था, न कुछ सा था। इन्द्रिय केवल से एक स्पर्शन इन्द्रिय, वह भी अव्यवहार्य जैसी, उसका भी उपयोग क्या, एक सेकेण्ड में २३ बार तो जन्म मरण करना पड़ रहा था, शरीर भी बिन्दु से छोटा, वह भी अनन्त निगोद जीवों का एक एक शरीर के आधार अनन्त निगोद जीवों का एक साथ जन्म मरण। अहो कितनी दुर्दशा। वहाँ से निकल आये और हुए पृथ्वी, जल, आग, हवा, पेड़, तो वहाँ भी एक ही इन्द्रिय स्पर्शन; सो भी क्या ज्ञान था, न कुछ सा। लट कैचुआ, जौंक आदि हुए तो एक घ्राण इन्द्रिय और बढ़ गई, मच्छर, मक्खी आदि हुए तो एक चक्षु इन्द्रिय और बढ़ गई सो क्या हुआ, थोड़ी विषय संज्ञा की वृत्ति हो गई, वहाँ भी क्या ज्ञान। जब सांप जैसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय हो गये तो क्या, जरा कर्ण इन्द्रिय की विषय वृत्ति और थोड़ी सी बन गई, ज्ञान की ओर से मक्खी, मच्छर की भाँति ही रहे। हाँ मन भी मिला, तो पशु पक्षी जैसे जन्म पाये तो वहाँ भी कुछ खास बात नहीं बन सकी। अब इन सब जीवों की तुलना मे सोच लो कितना श्रेष्ठ भव आज तुम्हें मिला हुआ है। इस भव में श्रेष्ठ मन मिला और ज्ञानार्जन भी इतना पा लिया कि संकट मुक्ति के प्रयोजन भूत सात तत्त्वों का विचार अच्छे प्रकार कर लिया जा रहा है, आत्मा सर्व विकास पाने के लक्ष्य भूत किये जाने योग्य अन्तस्तत्त्व का ज्ञान कर लिया है, आत्मा अनात्मा के सम्बन्ध में कुछ विस्तृत जानकारी भी प्राप्त करली है। इतना ज्ञानावरण का क्षयोपशम पा लिया, ज्ञान विकास पा लिया, तो अब इस अन्तस्तत्त्व के ज्ञान को बनाये रहो, विषय कषायों में उपयोग को मत उलझाओ, अन्यथा फिर से पशु, पक्षी, कीड़ा, पेड़, निगोद आदि बनना पड़ा तो, फिर से कठिन दुर्गति होगी। अतः चेत लो, पुनः दुर्गति न पाने के लिये, प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग कर लो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान ही तो एक सही बनाना है, इसमें ही सर्वहित प्राप्त हो जाता है

मैं क्या हूँ इतना ही तो सही जानने का काम है, जिसमें न श्रम है, न किसी से कुछ याचना करनी है, न किसी पर की अपेक्षा करनी है, भीतर ही भीतर स्वयं की जानकारी करना है। कितना सुगम, मधुर आनन्दप्रद काम है। अन्तर में निहार—मैं एक जानन भाव मात्र हूँ, कितना पावन मेरा ज्ञान स्वरूप है, जहाँ आकुलता का काम नहीं, अद्‌भुत परम आह्लाद जिसके साथ है। मैं प्रतिभा स्वरूप हूँ, यहाँ विकल्प तरंग का काम नहीं है। मैं मेरे काम में स्वतन्त्र हूँ, किसी पर पदार्थ से मेरे में कुछ आता ही नहीं है, वस्तुस्वरूप ही ऐसा है, अतः किसी भी पर पदार्थ के बारे में विकल्प करना भी नहीं है। जब कुछ विकल्प ही करना है तब तो यह पवित्र निज अन्तर्ज्योति आनन्द धाम रहे, इसमें संदेह ही क्या है। अहा, कैसा यह दृढ़ स्वच्छ अन्तधाम है जो कभी अपने स्वरूप से चलित हो ही नहीं सकता, मैं चित्स्वरूप हूँ, अनादि से चित्स्वरूप हूँ, अनन्त काल तक चित्स्वरूप ही रहूँगा, कभी भी चित्स्वरूपता मिट ही नहीं सकती, वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। विकल्प रूप परिणमन भी हुआ तो वहाँ भी चित्स्वरूपता नहीं मिटी, मैं कभी अजीव नहीं हुआ, हाँ हैरानी ही व्यर्थ में अनुभवी। मैं जाननभाव मात्र हूँ, मेरे स्वरूप में केवल विशुद्ध चैतन्यरस है, यहाँ औपाधिक भाव भी आते हैं सो उन भावों का पर द्रव्यभूत उपाधि से अविनाभाव है सो उन औपाधिक भावों का मैं स्वामी ही नहीं हूँ। सर्व पर द्रव्य से निराला, पर भावों से विविक्त विशुद्ध चैतन्य भाव मात्र हूँ, ऐसे निज अन्तस्तत्त्व की जानकारी में अद्‌भुत चमत्कार है, पवित्रता है, उत्कृष्टता है, आनन्द रस निर्माता है। देखो, इस पावन अवसर से लाभ उठा लो। ज्ञान ही तो एक सही बनांना है इसमें ही सर्व हित प्राप्त हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना स्वरूप वैभव अपनी दृष्टि में भी न रहा यह कितना अंधेर है

स्वरूप तो स्वरूप में रहता है, इसमें तो विवाद है ही नहीं। प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वरूप में है, पुद्गल, अणु, रूप, रस, गंध, स्पर्शवान है। वह इसी प्रकार से ही चला आ रहा है, ऐसा ही रहेगा ? पदार्थ का स्वरूप निश्चल ही रहता है। जीव के द्वारा ग्राह्य, ग्रहीत, उपभोग्य, उपमुक्त होने पर भी पुद्गल अणु कभी मूर्ति स्वरूप से चलित नहीं हुआ। इसका स्वरूप वैभव इसमें ही है। हाँ जड़ होने के कारण अणु स्वयं को, अपने स्वरूप वैभव को समझ नहीं सकता है। इसी प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य का जो जो स्वरूप है वह स्वरूप वैभव उनका उनमें ही है और वे सब ही जड़ होने के कारण स्वयं को, अपने स्वरूप वैभव को समझ नहीं सकते। अब जीव द्रव्य की, अपनी बात देखिये। जीव द्रव्य चैतन्य स्वरूप है, ज्ञान दर्शन वान है, जानना देखना इसका स्वरूप है, यह इसी स्वरूप स्वतः सिद्ध चला आ रहा है, इसी स्वरूप सदा रहेगा। पदार्थ का स्वरूप निश्चल ही रहता है। मैं जीव द्रव्य हूँ, जानना देखना ही मेरा स्वरूप है। पुद्गलाणुओं से, कर्मों से बद्ध होने पर भी देहाणुओं से स्पष्ट होने पर भी यह मैं कभी चैतन्य स्वरूप से चलित नहीं हुआ। मेरा स्वरूप वैभव मेरे में ही है जिससे मैं निरन्तर जानना देखता रहा। मैं जाननस्वरूप होने पर भी बाह्य की बातों को तो जानता रहा, दर्शन स्वरूप होने पर भी बाह्य को तो दृष्टि में रखता रहा किन्तु मैंने स्वयं को, अपने स्वरूप वैभव को न जाना न देखा। इसी से नर नारकी आदि अनेक पर्यायों रूप रहकर क्लेश भोगना पड़ा। बड़े अचरज की बात है कि मैं प्रतिभास्वरूप होने पर भी स्वयं को न प्रतिभास सका। अपना स्वरूप वैभव अपनी दृष्टि में भी न रहा, यह कितना अन्धेर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार में सुख का साधन क्या जोड़ना, फल तो आखिर दुःख ही है

धन को सुख साधन समझकर लोग धन के जोड़ने में जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं, उन्हें यह विश्वास ही नहीं है मानो, कि धन के जोड़ने के समय कितना दुःख भरा हुआ है, न भी समझा जाय उसे दुःख तो आखिरी समय देख लो, आखिरी परिणाम तो दुःख ही है। मरण तो होगा ही, तब मरण समय धनार्थी लोग कितने दुःखी होकर मरते हैं उसे कोई दूसरा क्या समझे। और फिर जीवन में ही देख लो—धन के लिये उससे कभी पुत्र प्रतिकूल हो जाता है, राजाधिकारी दबाव डालते हैं आदि अनेकों क्लेश हैं। लोग विषय सुख का साधन जानकर स्त्री का परिग्रह बनाते हैं, सो देख लो—जीवन की सारी चिन्ताओं का मूल कारण स्त्री परिग्रह बना है। पुत्र पुत्रियाँ हुईं, पालन कीं, उनकी उन्नति की चिन्ता में जो विकलता है उसकी कौन कहानी कहे। फल आखिरी इसका भी दुःख ही है, जीवन में तो पद-पद पर दुःख भरे ही हैं, किन्तु मरण समय वियोग जान कर कितना आर्त ध्यान होता है वह बताने से परे है। अज्ञानी जनों द्वारा स्वार्थ साधना के, खुदगर्जी के अभिप्राय से गाई जाने वाली निःसार यश, कीर्ति को सुख का साधन जान कर लोग नामवरी के लिये जो जी तोड़ परिश्रम कर रहे वे यह ख्याल में ही नहीं लाते कि इसमें बीच-बीच कितने विशेष अपमान भरे हुये हैं तथा नामवरी के यत्न करते हुए, कोई न कोई घटना ऐसी हो ही जाती है कि जिससे यत्नार्जित नामवरी भी सारी धूल में मिल जाती है। मोटी सी बात अब एक यह भी समझ लीजिये कि सुख की आशा से सारे साधन जुटाते हैं सारे यत्नों के बाद आखिर बुढ़ापा तो आता ही है सो बुढ़ापे में सब सुखों की कसर एकदम निकल आती है, बुढ़ापे के दुःसह दुःख तो आखिर में भोगना ही पड़ता है। तो ऐसे सुख के साधनों को जोड़ने के ख्याल में क्लेश उठाने का क्या लाभ कि जिसका आखिरी नियम से दुःख ही हैं। किन्तु स्वरूप संचेत का परिणाम देखो इसमें आदि से आखिरी तक भला ही भला है। अपने वाह्य व्यापारों के प्रति अपना दृढ़तम निर्णय बनाओ कि संसार में सुख का साधन क्या जोड़ना, फल तो आखिर दुःख ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयों में लगना आत्म बल खोना है

भले ही इस जीव को विषयों के प्रसंग में तत्काल सुख लाभ मालूम होता है, किन्तु इस प्रसंग के बाद यह जीव स्वयं विदित भी कर लेता है कि विषय प्रसंग से लाभ कुछ नहीं हुआ। स्पर्शने के विषय में ठण्ड और गर्मी की बाधा के उपाय भूत वस्त्रादि का उपयोग एक सीमा में किसी प्रकार के लाभ में सहयोगी भले ही समझ लिया जाय, किन्तु चटकीले वस्त्र, पर देह स्पर्श आदि व्यर्थ अनर्थ प्रसंग इस जीव की बरबादी कर देते हैं। आत्म शक्ति क्षीण कर देते हैं। रसनेन्द्रिय के विषय में जीवन रक्षा के उपाय भूत भोजन पान का सेवन एक सीमा में किसी प्रकार का लाभ में भले ही समझ लिया जाय, किन्तु रसीले गरिष्ठ चटपटे खान पान के प्रसंग इस जीव की बरबादी कर देते हैं आत्म शक्ति क्षीण कर देते हैं। घ्राणेन्द्रिय के विषय में स्वच्छ सहज सुरभित वायु का सेवन जीवन रक्षा के उपाय का एक अंग समझकर एक सीमा से किसी प्रकार का लाभ में सहयोगी भले ही समझ लिया जाय, किन्तु इतर, फुलेल, पुष्प, गुच्छ आदि के प्रयोग प्रसंग इस जीव को परदृष्टि में खींच ले जाकर इस जीव को रीता कर देते हैं और इसकी आत्म शक्ति क्षीण कर देते हैं। नेत्रेन्द्रिय के विषय में जीवन रक्षा का कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी इस बन्धन अवस्था में साधु दर्शन, देवदर्शन, तीर्थदर्शन, शास्त्र दर्शन आदि किसी प्रकार आत्मलाभ में सहयोगी हो जाएँ, किन्तु परदेह, इष्ट वस्तु, चित्र पट आदि के सुहावने रूप के अवलोकन के प्रसंग इस जीव की बरबादी कर देते हैं, आत्म शक्ति क्षीण कर देते हैं। कर्णेन्द्रिय के विषय में भी जीवन रक्षा का कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी इस बन्धन अवस्था में साधुवचन श्रवण, जिनवाणी श्रवण आदि किसी प्रकार आत्मलाभ में सहयोगी हो जायें, किन्तु सराग वचन श्रवण आदि के प्रसंग इस जीव की बरबादी कर देते हैं, आत्म शक्ति क्षीण कर देतें हैं। मन के विषय में विचार के अतिरिक्त अन्य सारे विकल्प ख्याल इस जीव की बुद्धि को भ्रमाकर इस जीव की बरबादी कर देते हैं, आत्म शक्ति क्षीण कर देते हैं। खूब परख लो, समझ लो यह बात सुनिर्णीत है कि विषयों में लगना आत्मबल खोना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानव जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ मत खोओ

निगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच, नारकी, कुमानुष, देव, दुर्गति आदि अवस्थाओं को पार करके तुम श्रेष्ठ मनुष्यभव में आये हो, जहाँ कि इन्द्रियों की अविकलता, निरोगता, अदरिद्रता, तत्त्व ज्ञान योग्यता, सत्समागम, सत् शास्त्र आदि सत् साधन पाये हैं, अब इस मानव जीवन के अमूल्य क्षणों को व्यर्थ मत खोओ। तत्त्व ज्ञान के अर्जन में, आत्मध्यान के योग में यत्न करके इन दुर्लभ क्षणों को सफल कर लो। विषय कषायों के विकल्पों में उपयोग बनाने को समय व्यर्थ खोना कहते हैं और निज सहज ज्ञायक स्वरूप अन्तस्तत्त्व में लगाने व उसके उपाय भूत तत्त्व विचार में रहने को समय सफल करना कहते हैं। समय तो सभी मनुष्यों के पास है, धनार्जन के उद्यम मे अधिक से अधिक ६–७ घंटे लग जाते हैं, बाद में उसके विकल्प बसाये रहने में रात दिन बिता देना यह अलग बात है। समय तो सबके पास है उसे गप्पों में बिता डालते हैं लाभ कुछ नहीं होता, झगड़ा और व्यर्थ खड़ा हो जाता है। गप्पें भी क्या हैं किसी की प्रशंसा किसी की निन्दा। गप्पों के दो ही तो अंग हैं या तो किसी चेतन या अचेतन की प्रशंसा भरी हो, किसी भी अंश में हो, किसी भी प्रकार में हो। प्रशंसा और निन्दा ये दो ही अंग हैं जिसमें स्वयं की अपनी प्रशंसा हो यह पद्धति तो रहती ही है। समय तो पर्वत पतित नदी के वेग की तरह वेग से गुजर हीं रहा है, इसमें न चेते तो पछताना पड़ेगा अथवा पछताने तक की भी बुद्धि न रहेगी। अतः चेतो, स्वाध्याय करते हुये तत्त्व ज्ञान का अर्जन करो, आत्म मनन करते हुये अपने स्वरूप की दृष्टि करो, संकटमय संसार सागर से पार होने का उपाय दृढ़ बना लो। एक ही अपना उद्देश्य बना लो—मुझे तो जन्म मरणमय संकट सागर से पार होना है। एतदर्थ संकट रहित शाश्वत अपने स्वरूप का परिचय करो, अनुभव करो, इस ही निज कारण परमात्मतत्त्व की ओर उपयोग बनाये रहने का पुरुषार्थ करो, मानव जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ मत खोओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं मैं हूँ, मैं अन्य नहीं हूँ ऐसी समझ बिना अपना हित नहीं हो सकता

मेरा सुख मुझमें ही है, मुझसे ही होता है यदि यह निर्णय नहीं है जिसके उसके यह भी निर्णय नहीं है कि मैं मैं ही हूँ। जो भी पदार्थ है वह अपने परिपूर्णसत्य को लिए हुए है। किसी पदार्थ का सत्त्व तभी रह सकता है जबकि वह अपने स्वरूप से ही हो, पर के स्वरूप से नहीं हो, इस ही नियम को वस्तुत्व कहते हैं। पदार्थ में वस्तुत्व भी रह सकता है जबकि वह अपने स्वरूप में अपनी अवस्था बनाता रहे, किसी भी पर की अवस्था को छुए भी नहीं, यह सिद्धान्त सकल पदार्थों में समान रूप से बना हुआ है। अब अपने आपकी सुध कीजिए मैं हूँ, यह मैं तभी हूँ जब अपने स्वरूप से ही हूँ, पर के स्वरूप से नहीं यही मेरा वस्तुत्व है। मेरे में यह वस्तुत्व तभी रह सकता है जबकि मैं अपने स्वरूप में अपनी अवस्था बनाता रहूँ। किसी पर की अवस्था को छुऊँ भी नहीं। सो यह सब अबाधित रूप से हो ही रहा है। इसका भाव ही यह निकला कि मैं सुखी होता हूँ सो यह मेरा ही सुख परिणमन है और मुझ से ही होता है ! यदि यह निर्णय है तो माना जायेगा कि यह भी निर्णय है कि मैं मैं ही हूँ। इसी प्रकार मेरा ज्ञान मुझ में ही है और मुझ से ही होता है यह निर्णय है तो माना जायेगा कि यह भी निर्णय है कि मैं मैं ही हूँ। प्रत्येक पदार्थ वह ही है अन्य नहीं यह निर्णय तो बड़ी सुगमता से अन्य-अन्य पदार्थों में कर लिया जाता है बिल्कुल सब साफ समझ में आ रहा है। कोई भी पदार्थ किसी पर पदार्थ रूप न है, न कभी हो सकता है यों ही कोई भी पदार्थ किसी पर रूप न परिणमता है और न कभी परिणम सकता है। किन्तु आश्चर्य है कि यह जीव अपने सम्बन्ध में स्पष्ट भान नहीं कर रहा है इस प्रकार कि मैं किसी भी देहादिक किसी भी परपदार्थ रूप नहीं हूँ और न कभी हो सकता हूँ। यों ही मैं किसी पर पदार्थ रूप न परिणमता हूँ और न कभी परिणम ही सकता हूँ। मैं मैं हूँ, मैं अन्य नहीं हूँ ऐसा सच्चा भान होने पर शान्ति का लाभ हो सकता है। मैं मैं हूँ, मैं अन्य नहीं हूँ ऐसी समझ बिना अपना हित नहीं हो सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निज की बेसुधी होने पर कार्माण बैरी कर्मरूप होकर बंध ही जाते हैं अतः निज की सुध जरा भी न छोड़ो

यह मत सोचो कि पाप करते हुए मुझे कोई जान ही नहीं रहा, देख ही नहीं रहा, सो कुछ बिगाड़ ही नहीं। तेरे साथ अनन्त कार्माण वर्गणायें एक क्षेत्रवगाही होकर लगी हुई हैं, इनके कर्म रूप होकर तेरे साथ बन्ध जाने की ऐसी पद्धति है कि रंच भी तेरे में मोह राग द्वेष का विभाव हुआ कि ये कार्माण वर्गणायें उसी समय कर्मरूप हो जाती हैं, इनमें गुणघात करने की प्रकृति बन जाती है, स्थिति भी तुरन्त पड़ जाती है, फलदान की शक्ति भी तुरन्त हो जाती है। कोई जाने देखे या न जाने देखे, इस कार्माण वर्गणाओं के सम्बन्ध को तो जीव के विभाव के होने का निमित्त मिलना चाहिए। कोई जाने देखे या न जाने देखे अथवा इस जीव को स्वयं भी चेत रहे या न रहे, इन कर्मों का जब विपाक समय आता है तब सुख-दुःख यश-अपयश आदि फल मिलता ही है। अब समझ लो कि दुनिया के लोगों से तेरे होनहार का कोई सरोकार नहीं है। संसार में तेरी गतिविधि की निर्भरता तेरे भावों पर व कर्मदशाओं पर है। अतः बिगाड़ से डरने के लिए लोगों के बारे में कुछ नहीं सोचना है, किन्तु खुद के विभावों के न होने देने का यत्न करना है। जिस विधान का जो विधान है उस विधान से ही उसका विधान होता है। यदि तुम्हें अपने बिगाड़ से बचना है तो सदा यह सावधानी रखो कि कैसे ही वाह्य में विषय कषाय के प्रसंग आवें उनमें आकर्षित और प्रभावित न होकर स्वयं की सुध रखने की सुध करना है। मैं केवल चित्प्रकाश मात्र हूँ जानता हूँ, यही तो मैं करता हूँ जानता हूँ यही मैं भोगता हूँ। इस मुझमें पर का कोई सम्बन्ध नहीं प्रयोजन नहीं। अपनी सुध बनाए रहोगे तो निराकुल रहोगे। देखो—निज की बेसुधी होने पर कार्माण बैरी कर्मरूप होकर बन्ध ही जाते हैं, अतः निज की सुध जरा भी न छोड़ो।

मेरा स्वच्छ वैभव परम आनन्द का धाम है

कैसा अमूर्त पवित्र निर्लेप ज्ञान प्रकाश मात्र हूँ मैं। इस ज्ञान प्रकाश में उपयोग रहने पर जो समृद्धि होती है उसकी तुलना के लिए जगत में अन्य कुछ है ही नहीं। मेरा मेरे से बाहर क्या रखा है, कुछ भी नहीं। अपने में अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपयोग के रहने का जो वैभव है उसे भूल कर वाह्य की दृष्टि करके नाना विडम्बनाओं में फंस कर विषय वासनाओं में रम कर अपनी बरबादी की जा रही है। हे आत्मनः तेरा वैभव तेरे आत्म स्वरूप में है, तेरे वैभव को कोई अन्य छीन ही नहीं सकता। अहा, कैसा स्वच्छ अमिट आत्म वैभव है। विशुद्ध ज्ञान विकास, विशुद्ध आनन्द विकास यही तो मेरा सत्य वैभव है। मैं विशुद्ध ज्ञान दर्शन सामान्यात्मक हूँ। जो मेरा है वह मेरे से अलग नहीं है, जो मेरा नहीं है वह मेरे में कभी लगा नहीं है। खेत, मकान, पशुधन, अन्न, परिजन, भृत्य, सुवर्ण, बर्तन, जेवर, वस्त्र, देह आदि ये तो प्रकट पर द्रव्य हैं। इनसे अपना बड़प्पन मानना, हित मानना, महती मूढ़ता है इनका आश्रय करके जो रागद्वेष विभाव प्रकट होते हैं वे भी मेरे नहीं हैं, मेरे तात्कालिक परिणाम होकर भी मेरे नहीं हैं, क्योंकि उनका अन्वय व्यतिरेक मेरे से भिन्न उपाधिभूत पर द्रव्य के साथ है, मैं उनका स्वामी नहीं, मेरा उन पर अधिकार नहीं। मैं अपने सत्त्व के कारण अपने सहज स्वरूप रूप हूँ। यह मैं परम आनन्द का धाम हूँ, इस विशुद्ध ज्ञानप्रकाशमय अन्तस्तत्त्व में आकुलता का कोई काम नहीं है। रंच भी पर, एक भी अणु मेरा कभी भी चिर काल में भी कुछ नहीं हो सकता है, अन्य सभी जीव स्वयं अपने तत्त्व से परिपूर्ण हैं, वे अपने भाव से परिणमते हैं, प्रकट भिन्न समझ में आते हैं। जो भिन्न है, जिनसे मेरा सम्बन्ध नहीं, जिनका सम्बन्ध मानने पर आकुलता ही आकुलता भोगना पड़ती है, उन असार वस्तुओं में उपयोग देकर क्यों हैरानी भोग रहा हूँ। मैं तो स्वच्छ ज्ञानानन्द विकास रूप हूँ, यही मेरा सत्य वैभव है। इस वैभव में सर्वतः आनन्द ही आनन्द है। अहा, यह स्पष्ट सर्वविदित है। मेरा स्वच्छ वैभव परम आनन्द का धाम है।

आत्मातिरिक्त अन्य बात में उपयोग देना अपने आप की बरबादी करना है।

संसार में जन्म मरण करना और दुःख भरना अनात्मतत्त्व के लगाव से ही तो हो रहा है। कैसी विडम्बना बन रही है कि यह ज्ञान भावमय आत्मा नाना हड्डी रुधिर चाम आदिरूप परिणमने वाले देहस्कन्धों में फसा हुआ है। देहादिकं समस्त परतत्त्वों से निराला व सर्वतः अपने में शाश्वत ज्ञान स्वरूप है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस अपने आपके ज्ञान स्वरूप का ज्ञान नहीं कर पाता यह आत्मा, यही समस्त संसार विपदाओं में रले रहने का मूलकारण है। जिन बातों में उपयोग दिया जाता वे सब असार हैं। उपयोग किन में दिया जाता। पाँच इन्द्रिय व मन के विषयों में। जरा विचार कर बताओ अशुचि हाड़ मांस के देह में, जो चमड़ी से ढका होने से सुरूप लगता है, रमने से आत्मा को क्या लाभ मिलता है ? कुछ नहीं, बल्कि हानि ही हानि है, रक्त चाप होने से शारीरिक स्वस्थता भी नहीं रहती, प्रमाद और परोपयोग होने से आन्तरिक स्वस्थता भी नहीं रहती है। यों ही गंध सेवन, रूपावलोकन व रज्जित शब्द श्रवण के विषयों की बात भी समझ लीजिए, उनमें आत्मा अपना ही सब कुछ खो देता है। यश, नामवरी, बड़ाई के विकल्प में उलझने की मूर्खता की कहानी ही कौन बखान सकता है। हे आत्मनः तू अकेला है, अकेला ही रुलता है, अकेला ही सुख दुःख भोगता है, तेरा अन्य कुछ नहीं, तेरा अन्य कोई शरण नहीं, अतः स्वशरण की बात कर, सर्वसार भूत अन्तस्तत्त्व की बात कर, इस अन्तः ज्ञान स्वरूप में ही उपयोग दे। आत्मातिरिक्त अन्य बात में उपयोग देना अपनी बरबादी करना है।

परम सिद्ध परमात्मा की उपासना के प्रसाद से मेरे सहजासिद्ध परमात्मत्त्व की सिद्धि होओ

जिस आत्मा के गुणों का परिपूर्ण विकास हुआ है और उपाधिसम्बन्ध व औपाधिक समस्त दोषों का अत्यन्त अभाव हो गया है उस पावन आत्मा को परम सिद्ध परम आत्मा कहते हैं। उसके इस विशुद्धस्वरूप को निरखने, उसमें उपयोग रखने को उपासना कहते हैं। परमसिद्ध परमात्मा की उपासना एक विवेक पूर्ण कार्य है। इस परम प्रभु की उपासना के प्रसाद से स्वयं में ही शाश्वत विराजमान सहजसिद्ध परमात्मतत्त्व के दर्शन होते हैं। यह मैं आत्मा स्वयं स्वतः सहज सिद्ध हूँ, परन्तु जैसा मैं सहज सिद्ध हूँ वैसा अपने को न जान पाया अतः वहिरात्मा रहकर बाहर ही उपयोग को डुलाता रहा बाहर सो वहिरात्मत्वके कारण नाना जन्म मरणों के क्लेश सहता रहा। अहो कैसी कठिन विपत्तियाँ भोगीं जिनका स्मरण भी शस्त्रघात की तरह मुझे पीड़ित कर देता है। अपना हित चाहते हो तो अपना एक ही यह प्रोग्राम बनाओ कि मुझे तो जन्ममरण से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छूटना है और कुछ मुझे त्रिकाल में भी नहीं चाहिये। जन्ममरण से छूटने के उपाय में सर्वप्रथम यह समझना ही होगा कि जन्म मरण से विविक्त मेरा ज्ञानानन्द सहज सिद्ध स्वरूप है। यदि मेरे में यह स्वरूप न हो तो जन्म मरण रहित परम सिद्ध परिणमन मेरा कभी हो ही नहीं सकता। क्या कभी बालू से तेल निकलता है या निकलेगा। दूध में घी सहज स्वभाव से है तो उसमें से प्रयोग द्वारा घी प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार मेरे में परमसिद्धत्व का सहज स्वभाव है अतः इस सिद्ध स्वरूप की परम उपासना के विशिष्ट प्रयोग द्वारा परम सिद्धत्व प्रकट हो जायेगा। जन्म मरण से छुटकारा हो जायेगा। इस ही में मेरा सर्व हित है, अंन्य किसी दशा में मेरा हित नहीं है, अतः एक ही मात्र मेरी भावना है कि परमसिद्ध परमात्मा की उपासना के प्रसाद में मेरे सहजसिद्ध परमात्मत्त्व की सिद्धि होवे।

सहज ज्ञान स्वभाव मेरे उपयोग में रहो नाथ ! अन्य कुछ मुझे नहीं चाहिये।

हे परमात्मा परमेश्वर सहज ज्ञायक स्वभाव निरंजन आत्म देव ! तुम तो सहज मेरे अपने रक्षक हो, शाश्वत विराजमान हो किन्तु यह मैं (उपयोग) अपने तुमको भूला रहा, इसी कारण प्रकृति के साम्राज्य में विवश होकर मायामय भावों में रत रहा। स्वयं की असावधानी का कटु दुष्फल भोगना पड़ता है। यह कितना कठिन जंजाल रहा कि जिनमें मेरा रंच भी सार नहीं है, जो अत्यन्त पृथक हैं, क्लेश के ही कारण बन पाते हैं उन सारहीन इंद्रिय विषयों को अपना सर्वस्व सार माना। यह दयनीय, घृणित, तुच्छ, दशा हे नाथः तेरे दर्शन बिना हुई है, इस पर भी अधिक विडम्बना की बात यह है कि इसी घृणित दशा में रमता रहा। ये शब्द रूपादिक क्या हैं ? अत्यन्त भिन्न पौद्गलिक परिणमन। इनमें मैं कुछ कर तो सकता नहीं, सदा से मेरे भिन्न अलग ही रहते हैं, फिर भी इन्हें उपयोग में कल्पना में बसाता हूँ यह उन्मत्तचेष्टा ही नहीं तो और क्या ? हे निजनाथ ! तेरी दृष्टि करते ही मुझे मेरा सब ऐश्वर्य दृष्टिपथ होने लगता है। मैं हीन नहीं, दीन नहीं, छीन नहीं, मलिन नहीं, किन्तु मायामय विषय कषाय के भावों में लीन होने से हीन बना, दीन बना, छीन बना, मलीन बना ! अब यह मैं (उपयोग) मैं स्वयं को स्वयं के आधारभूत परमपिता परमेश्वर सहजज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव में प्रलीन करके क्षण एक अनुभव कर पाय: हूँ मैं यह सहज अनंत ज्ञान दर्शन आनन्द शक्ति से सम्पन्न हूँ, तिष्ठितार्थ हूँ, ज्ञान प्रकाश मात्र हूँ, निराकुल हूँ, मेरा सर्वस्व यह केवल मैं सहज ज्ञान स्वभाव हूँ। मेरा सर्वस्वहित प्रयोजन इस मुझमें ही है। हे सहज ज्ञान स्वभाव मेरे उपयोग में रहो नाथ ! अन्य कुछ मुझे नहीं चाहिये।

हे अनेकान्तमयी सरस्वती देवी ! प्राणिंहित के लिये नित्य जयवंत प्रकाशमान होओ।

मंगल लोकोत्तम शरणभूत सहज परमात्म तत्त्व के परिचय के अर्थी को साधारणतया समस्त पदार्थों के और विशेषतया आत्म पदार्थ के स्वरूप का अवगम करना अत्यावश्यक है। वस्तु स्वरूप के अवगम का साधन स्याद्वादवाणि है, उसकी मूर्ति अनेकान्तमयी है। आत्मा है, और वह परिणमता है, विभावरूप परिणमता है, स्वभावरूप परिणमता है, विभाव में अनेक स्थितियाँ होती हैं समस्त बातों के जानने के लिये अनेक दृष्टियों का आलम्बन लिया जाता है यों अनेकान्तस्वरूप आत्मा को अनेक दृष्टियों से परखने पर पूर्ण बातें ज्ञात होती हैं और उनका यथा सम्भव प्रतिपादन व समझना स्याद्वाद से होता है। वस्तु विज्ञान का बहुत बड़ा फैलाव है इसी कारण विज्ञान देवता को सरस्वती कहते हैं—सरः पृसरणां यस्याः सा सरस्वती। अनेकान्त मयी मूर्ति वाली सरस्वती देवी के प्रसाद से ज्ञान प्रकाश होता है जिससे हेय तत्त्व का परित्याग करके उपादेय तत्त्व को ग्रहण किया जाता है ! हेयों से छुटकर कथंचित उपादेयों में आकर, कथंचित उपादेयों से छूटकर नियमतः उपादेय का उपादान करके प्रकट उपलब्ध किये गये आत्म विकास से आत्मा आत्यन्तिक आनन्दमय हो जाता है। इसका श्रेय अनेकान्त मयी सरस्वती देवी को है, विज्ञान देवता को है, इसके प्रसाद से कितना विस्तृत ज्ञान प्रकाश होता है, अपने-अपने में उत्पाद व्ययध्रौव्यात्मक अनन्त पदार्थों से स्वरूप का अवगम होता है स्वतन्त्रता का भान होता है जिससे मोहभाव स्वयं गल जाता है जिससे सहज परमात्मत्व के सुदृढ़ अवलम्बन से क्लेशों का, कलंकों का आत्यन्तिक क्षय हो जाता है ! हे अनेकान्तमयी सरस्वती देवी प्राणि हित के लिये नित्य जयवंत प्रकाशवान होओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असमंजसता तो बनाई गई है, वस्तु स्वरूप देखो, असमंजसता है कहाँ ?

देखो ये दृश्यमान सारे पदार्थ, ये भी तो पदार्थ हैं इनमें परमार्थ पर पदार्थ पुद्‌गल परमाणु हैं उनके ही तो संघात रूप ये स्कन्ध हैं इनमें तो कहीं असमंजसता नहीं पाई जाती है, कहीं कलह नहीं, विवाद नहीं, सब हैं और परिणमते रहते हैं, विभाव परिणमन की योग्यता रखने वाले अनुकूल निमित्त सन्निधान पाकर विभावरूप परिणमते हैं, क्या असमंजसता है। कोई असमंजसता नहीं, कोई उलझन नहीं, परमार्थभूत पुद्‌गलाणुओं में तो व्यवहार्य विपरिणमन भी नहीं। इसी प्रकार आकाशदिक अमूर्त अचेतन पदार्थों को भी निरख लो, कहीं कुछ उलझन नहीं। अब जरा आत्म पदार्थ की भी खबर करो। ये संसारी समस्त जीव भी तो एक-एक पदार्थ हैं, इसमें परमार्थ पदार्थ तो सहज ज्ञान स्वरूप आनन्दघन आत्मा है उनके ही तो सोपाधिकता में विपरिणत ये नाना जीव हैं। इनमें भी असमंजसता क्यों होनी चाहिये। ये भी हैं। परिणमते रहते हैं। विभावरूप परिणमन असमंजसता की योग्यता रखने वाले अनुकूल निमित्त सन्निधान पाकर विभावरूप परिणमते हैं, परिणमते हैं, विधि विधान है, क्यों असमंजसता आनी चाहिये, इनका काम है जाने देखें, परमार्थ भूत आत्मा में तो, उसके सहज स्वरूप में तो तरंगों का विकल्पों का नाम ही नहीं उलझन का काम ही क्या है बात तो तत्त्व की यह है, लेकिन यह चेतन है ना, इसके ज्ञान दर्शन है ना, यह समझता है ना, बस इस अद्‌भुत शक्ति को कल्पना रूप में बिगाड़ कर इसने उलझनें बना ली हैं। जो आत्मा बिगाड़ रहित हैं, विकार रहित हैं, केवल जैसा स्वरूप है वैसा ही व्यक्त है उनके स्वरूप का स्मरण करके निरख लो वहाँ कोई असमंजसता तो नहीं, ऐसे ही निज सहज स्वरूप में निहार लो यह तो सहजज्ञान दर्शन शक्ति चतुष्टय स्वरूप है। असमंजसता का क्या अवकाश? असमंजसता तो बनाई गई है, वस्तु स्वरूप देखो, असमंजसता है कहाँ ?

अपने को सम्हालो, तो सब सम्हल गया

हम अपने क्लेश दूर करने के लिए कितने प्रकार के कार्य करना चाहते ? इसकी कुछ गिनती नहीं, अनगिनत प्रकार के काम करना चाहते। घर बनाना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बच्चों को पढ़ाना, लोगों को खुश रखना, वैभव बढ़ाना, किसी को धोखा देकर स्वार्थ सिद्ध करना, किसी को प्रतिकूल समझ कर उसके विरोध में विनाश के उपाय करना, किसी पर क्रोध मयी चेष्टा करना लोगों में अपनी उच्चता दिखाने की चेष्टा करना, किसी का संग्रह करना, किसी का विग्रह करना आदि नाना काम करना चाहते हैं ये प्राणी और उससे अपना क्लेश दूर होने की आशा रखते हैं, किन्तु फल उल्टा ही होता है। क्लेश बढ़ते ही जाते हैं। ये समस्त पर पदार्थ भिन्न हैं, प्रथम तो इनका कुछ भी परिणाम हो इससे आत्मा में कुछ आता नहीं, दूसरी बात यह है कि इनका परिणमन इस आत्मा के आधीन नहीं, सभी पदार्थ अपने-अपने में अपने परिणमन से परिणमते रहते हैं। भले ही उनके परिणमनों में अन्य अनेक निमित्त होते हैं। निमित्त से उनमें आता कुछ नहीं। तो पर के परिणमन किये नहीं जा सकते, पर को सम्हाला नहीं जा सकता, सिर्फ पर के बारे में कल्पना कर करके उनके कहीं होने का संकल्प विकल्प बना लेता है ! इसमें तो इसके क्लेश बढ़ते ही रहते हैं। हे सुखैषी आत्मन् ! सत्य ज्ञान प्राप्त करो। प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण सत् है, इससे ही यह समझ लो कि मैं किसी भी पर पदार्थ की कुछ सम्हाल नहीं किया करता, हाँ पर की सम्हाल के विकल्प में बस कर अपनी सम्हाल खो बैठता हूँ। अब अपनी सम्हाल के चमत्कार देखो, जहाँ अपने यथार्थ स्वरूप को निहार कर ज्ञानानन्द घन स्वरूप को निरखकर सहज ज्ञान रूप अपनी प्रतीति करके उपयोग में इस अपने को सम्हाला, वहाँ कोई विकल्प नहीं, आकुलता नहीं, पर भी जैसे स्वयं रह सकते हैं रहे आते हैं ! देखो अपनी सम्हाल में यह स्वयं निराकुल हो जाये अपने को सम्हाला तो सब सम्हल गया ?

ब्रह्मचर्य परं तपः

अब्रह्म देह से विरक्त होकर ब्रह्म सहज आत्मतत्त्व में रमण करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचर्य में उपयोग का उत्कृष्ट तपन होता है, विशुद्धीकरण होता है, और इसी कारण कलंकों का क्षय हो जाने से क्लेशों का क्षय हो जाने से अद्भुत आत्मीय सहज आनन्द प्रकट होता है। एतदर्थ अब्रह्म से विरक्ति होना अत्यावश्यक है। अब्रह्म देह मल से उत्पन्न हुआ है, माता पिता के रजवीर्य से बना है, जो रज वीर्य मलिन अस्पृश्य घ्रणास्पद हैं ! यह ब्रह्म अर्थात् स्वयं यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा अनादि अनन्त सहज ज्ञान स्वरूपमय स्वतः सिद्ध, सहज सिद्ध, महात्मा जनों के द्वारा अभ्यर्थनीय, योगिजनों का रम्य पावन उपासनीय तत्त्व है। घृणित अब्रह्म देह से विरक्त होकर पावन ब्रह्म स्वरूप में रमण करना ज्ञान का सदुपयोग है। अब्रह्म देह मल को उत्पन्न किया करता है, रुधिर, पीव, कनेऊ, कीचड़, नाक, थूक, लार, कफ, पसीना, मूत्र, विष्टा आदि उत्पन्न किया करता है ! इससे मल झरते रहते हैं। यह ब्रह्म सहजानन्द के अविनाभावी विशुद्ध ज्ञान प्रकाश को प्रकट करता है जिसमें समस्त विश्व प्रतिभास होता है इससे सतत आनन्द झरता रहता है। मल योनि अब्रह्म देह से विरक्त होकर विशुद्ध ज्ञान प्रकाश के स्रोत भूत ब्रह्म स्वरूप में रमण करना ज्ञान का सदुपयोग है। अब्रह्म देह अपवित्र दुर्गन्ध युक्त है, इसकी दुर्गन्ध दबाने को चन्दन आदि का लेप किया जाये तो वह लेप भी मलिन हो जाता है। यह ब्रह्म अमूर्त शुद्ध ज्ञान ज्योतिर्मय सुरम्य है इसकी दृष्टि मात्र से उपासक सहजानन्द सुरभित हो जाता है। अपावन अब्रह्म देह से विरक्त होकर पावन ब्रह्म स्वरूप में रमण करना ज्ञान का सदुपयोग है। अब्रह्म देह भयावह है इस पर चाम का आवरण न होता तो यह देखा भी नहीं जा सकता था। यह ब्रह्म सुखावह है इस पर कर्म का देह का आवरण न हो तो यह असीम ज्ञान विकास रूप असीम आनन्द विकास रूप हो जाता। भयावह अब्रह्म देह से विरक्त होकर सुखी वह ब्रह्मस्वरूप में रमण करना ज्ञान का सदुपयोग है। ब्रह्मचर्य ही जीव का शरण और सारभूत है। ब्रह्मचर्य ही परम साधना है। ब्रह्मचर्य परं तपः।

निरन्तर ज्ञानोपयोग की भावना न रहना पतित होने का कारण हो सकता है

जिसका निरन्तर ज्ञानोपयोग रहे उसकी तो महती पवित्रता है। निरन्तर ज्ञानोपयोग में परिणामों की विशुद्धि रहती है। जिन परिणामों का विषय रूप, रस, गन्ध, स्पर्शवान इंद्रिय विषय रहा करते हैं उन परिणामों में विशुद्धि कहाँ से है। ज्ञानोपयोग में मुख्यतयः तो आत्मा ज्ञेय होता है, फिर आकाशादिक अन्य अमूर्त भी उपयोग के चर्चण में रहे तो वहाँ भी परिणामों में गन्दगी नहीं, और, ज्ञान वैराग्य की भावना से भावित चित्त में लोकरचना, देहियों की रचना, चैत्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैत्यालयों की रचना, सत्पुरुषों की मुद्रा आदि भी ध्यान में रहे उससे भी गन्दगी नहीं, किन्तु जहाँ इन्द्रिय विषय की पद्धति से ये मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ पदार्थ उपयोग में आते हैं, वहाँ परिणामों की गन्दगी का अवकाश होता है ! उदयवश निरन्तर ज्ञानोपयोग न भी रह सके, किन्तु निरन्तर ज्ञानोपयोग की भावना हो तो इस पवित्र भावना बने रहने के कारण विषयोपयोग के काल में भी इतनी अविशुद्धि, गन्दगी नहीं आ पाती है, कि आत्मा मोक्षमार्ग से पतित हो जाये, हाँ मोक्षमार्ग का कदम रुक गया अथवा कुछ पीछे हट गया, पर पतित नहीं हो पाता। जिसके अभीक्षण ज्ञानोपयोग की भावना भी नहीं है उसने तो अपना हृदय पावन स्वरूप के उपयोग के उद्देश्य से भी विहीन कर दिया, वहाँ विषयों के उपयोग की वासना जायेगी, वहाँ क्या आशा की जा सकती है कि आत्मा में ज्ञान प्रकाश भी रह सकता है। हे मुमुक्षु आत्मन् ! स्वहित चाहते हो तो निरन्तर ज्ञानोपयोग की भावना बनाओ। अज्ञानोपयोग में तो अन्धकार है, विह्वलता है, नाना दुर्गतियों में जन्म मरण करते रहने की परम्परा का निर्माण है। देखो, अपनी दया करो, ज्ञानोपयोग की भावना बनाये रहो। निरन्तर ज्ञानोपयोग की भावना न रहना पतित होने का कारण हो सकता है।

निज ज्ञान स्वभाव की ओर उपयोग बनाये रहने में ही सत्य आत्मवैभव की सिद्धि है।

अन्य जीवों के प्रति रति के भाव में, उनके व्यवहारों में उनको खुश रखने के प्रयत्न में क्या सार है ? ये यत्न तो आकुलता बढ़ाने वाले हैं तेरा ही तू है, तू ही तेरा है तेरे सिवाय अन्य कोई तेरा कुछ नहीं है। फिर भवरूप में आए हुए इन भवमूर्तियों में, प्राणियों में तेरा क्या है ? क्यों क्षणिक राग भाव के आवेश में आकर अपनी सुध खोकर विरान हो रहा है। समस्त क्लेशों के कारण भूत तो ये ही पर के लगाव हैं, इनमें तथ्य कुछ भी नहीं है। अब अपने ज्ञान स्वभाव की ओर उपयोग होने का साम्राज्य देखो! दृष्टि उपयोग की झलक यदि ज्ञान स्वभाव की होती है तो वहाँ सारे क्लेश सारे विकल्प एकसाथ शान्त हो जाते हैं और परम अद्भुत आत्मीय विशुद्ध आनन्द प्रकट हो जाता है। तेरा यह तू सदा है जिसकी दृष्टि से सारे क्लेश; पाप, कर्मबंधन कटा करते हैं, और विशुद्ध आनन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अनुभव होता है। तेरा यह तू सदा है इस कारण इस विशुद्ध आनंद के प्रकट होने पर इस आनन्द के विनाश का धोखा नहीं है। ये पर प्राणी ये पर वैभव सर्व पर हैं, प्रथम तो इनसे मेरे आनन्द की उत्पत्ति नहीं और कदाचित् हो भी, आनंद का परिणमन इन पर के लगाव के प्रसंग में तो पर से आया हुआ नहीं, किन्तु पर का उपयोग करके कल्पना बना करके माना हुआ सुखाभास है उस परिणति से तो वीरान होता जा रहा। हे आत्मन् ! अपने पर अब दया कर, गफलत की बात बहुत हो ली। चैतन्य प्रभो अब तो तू ही उपयोग में रह, मजाक की बात बहुत हो ली। ज्ञान मात्र यह निज स्वरूप उपयोग में रहता है तो कहीं भी हैरानी नहीं है। ज्ञान विकास और सत्यानन्द निज ज्ञान स्वभाव के उपयोग के प्रसाद से उपलब्ध होता है अपने ज्ञान स्वभाव को मत बिसारो। निज ज्ञान स्वभाव की ओर उपयोग बनाये रहने में ही सत्य आनन्द-वैभव की सिद्धि है।

कर्म बन्धन करना तो सरल है उससे निपटना कठिन हैं

ये रागादि भाव आपातकाल रमणीय हैं इनमें रत रहना, रागादि के आश्रय भूत इन्द्रियविषयों में उपयोग लगाना तुरंत सुखदायी विदित होता है किन्तु इस हाल में आत्मा पर क्या छा जाता है सो इसका भी तो कुछ ध्यान कर लो। इन्द्रिय विषयोपयोग में अज्ञान अंधकार छा जाता है, वासना का साम्राज्य हो जाता है; कार्माण वर्गणायें कर्म रूप बनकर छा जाती हैं। यह सब आसानी से आ गये। अब इनका परिणाम निरखिये अज्ञान अंधकार में जब कुपथ हितकर मालूम होता है तो वहाँ शान्तिमार्ग की आशा ही कहाँ ? जब वासना का साम्राज्य हो जाता है तो उसका विनाश करना आसान नहीं रहता, बद्धकर्म फल देकर ही दूर हो पाते हैं, सातिशय सहज ज्ञानापयोग में ही ऐसा सामर्थ्य है कि जिसके प्रसाद से कदाचित् फल दिये बिना ही कर्म खिर जाये, किन्तु कर्मक्षरण के उपाय के विरुद्ध विभाव में खुशी-खुशी बहे जा रहे हो सो सहज ज्ञानोपयोग लगने की क्या कल्पना की जा सके। कर्म संचय होता रहता है उनका विपाक आने पर आत्मा को क्लेश भोगना पड़ता रहता है जैसे यहाँ किसी से स्नेह का बन्धन कर लेना आसान है, किन्तु उसमें क्लेश ही भोगते जाते और स्नेह बंधन भी तोड़ नहीं पाते, स्नेहपाश बिछता ही जाता है, इसी प्रकार द्रव्यकर्मों का बंधन तो आसानी से हो रहा है, किन्तु उसके विपाक काल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में बीतती क्या है ? सो भी तो परखिये। यह सब कर्म प्रकृतियों का स्वरूप जानने पर समझ हो जायेगी और सिर पर आ पड़ी विपदाओं से सो समझ बन भी जाना चाहिये। देखो उद्दण्ड मत होओ। दण्डों (मन वचन काय के योग) की उत्कर्षता में मत जावो ! इसी उद्दण्डता में कर्म बन्धन की विशेषता होती है सोचो, समझो, आत्म करुणा करो। कर्म बन्धन करना तो सरल है, उससे निपटना कठिन है।

ज्ञानानुभव कर तो लिया जाय, उसके फल में सत्य आनन्द सदा ही पाते रहोगे।

आनन्द की आशा से यह जीव क्या-क्या करता रहता है, उस विडम्बना की बड़ी लम्बी कहानी है। उसका वर्णन भी ठीक और पूर्ण कर सकना कठिन है ! जब यहाँ तक नौबत आ जाती है कि आनन्द की आशा से मनुष्य खुदकशी कर लेता है, आत्म हत्या कर डालता है तब और क्या कहा जाय। वस्तुतः देखो तो विषय विडंम्बना में प्रतिक्षण आत्म हत्या हो रही है। ज्ञानानन्दघन आत्मा के स्वरूप का तिरस्कार करना, ज्ञान दर्शन का तिरोभाव करना, चैतन्य प्राण का घात करना यह सब आत्म हत्या है। यद्यपि आत्मप्रभु परिपूर्ण सत् है, सभी सत परिपूर्ण होते, आत्मप्रभु का विनाश नहीं हो सकता, तथापि आत्मप्रभु की प्रभुता नष्ट कर देना यह आत्महनन नहीं है क्या ? हे आत्मन् आनन्द की आशा से अनेक प्रकार के मन वचन काय के प्रयत्नों में अब तक सतत् रहे आये, उन प्रयासों से आनन्द नहीं पा सके, उल्टे आकुलताओं में ही बढ़े तो अब विरक्त, ज्ञानी ध्यानी महर्षि संतों के उपदेशों का सार यही है कि अपने को समझ कि मैं क्या हूँ। मैं ज्ञानमात्र वस्तु हूँ, ज्ञान को ही करता हूँ, ज्ञान को ही भोगता हूँ। ज्ञान को ज्ञानस्वभाव के जानने में लगा हूँ तो ज्ञान में ज्ञानस्वरूप समा जाता है, इस समय ज्ञान स्वरूप का अनुभव होता है। इस ज्ञानानुभव के होते ही समस्त समस्यायें हल हो जाती हैं, स्वयं ही आनंद मार्ग पा लिया जाता है, दृढ़ता से संसार के समस्त संकटों का प्रक्षय होने लगता है ! ज्ञानानुभव का विधान कुछ हीं समय विचारपूर्वक चलता रहे तो इस ज्ञानानुभव के प्रसाद के निकट काल में कभी मुक्ति पाकर समस्त संसार संकटों का प्रक्षय हो जाता है सदा के लिए। ज्ञानानुभव कर तो लिया जाय, उसके फल में सत्य आनन्द सदा ही पाते रहोगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम तो स्वयं सहज पवित्र महान हो, क्यों विषयों कषायों के दल-दल में पड़े हो

हे आत्मन् ! अपना स्वरूप देख। केवल अपने को देख तो स्वरूप दिखेगा अर्थात् तेरे साथ जो अन्य पदार्थ लगे हैं उन्हें तथा अन्य पदार्थ के निमित्त से होने वाले विभाव परिणमनों को न देखकर केवल अपने ही सत्त्व से केवल मैं जैसा है वैसा ही देखे तो स्वरूप दिखेगा। यह स्वरूप नेत्र से न दिखेगा, चैतन्य दृष्टि से ज्ञानदृष्टि से देखे तो स्वरूप दिखेगा अर्थात् इन्द्रियों के व्यापार को रोक कर किसी भी वाह्य पदार्थ को उपयोग में न लेकर, अपने आप के बारे में भी शब्द साहाय्य अवरोध न करके, अलौकिक विश्राम करे तब ज्ञान द्वारा ज्ञानमय आप जाना जायेगा और स्वरूप निरखा जायेगा। स्वरूप दृष्टि करने पर विदित होगा कि अहो यह आत्म स्वरूप तो स्वयं सहज पवित्र है, यह आत्म स्वरूप अमूर्त है आकाश में जैसे किसी का लेप नहीं है इसी प्रकार इस आत्मा में भी किसी का लेप न'ां है। कर्म बन्ध होने पर भी लेप नहीं है, किन्तु निमित्त नैमित्तिक भाव रूप बन्धन है और भाव से एक क्षेत्रावगाहित हैं, यह भी मेरी भूल के कारण हुआ है, अपनी सुध लूँ तो यह भी न रह सकेगा। मैं तो आकाशवत् निर्लेप हूँ और सब से विविक्त ज्ञानज्योतिर्मय होने के कारण सहज पवित्र हूँ। इस अन्तः स्वरूप का अतुल वैभव है, विश्व के समस्त पदार्थ इस आत्मा में झलकते हैं अर्थात् सर्वसत् इसमें ज्ञात होते हैं। इसी कारण सर्व द्रव्यों में महान् है। अब तुलना करो कहाँ तो तुम ऐसे सहज पवित्र महान और कहाँ विषय कषाय जैसे मलिन भावों में रमण करने की प्रकृति का ग्रहण। अरे मिथ्या भाव से दूर हटो। तुम तो स्वयं सहज पवित्र महान हो, क्यों विषय कषाय के दल-दल में पड़े हो।

हे प्रभो सिद्धात्मन् ! तेरी भक्ति ही इस पामर को शरण है

जिस आत्मा का स्वरूप साधा है, पूर्ण सिद्ध कर लिया है, जिन का स्वरूप पूर्ण विकसित है और दोष व उपाधियों से सर्वथा रहित है, उन्हें सिद्धात्मा कहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। सिद्धात्मा ही प्रभु हैं, प्रकृष्ट हुये हैं, उत्कृष्ट दशा को प्राप्त हैं और उत्कृष्ट दशा में रहने में पूर्ण समर्थ हैं, ऐसे प्रभु के स्वरूप की उपासना बनती रहे जिससे उसको विलखने का क्या काम है। जीव जब तक इस सिद्ध स्वरूप की उपासना नहीं कर पाता है तब तक मलिन अशुद्ध क्लेश मय जीवों को अपना सुखकारी मानकर उनकी उपासना किया करता है। इस अशुद्ध उपासना में यह जीव अशरण हो जाता है। अशरण, असहाय, परतन्त्र मलिन जीवों की उपासना से और आशा ही क्या की जा सकती है। सिद्ध प्रभु के सहज पवित्र ज्ञानज्योतिर्मय स्वरूप की उपासना की जाने पर अपने सहज पवित्र चिंचमत्कारमय अन्तः स्वरूप की सुध होती है। अन्तः स्वरूप की सुध में पवित्र प्रकाश है जो कर्मकलंकों को दूर कर देता है। अहा, यह निष्कलंक स्वरूप मेरा परम अभीष्ट तत्त्व है। लोक में अन्य कुछ भी परम अभ्येष्ठव्य नहीं है। कर्मकलंक मलिन जीवों को दिल में बसाये रखना अश्रेयस्कर है, जन्म मरण परम्परा बढ़ाने वाला है। भव रहित रहने का उपाय करो। अपना स्वरूप तो ज्ञान दर्शन सामान्यात्मक है उसमें भव नहीं पड़ा है, भव तो भ्रम करके बनाया जा रहा है। अपना अभव स्वरूप देखने के लिये भवरहित व्यक्त शुद्ध सिद्ध आत्मा का, निकल परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करना कर्त्तव्य है। हे सिद्ध प्रभो ! तेरे विशुद्ध ज्ञान ज्योति स्वरूप के ध्यान से विषय कषाय के कलंक जो कि क्लेशमय हैं नष्ट हो जाते हैं। हे प्रभो सिद्धात्मन् ! तेरी भक्ति ही इस पामर को शरण है।

हे योगेश्वर ! तुम्हारी सेवा में रहने वाले भक्त संकट हारी योग विधि का मर्म पा लेते हैं

जन्म मरण के और जन्म मरण के बीच होने वाले क्षुधा, तृषा, ठंड, गर्मी, वध बंधन, सन्मान, अपमान, रोग आदि के समस्त संकट अध्यात्मयोग से समाप्त हो जाते हैं। अतः यह अध्यात्मयोग, ज्ञान योग संकट हारी योग है। अपने को ज्ञान मात्र अनुभव किये बिना विकल्प मिटते नहीं हैं, सो ज्ञान योग का आलम्बन लिये बिना संकट समाप्त नहीं हो सकते। ऐसे पवित्र ज्ञान योग में बर्तने वाले, बढ़ने वाले महर्षि संत जनों की सेवा करने वाले भी बड़े सौभाग्यशाली हैं। ज्ञान योग के ईश्वरों की सेवा करना ही वास्तविक सेवा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगेश्वरों की सेवा में यह तन लग जावे तो यह सारभूत कमाई है। भावकलंक मलिन प्राणियों की सभी पुरुषों की सेवा दुराशय भरी सेवा है, उनको खुश रखने के प्रयत्न में कुछ भी सिद्धि नहीं है बल्कि अपनी बरबादी करना है। जगत के अनन्त जीवों में से, जो सभी प्रकट पर हैं भिन्न हैं, उनमें से जो इन १०—१५ जीवों का, जो कि हाड़ मांस थूक नाक विष्टा मूत्र आदि अपावन मलों से पूरित देह में बंधे हैं, समागम मिला है, इनको अपना सर्वस्व हितकारी पावन समझ लेना कितना अज्ञान अंधकार है। इस अज्ञानान्धकार से अन्धे हुये जीव को इन कलंकमलिन जीवों की सेवा में सुख मानने का भ्रम हुआ है। अरे इस अमूल्य नर जीवन को पाकर विषय कषाय के विकल्पों में बरबाद मत कर। इस पाये हुए श्रेष्ठ मन को ज्ञान योग की साधना में लगा। ज्ञान योग की साधना में लगे हुए संत आत्माओं की सेवा में तन मन वचन वैभव सर्वस्व लगा दे। इस उपयोग का उत्तम फल पावेगा। योगेश्वरों की सेवा वास्तविक सेवा है। हे योगेश्वरो ! तुम्हारी सेवा में रहने वाले भक्त संकट हारी योग विधि का मर्म पा लेते हैं।

तुम तो स्वयं आनन्दमय हो, स्वरूप निरखो और प्रसन्न रहो

सुख के खातिर जगह-जगह, जन-जन के प्रति, अनेक विषयों के निकट क्यों डोल रहे हो। तुम ज्ञान और आनन्द स्वरूप से अनादि से ही सत्ता में ही रचे हुये हो। तुम और हो क्या, सिवाय ज्ञानानन्द स्वरूप के। शरीर तुम हो नहीं. शरीर तो रूप रस गंध स्पर्शवान है तुम अमूर्त हो। शरीर तो जीर्णशीर्ण, गल जाने वाला, भस्म हो जाने वाला, क्षत विक्षत हो जाने वाला है, तुम कभी जीर्ण शीर्ण नहीं होते, गलते नहीं, भस्म होते नहीं, क्षत विक्षत होते नहीं, क्षत विक्षतपना तो तुम्हारा इतना ही है जो कि भ्रम करके विकल्पों से आकुलित होते रहते हो। शरीर की इन्द्रियाँ भी पुद्गल हैं वे भी तुम नहीं हो। तुम तो द्रव्य कर्म से भी विविक्त हो और द्रव्य कर्म के उदय के निमित्त से हुये राग द्वेषादि भाव कलंक से भी परे हो। द्रव्य कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से आत्म गुण के विकास रूप विचार विज्ञान आदि ज्ञानांशों आदि से भी विविक्त हो, परिपूर्ण ज्ञानमय हो, अखण्ड ज्ञानस्वरूप हो। इसी प्रकार द्रव्यकर्म के उदय निमित्त से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुये आनन्द विकार रूप, सुख दुःख रूप भी नहीं हो, कर्मों के अति मन्द होने से विशिष्ट क्षयोपशम होने से उपशम होने से आनन्द गुण के आंशिक विकास रूप से भी विवक्त हो, परिपूर्ण आनन्द स्वरूप से रचे हुए हो, क्यों बाहर की ओर दृष्टि करते हो, क्लेश पाते हो, तुम तो स्वयं आनन्दमय हो। बस इस सहज आनन्द घन स्वरूप को निरखना भर है। यह निज सहज आनन्द मय स्वरूप जब दृष्टि में रहता है तब कोई विकल्प क्लेश ही नहीं उठता। यही वास्तविक प्रसन्नता है निर्मलता है, उज्ज्वलता है, इसमें ही वास्तविक आनन्द है। अब स्वरूप विपरीत अपने को मत निरखो, क्लेश मत सहो, तुम तो स्वयं आनन्दमय हो, स्वरूप निरखो और प्रसन्न रहो।

अकीर्ति का भय पाप वृत्ति का तो रोधक है, किन्तु कीर्ति चाह का पोषक भी है।

मेरा कहीं अपयश न हो जाये ऐसा भय किसी हद तक हितकारी है। अपयश के भय से अपयश के काम तो न किये जावेंगे। अपयश के काम—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह (नाना अन्याय)। इसने उसे मारा, उसकी हत्या की आदि वार्ता चलने पर यह जीव अपना अपयश समझता है, लोक दण्ड भी पाता है, कर्म दण्ड तो निश्चित ही है। जिसे इस अपयश का भय होगा वह हिंसा कार्य से बचकर चलेगा। इसने झूठ बोला, झूठी निंदा की, झूठी गवाही दी आदि वार्ता चलने पर यह जीव अपना अपयश समझता है, लोक दण्ड भी पाता है, कर्म दण्ड तो निश्चित ही है। जिसे इस अपयश का भय होगा वह झूठ बोलने की प्रवृत्ति न करेगा। इसने चोरी की, अमुक का धन लूट लिया, धोखा देकर रख लिया आदि वार्ता चलने पर यह जीव अपना अपयश समझता है, लोक दण्ड भी पाता है, कर्म दण्ड तो निश्चित ही है। जिसे इस अपयश का भय होगा वह चोरी की प्रवृत्ति नहीं करेगा। इसने अमुक पर स्त्री पर या पर पुरुष पर कुदृष्टि की, काम भरी प्रवृत्ति की आदि वार्ता चलने पर यह जीव अपना अपयश समझता है, लोक दण्ड भी पाता है, कर्म दण्ड भी पाता है, कर्म दण्ड तो निश्चित ही है। जिसे इस अपयश का भय होगा वह कुशील प्रवृत्ति तो नहीं करेगा। इसने लालच करके अमुक का धन यों हड़प लिया, अन्याय किया,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धोखा दिया, अन्याय करके धन कमाया आदि वार्ता चलने पर यह जीव अपना अपयश समझता है, लोक दण्ड भी पाता है, कर्म दण्ड तो निश्चित ही है। जिसे अपयश का भय होगा वह अन्याय न करेगा। इस प्रकार अपयश का भय पापवृत्ति का रोधक है, यह तो भला है। किन्तु, इस अकीर्तिमय करने वाले के आशय में कीर्ति की चाह पड़ी है। कीर्ति की चाह में कर्म बन्ध, जन्म मरण परम्परा, पर्याय बुद्धता तो रही आई जो अनर्थ का मूल है। अतः अकीर्ति भय मात्र से जीवन की सफलता नहीं है। ऐसा उपाय करो जिससे अकीर्तिभय भी न रहे, कीर्ति चाह भी न रहे। वह उपाय है निर्विकल्प विशुद्ध ज्ञान मात्र अपनी प्रतीति करना। शुद्ध ज्ञान स्वभाव का अनुभव करो। यह याद रखो अकीर्ति का भय पाप वृति का तो रोधक है, किन्तु कीर्ति की चाह का पोषक भी है।

पंचामृत का पान करो और अमर व आनन्दमय होओ

तुम तो ज्ञानमय ही हो यह तो निर्णय है ना, ज्ञानस्वरूप को छोड़कर अन्य कुछ तुम कल्पना में भी नहीं आ सकते। ज्ञान मय हो तुम यह पूर्ण निश्चित है। अब ज्ञानमय तुम अमर रह सको व आनन्द मय रह सको इसका उपाय तो ज्ञानामृत का ज्ञानोपयोग रूपी अंजुली द्वारा पान करना ही हो सकता है। सो देखो इस समय तुम्हें पञ्चामृत का पान करना चाहिये। पंच अमृत है ये (१) लोक परिज्ञान, (२) कालपरिज्ञान, (३) जीवदशा परिज्ञान, (४) मुक्त स्वरूप परिज्ञान, (५) आत्म स्वरूप परिज्ञान। यह लोक ऊर्ध्वलोक, मध्य लोक, अधो लोक में विभक्त संख्यातीत असंख्यात-असंख्यात योजनों कोशों प्रमाण है। इतने विशाल लोक में कोई प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहाँ तू अनन्त बार जन्म मरण न कर चुका हो। यह अतीत कहानी इस बात का भी समर्थन करती है कि अभव होने का यदि कोई प्रोग्राम न रचा तो यों ही इस जीव को जन्म मरण करके संकट सहते रहने पड़ेंगे। देख—इस विशाल लोक का परिज्ञान कर। जिससे उस विशालता के समक्ष बिन्दुमात्र इस परिचित क्षेत्र में विषय कषाय का व्यामोह दूर हो। इस व्यामोह विष के पान से ही जन्म मरण और जन्म मरण के अन्तर्गत संसार के समस्त संकट सहने पड़े हैं। अतः लोक परिज्ञानामृत का पान करो और अमर व आनन्दमय हो जावो। काल अनादि अनन्त है, समय का न तो प्रारम्भ है और न अन्त है। इस अनाद्यनन्त काल में जीव दशा के उत्कर्ष और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपकर्ष रूप अनन्तानन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में विभक्त अनंतों ही कल्प काल व्यतीत हो गये जिसके समक्ष यह जीवन काल बिन्दुमात्र भी नहीं, न कुछ जैसा है। न कुछ जैसे जीवन काल में कल्पना के प्रवंधन पुलावों में इस ज्ञान वाले भव को विषय कषाय के विकल्पों को गमाकर यों ही जन्म मरण मय संसार के समस्त संकट सहते रहने पड़ेंगे जैसे कि संकट सह-सह कर अनन्त काल व्यतीत कर डाला। देखो, यहाँ अनन्तों कल्प काल से अनन्तों चक्रवर्ती नारायण आदि होते आये, किन्तु ठहरकोई न सका, काल ने सब को ग्रसा। देख, इस असीम काल का परिज्ञान कर, जिससे इस असीम काल के समक्ष न कुछ जैसे इस जीवन काल में विषय कषाय का व्यामोह दूर हो। इस व्यामोह हलाहल विष के पान से ही अब तो जन्म मरण और जन्म मरण के अन्तर्गत संसार के समस्त संकट सहते रहना पड़ते हैं। इस न कुछ जैसे जीवन काल में असार माया रूप कीर्ति वैभव, भोग उपभोग आदि कुछ भी तो आशा न बना। यहाँ सारा धोखा ही धोखा है। जीवन काल अभी ही तो गुजरने वाला है। जीवन व्यतीत हुआ कि लोक में ही कहीं किसी दशा में जन्म लोगे, फिर ठिकाना क्या ! अतः काल परिज्ञानामृत का पान करो और अमर व आनन्द मय होओ ! इस संसार में जीवों की कैसी दशायें हैं ? निगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति इन एकेन्द्रियों की दशा देखो कैसी दयनीय है, क्या ज्ञान, क्या आनन्द। लट, चींटी, ततईया आदि विकलेन्द्रियों की दशा देखो कैसी दयनीय है, कौन है, उनको पूछने वाला ? अनेकों लोग तो जान बूझकर भी मार डालते हैं। पञ्चेन्द्रियों में पशुपक्षियों आदि की भी दशा देख लो अनेकों लोग उनका शिकार करते हैं। उनको यंत्रों में रखकर मार डालते हैं। नारकियों की दशा तो सुनने से ही शस्त्रवत् आघात पहुँचाती हैं। देव गति में भी मूढ़ता भरे विषय कषाय विकल्पों के दुःख हैं। मनुष्यों की बात तो सामने भी कुछ कुछ जान रहे हो। शास्त्रों में देखो एक-एक जाति का जीव अनेक लाख करोड़ कुल प्रकारों में पाया जाता है ! ये सब दशायें आत्म बोध बिना हुई हैं। अब भी अपनी सुध न की तो यों ही बन कर संकट सहन करना पड़ेगा। अतः जीव दशा परिज्ञानामृत का पान करो और निर्विकल्प होकर अमर व आनन्दमय रहो। इन विविध सांसारिक दशाओं से मुक्त परमात्मा ही परमोत्कृष्ट है जहाँ ज्ञान अनन्त है, दर्शन अनन्त है, शक्ति अनन्त है, आनन्द अनन्त है मुक्त आत्मा कृत कृत्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, निर्विकल्प है, परमानन्द मय है। ये विशुद्ध ज्ञान ज्योति स्वरूप हैं। इनके स्वरूप का ध्यान करने से कलंक नष्ट होते हैं, निष्कलंक आत्म देव की सुध होती है जो कि स्वरसतः आनन्दमय और अमर है। अतः मुक्त स्वरूप परिज्ञानामृत का पान करो और अमर व आनन्दमय होओ। हे आत्मन् ! तुम सहजानन्द ज्ञान स्वरूप हो, असार विषय कषाय के विकल्पों से हटकर विशुद्ध ज्ञानघन निज अन्तः स्वरूप की अनुभूति करो, सर्व विकल्प संकट दूर होंगे। एतदर्थ आत्म स्वरूप परिज्ञानामृत का पान करो और अमर व आनन्दमय होओ। देखो—ज्ञान तो कुछ न कुछ तुम निरन्तर करते ही रहते हो, किन्तु विवेक करो—विकल्पात्मक ज्ञानों में तेरी बरबादी ही है। ये पंच अमर ज्ञान धाम बताये हैं—लोक परिज्ञान, काल परिज्ञान, जीव दशा परिज्ञान, मुक्त स्वरूप परिज्ञान, आत्म स्वरूप परिज्ञान। इस पंचामृत का पान करो और अमर व आनन्द मय होओ।

होली क्या होली, जो होनी थी सो होली, अब तो अपनी सुध लो और भविष्य सम्हाल लो।

अहो कैसा तो यह ज्ञानानन्द-रसनिर्भर सर्व द्रव्यों में सारभूत पवित्र परमात्मतत्त्व मैं और कैसी कठिन-कठिन दशा इस पर गुजर रही। इसे तो बड़ी अनहोनी ही घटना कहना चाहिये। पेड़, पानी, पर्वत, कीड़े, पतंगे, आग, हवा, पशु, पक्षी आदि जैसे शरीरों में बंधना, फँसना, रुकना क्या यह मुझ अन्तस्तत्त्व की बान है ? धन वैभव शरीर आदि की कल्पनायें बढ़ाकर मनचाही बात न होने को बड़ा क्लेश मानकर मूर्ख बनना क्या यह मुझ अन्तस्तत्त्व का काम है। मुझ पर ऐसी विपदायें अनीतियाँ १०—५ लाख वर्ष से नहीं, अनादि काल से बीत रही हैं, क्या यह मुझ पर अक्षम्य अन्याय नहीं है ? यह मैं अपना रोना किसे सुनाऊँ ? कोई सुनने वाला ही नहीं। कोई सुनकर कर भी क्या देगा ? यहाँ तो सब ही ऐसे मूढ़ नजर आ रहे हैं। हे नित्य निरंजन सहजज्ञानानन्द-स्वरूप कारण समयसार ! अब तो बहुत होली। क्या होली ? तुम्हीं बताओ, क्या ये सब जन्म मरण देह विकल्प आदि तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप हैं ? नहीं, तब तो सारी बातें अनहोनी ही बीतीं। खैर इतना कड़ा भी रुख नहीं बनाना चाहता हूँ, जो होली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो होली, जो होनी थी सो होली। अब तो अपनी सुध लो। अभी तो, और अभी क्या, सदा ही सदा के लिये अनन्त काल पड़ा है सो अनन्त भविष्य की सम्हाल करना है। अब भविष्य मेरा मेरे ही स्वभाव के अनुरूप शुद्ध जानन के और शुद्ध एक समरस पूर्ण आनन्द के परिणमन रूप होवे। यह सब हे नाथ ! आपकी दृष्टि बिना असंभव है। सो हे निज परमात्म देव ! अब तो बहुत होली, क्या होली जो होनी थी सो होली, अब तो अपनी सुध लो और भविष्य सम्हाल लो।

निज सहज स्वरूप की सुध अवश्य ही संसार संकटों से पार कर देगी

संसार में कल्पनाओं के संकट छाये हुए हैं। इन कल्पना संकटों से व्यक्त परिस्थिति भी कठिन बना ली गई है। जिसे देखकर विवशता महसूस की जाने लगती है। अमूर्त ज्ञानानन्द-स्वरूप आत्मा का पौद्गलिक देहों में फँस जाना यह उसी प्रकार की कठिन स्थिति नहीं है क्या ? लेकिन ऐसी कठिन से कठिन परिस्थितियाँ भी निज सहज स्वरूप की सुध से समाप्त हो जाती हैं। इस लोक में किसी का कोई है ही नहीं, साथ भी कोई क्या देगा। जिसके निकट जाओ वहीं से धोखा मिलता हैं। धोखा भी क्या ? यह जीव जो कुछ चाहता है उसकी सिद्धि वहाँ से नहीं होती तो उसे यह धोखा कहता है। वह तो वस्तु का स्वरूप है, प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी परिणति से अपने अपने लिये अपने-अपने में परिणमता है। यही बात जीव की है ! बाहर से हमें क्या मिलता है, धोखा मिलता है या सहयोग मिलता है यह कल्पना ही मत करो, क्योंकि वाह्य पदार्थ से तेरे में कुछ आ ही नहीं सकता। अपना अपने में विचार कर शान्ति का उपाय देख, वस्तुतः मैं अपने ही विषय कषाय विचार-विकल्प का आश्रय किया करता हूँ, वाह्य नहीं कर सकता। तब मुझे अपने में ही छाँट करनी है किस भाव का आश्रय करने से हमारे संसार संकट समाप्त होते हैं। विषय कषाय भावों का आश्रय करने से तो संसार संकटों की परम्परा बढ़ती है, कर्म बन्ध होता है और फिर वे भाव शुद्ध नहीं स्थिर नहीं। एक निज सहज ज्ञायक स्वभाव की सुध ही समस्त संकट मेट सकती है। यह सहज स्वभाव शुद्ध है, स्थिर है, आत्म स्वरूप है। भले ही स्वरूप सुध पाकर भी कुछ काल अभ्यास वश चलित हो जाया करें !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेकिन यह बात ध्रुव सत्य है कि निज सहज स्वभाव की सुध अवश्य ही संसार संकटों से पार कर देगी।

इच्छायें छोड़ो और सुखी हो लो

अरे क्यों इतनी विवशता, व्याकुलता अनुभूत की जा रही है। तुम्हारा स्वरूप, सर्वस्व तो स्ववश है, अनाकुल है ! सारी विवशतायें व्याकुलतायें इच्छायें पैदा करके बना डाली हैं। इच्छा न करो, कुछ भी न चाहो तो क्या तुम मिट जावोगे, नहीं मिटोगे बल्कि चमक जाओगे, स्वच्छ हो जाओगे, परम आत्मा हो जावोगे, आनन्दमय रहोगे। इच्छायें तो अनर्थ हैं अनर्थ के साथ व्यर्थ भी हैं। तुम तो ज्ञानघन आनन्द स्वरूप पवित्र आत्मतत्त्व हो, ऐसा ही अपने को अनुभवो तो सार है, परम कल्याण है। अपने को निज सहज स्वरूप न अनुभव करके अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों को अपना मानने का, सुखकारी मानने का कलंक पैदा किया है और उस कलंक से कलंकित होकर इच्छायें जो बनाई जा रही हैं उनसे ही क्लेश पा रहे हो, व्यर्थ क्लेश पा रहे हो। इच्छायें तो व्यर्थ हैं, क्योंकि इच्छा में जो भाव आया उसके अनुकूल पर मैं कुछ होता नहीं, कदाचित् कुछ होने का मेल मिल जाये तो उस समय भी मौज का भ्रम करके क्षोभ ही मचाते हो, तिस पर भी वह क्षणिक है, सो मेल मिटे बाद भारी व्याकुल होना ही पड़ता है ! इच्छायें तो कलंक हैं, औपाधिक भाव हैं, विभाव हैं, पर भाव हैं, अशरण हैं, दुःख रूप हैं, दुःख हेतु हैं, कर्मबन्ध के कारण भूत हैं, जन्म मरण की परम्परा बढ़ाने वाली हैं, अतएव अनर्थ हैं। जो चाहा जाता वह होता नहीं, उससे सम्बन्ध नहीं, उससे सुख शान्ति नहीं, बल्कि क्लेश ही है, अतएव व्यर्थ है। इच्छायें अनर्थ हैं, इस कारण व्यर्थ हैं, इस कारण अनर्थ हैं। इच्छाओं के वश होकर क्यों भारी परेशानी उठा रहे हो ! सुख पाना तो तेरे ही स्वाधीन है। इच्छायें छोड़ो और सुखी हो लो !

अपने में अपने स्वरूप की दृष्टि कर लो और सुखी हो लो

अरे कहाँ-कहाँ तन से डोलते हो। बाहर में तेरा है क्या ? तेरा मेरे सिवाय और कुछ नहीं। पर से तेरे में कुछ आता नहीं। व्यर्थ का परिश्रम है बाहर में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ ढूँढने का यत्र तत्र डोलने का। अरे कहाँ-कहाँ मन को घोलते रहते हो। कौन सा पदार्थ है ऐसा बाहर में जो तेरे मन को खुश भी रखना चाहता हो, खुश करने की बात तो दूर रही ! जितने दृश्यमान पदार्थ हैं वे जड़ हैं वे तेरी ओर झुक भी नहीं सकते, वे तेरा चाहेंगे क्या, करेंगे क्या, वे हैं और अपने स्वरूप के कारण अपने आप में बनते हैं बिगड़ते हैं, बने रहते हैं, उनसे तेरा कुछ वास्ता ही नहीं ! जो जीव है वे तो दिखते ही नहीं और फिर वे सब भी अपने-अपने भावरूप ही परिणमते हैं तेरा कुछ नहीं करते, तेरा कुछ नहीं चाहते। व्यर्थ की परेशानी है किसी पर चेतन या अचेतन पदार्थ को मन में बसाने की, सोचने की परविषयक विकल्पों में घुल घुल कर जिन्दगी बिता दोगे, क्या लाभ पावोगे। अरे कहाँ कहाँ किस किस से क्या क्या क्यों बोलते रहते हो। परेशानी और बन्धन में पड़ने का पहिला सूत्रपात तो है, देखना, फिर द्वितीय सूत्रपात है सोचना, फिर तृतीय सूत्रपात है बोलना। बोले बाद बन्धन छुटाना कठिन है। क्या बोलना ? किस बोल में हित है, यह भी तो विवेक करो। जिस वचन से सम्यक् ज्ञान बढ़े, जिस वचन से वैराग्य जगे, जिस वचन से आत्म स्वरूप की सुध हो, जिस वचन से सही शान्ति मिले वही वचन हितकारक हो सकता है, सो भी परम हित के लिये हेय है। तथ्य यह है कितना मन वचन की प्रवृत्तियाँ किसी न किसी प्रकार की आकुलता का ही कारण हैं ! पर प्रवृत्तियों में लगकर क्यों आकुलित होते हो ? देखो तुम्हारा स्वरूप ही स्वयं सहज आनन्द का धाम है। अपने में अपने स्वरूप की दृष्टि कर लो और सुखी हो लो !

खुद ही खुद पर दया करनी होगी सारे विकल्प तोड़ देने होंगे तब सिद्ध सर्वार्थ बन सकोगे

पंच इन्द्रियों के विषय रुचना भोगना यह अपने आप पर अदया है अपने आत्म प्रभु पर आघात करना है। विषय कल्पना करके सर्व आत्म प्रदेशों में क्षोभ मचाकर आत्म प्रभु के सहज आनन्द स्वरूप को बिगाड़ देना कितना विकट अन्याय, अपने प्रभु पर अन्याय करके क्या कुछ सिद्धि की आशा की जा सकती है ? हाँ केवल यही आशा की जा सकती है कि निगोद, कीट, पतंग, पशु, पक्षी, नरक आदि दुर्गतियों में जन्म मरण करता रहे और क्लेश भोगता रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखो ! खुद ही खुद पर दया करनी होगी। कोई तुम पर दया कर ही नहीं सकता। अपने आप पर यही एक मात्र वास्तविक दया है कि सारे विकल्पों को हटा दीजिये। विषयों के भोगोपभोग के विकल्प में हित नहीं है, ये विकल्प क्षणिक हैं ये तो उत्पन्न होकर प्रलीन हो जाते हैं इनकी प्रेरणा से प्रवृति आसक्ति वासना बन जाने से अनगिनते क्षणिक विकल्पों की परम्परा में बहकर दुःख भोगना पड़ता है। लोग मुझे अच्छा समझें यह विकल्प तो अनर्थ ही है। इस विनश्वर संसार में, इन विनश्वर मायामय लोगों से, इस विनश्वर पर्याय के लिए, इस विनश्वर यश की बात चाहना यह अनर्थ ही तो है और फिर लोग मुझे अच्छा कहें ऐसी पोजीशन की चेष्टा रखना यह महा अनर्थ है। क्यों अपने पर अनर्थ ढाकर अपनी हत्या कर रहे हो, तुम तो स्वयं सहज आनन्द धाम हो, ज्ञान प्रकाश में ज्ञानोपयोग में आओ निर्विकल्प ज्ञान ज्योतिमात्र निज परम ब्रह्म परमात्मतत्त्व की उपासना करो, इस ही सुगम स्वाधीन पवित्र विधि से तेरे समस्त प्रयोजन सिद्ध होंगे। समस्त प्रयोजन क्या हैं ? विशुद्ध परम आनन्द मय रहना यही तो संपूर्ण प्रयोजन है। इस प्रयोजन की सिद्धि का इस परम हित की प्राप्ति का यही मात्र विधान है निर्विकल्प ज्ञानानन्द धन निज सहज स्वरूप को निरखो, वाह्य समस्त विकल्पों को दूर करो देखो इस परम पवित्र निज सहज विधान को अमल में लाओ। खुद ही खुद पर दया करनी होगी, सारे विकल्प तोड़ देने होंगे, तब सिद्ध सर्वार्थ बन सकोगे।

सिद्धार्थ प्रभु को चित्त में बसा, कल्याण की साधना अवश्य बनेगी

जिन्होंने आत्मा का सर्व अर्थ सिद्ध कर लिया है, उन्हें सिद्धार्थ कहते हैं। आत्मा का समस्त प्रयोजन है ध्रुव सत्य आनन्द का लाभ। यह सर्वार्थ निर्विकार ज्ञानघन परमात्मदेव को उपलब्ध हुआ है, उनका स्वरूप क्या है यह ध्यान में आते ही आत्मकल्याण का पथ स्पष्ट हो जाता है। प्रभु हैं कृत कृत्य, जिन्होंने करने योग्य सब कर लिया है उन्हें कहते हैं कृतकृत्य। सब कुछ कर लिये गये की स्थिति वह कहलाती है जहाँ कुछ करने को रहता ही नहीं। जिन्होंने आनन्द धाम निज परम पद में विश्राम पूर्णतया सदा के लिये कर लिया उन्हें अब कुछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी करने को नहीं रहा। उनके इस पवित्र ज्ञानज्योतिर्मयस्वरूप को निरखकर भक्त अपने स्वरूप की सुध लेता है। पर को पर जानकर, पर से हित नहीं हो सकता इस कारण पर से अहित रूप समस्त पर से अपेक्षा करके, पर के सम्बन्ध में कुछ भी विकल्प न करके, उनके बाबत कुछ भी सोच विचार न करके, जो अन्तः सत्यविश्राम पा लिया जाता है, उस सत्य विश्राम में रहकर बड़भागी स्वयं आत्म स्वरूप का अनुभव कर लेते हैं। शान्ति, कृतार्थता, सिद्धार्थता, कल्याण, परमहित, सर्वस्वलाभ इस निज परमात्म तत्त्व के दर्शन अनुभवन में ही है ! इसकी सिद्धि के लिये बाहर में कुछ शरण गहना है तो सिद्धार्थ प्रभु की शरण गह और अपने सिद्धार्थ स्वरूप का स्मरण करके आत्मासिद्धार्थ स्वरूप की उपासना कर देख। अपना अपने केवल में रहना आत्मस्वरूप निरख और जैसे को तैसा मान तू परिपूर्ण, ज्ञानानन्दघन, सिद्धार्थ है ! तेरा काम जानना मात्र है और अपने सत्यकार्य में रहकर अनाकुल रहना तेरा स्वरूप है। अपने स्वरूप में रहकर सिद्धार्थता का अनुभव कर। अपने स्वरूप में रमण रूप सिद्धार्थता की प्राप्ति के उद्देश्य से सिद्धार्थ प्रभु को चित्त में बसा, कल्याण की साधना अवश्य बनेगी।

अय लुटे पिटे मेरे प्यारे ! इधर आ, यहाँ बैठ, यहीं रहना इसी में तेरी भलाई है !

ए मेरे उपयोग ! अब तक सब गतियों में नाना दशाओं में नाना विकल्पों में रह रह कर रम रम कर सब कुछ देख तो लिया। कुछ सीख ले, सीख सका या नहीं, कुछ कमी रह गई हो तो थोड़ा सा अब विचारों में दुहरा ले। निगोद, स्थावर, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के भवों में, असंज्ञी भवों में रह कर किस तरह की हैरानी सही, पशु-पक्षी नारकी भवों में रहकर क्या क्या यातनाएँ सहीं। देव गति में जन्म लेकर भी नाना राग ज्वालाओं में जलता रहा। बता पर के स्नेह में क्या पाया। परिणाम तो सबका क्लेश ही रहा ! मनुष्य भव में कभी पैदा हुआ तो स्वच्छ ज्ञान का समागम हुए बिना पशु-पक्षी जैसी ही जिन्दगी रही। जिन चेतन व अचेतन पदार्थों के निकट गये वहीं लुटे। वाह्य तो वाह्य ही है, वाह्य पदार्थ न मेरें में आता न जाता। वाह्य पदार्थ के रहने से सम्पन्न क्या हुआ उल्टा भ्रम किया सो अपना ज्ञान दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मलिन किया अपना आनन्द खोया सो लुट ही गये। धन वैभव कभी निकट न रहा तो इसमें क्या विपत्ति आई, रहा तो रहा, न रहा तो न रहा, उसका ख्याल बना कर ज्ञान दर्शन को मलिन किया अपना आनन्द खोया सो लुट ही गये। पर पदार्थों की आशा में, लगाव में, संयोग वियोग में आकुलता ही आकुलता का अनुभव किया, क्लेश ही क्लेश भोगता रहा सो यही गजब का पिटना हुआ। अय लुटे पिटे मेरे प्यारे अब कुछ अपने परमात्म तत्त्व की भी सुध कर, परमानन्द स्वरूप निज परमात्मतत्त्व के निकट रहने के लिये इस संयत प्रकाश मय गली से आ, प्रतिभास स्वरूप इस अपने धाम को देख कैसा आनन्द का धाम है, इधर आ यहीं बैठ, मिली ना शान्ति अब यहीं रहना। लुटना पिटना सदा के लिये टल जायेगा! कदाचित् पुरानी आदत की वासना के वश होकर उचट कर बाहर जाय तो फिर लुट पिट कर इस उद्‌बोधन को याद रखना अय लुटे पिटे मेरे प्यारे। इधर आ यहाँ बैठ, यहीं रहना इसी में तेरी भलाई है।

खूब परख कर लो शान्ति वैराग्य से ही होती है

जिस किसी भी परिस्थिति में, वाह्य समाज में, किसी भी समय जो कुछ शान्ति, आराम, विश्राम अनुभव किया जाता है वह आराम, वह शान्ति कहीं अन्य पदार्थ से नहीं आती, किन्तु वैराग्य से ही आती है, इस की खूब परख कर लो। चाहे कोई धनी हो या गरीब, विद्वान हो या मूर्ख, संत हो या भिखारी, पशु हो या पक्षी, सब की सब परिस्थितियों पर दृष्टिपात कर लो, शान्ति वैराग्य से ही मिलती है। किसी ने हजार रू आय की इच्छा की तो जब तक हजार रू की प्राप्ति नहीं होती तब तक वह बेचैनी अनुभव करता है। प्राप्ति होने पर चैन मानता है तो विवेक पूर्वक सोचो क्या उसे शान्ति रूपयों से मिल कर मिली। नहीं, रूपया मिलने पर वह इच्छा दूर कर सका सो इच्छा के दूर होने से, राग के दूर होने से उसे शान्ति मिली। यदि कोई पहिले से ही रूपयों की इच्छा नहीं करेगा तो इच्छा न होने से उसे शान्ति होना निश्चित है। किसी को मित्र से मिलने की इच्छा हुई तो जब तक उसके इच्छा रहती है, अशान्त रहता है वह और मित्र से मिलने पर उसे शान्ति हुई तो क्या मित्र से मिलकर इसमें शान्ति आई ? नहीं, मित्र से मिलने की इच्छा रूप राग न रहा सो इससे शान्ति आई। राग न रहने का नाम वैराग्य है। प्रत्येक घटनाओं में परख करते जाइये यही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथ्य मिलेगा कि हम जब जब कुछ शान्ति का अनुभव करते हैं वैराग्य से ही शान्ति का अनुभव करते हैं। इस तथ्य को न भुलाया जाय तो हम कुमार्ग पर चलने से हट जावेंगे, हमें सदा अपनी सावधानी रहेगी, अविकार स्वभाव विशुद्ध चैतन्य महाप्रभु की उपासना की रुचि रहेगी। और उस समय परम्परा रखने वाली शान्ति प्राप्त होगी। यह परख कर लो शान्ति वैराग्य से ही होती है।

इच्छा करते ही उसी समय इष्ट मिल जाय ऐसा कोई पुण्य नहीं होता

यह त्रिकाल असंभव है कि इच्छा करते ही इष्ट मिल जाय। यह तो स्पष्ट ही है कि इष्ट सामने हो तो उसकी इच्छा क्यों होगी। इच्छा का विषय तो वह है जो अप्राप्त है, अभुज्यमान है। चक्रवर्ती जैसे महापुरुष भी जब जो इच्छा करते हैं तब उनकी इच्छा की पूर्ति कहाँ है, उस समय वे अन्य साधारण जनों की भाँति विह्वल कातर और दीन हो जाते हैं। इच्छा ही सारी विपदा है, इच्छाओं का ही साधारण नाम संज्ञा है। संज्ञा ज्वर से पीड़ित संसारी प्राणी विह्वल और दीन हो रहे हैं। इच्छा से जीव की कोई सिद्धि नहीं बल्कि अनर्थ ही अनर्थ है। जैसा-२ पुण्य का उदय विशिष्ट होता है, इच्छाएँ भी वैसे वैसे बढ़ती जाती हैं। दीन भिखारी कहाँ तक की बात सोचेगा एक दो दिन का खाना मिल जाय, बस यहाँ तक बुद्धि जायेगी, किन्तु पुण्य उदय वालों के वैभव वालों के कहाँ तक अभिलाषा रहेगी ? इसका तो कहीं टिकाव भी नहीं हो पाता। तब यही तो बात ठहरी कि जैसा-२ पुण्य का उदय विशिष्ट होता है इच्छायें भी बढ़ती जाती हैं किन्तु जिसे अपने आपकी दया हो उसे चाहिये की पुण्य की चाह ही न करे, चाह कुछ भी न करे शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप की दृष्टि रखे और इस प्रतीति के रहते हुए जो शुभ चेष्टा बने कर ले, विधि विपाक वश कुछ इन्द्रिय विषय भी आये तो भी प्रतीति से ना डिगे। देखो पुण्य कर्म आदेय नहीं है। पुण्य भी करेगा क्या ? यह शान्ति का हेतु नहीं है लौकिक सुख की दृष्टि से देखो तो खासा सुख तो तभी कहलाये कि जब इच्छा करें तब ही पदार्थ हाजिर हो। किन्तु यह वस्तु स्वरूप के विरुद्ध है अतः असंभव है। इच्छा करते ही उसी समय इष्ट मिल जाय ऐसा कोई पुण्य ही नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गये समय का शोक करने की अपेक्षा रहे समय का सदुपयोग करना श्रेयस्कर है

जैसे किसी पुरुष के पास एक लाख याने १०० हजार रूपया है उसको एक हजार रूपये का नुकसान हो गया। अब वह यदि एक हजार रू० का शोक करे और ९९ हजार जो उसके पास है उसका ख्याल न करे, उसकी मौज न माने तो उसको क्या कहोगे ? मूढ़। इसी प्रकार अपनी आयु का विचार करो। कितनी उमर गुजर गई, जवानी व्यतीत हो गई। क्या क्या मन वचन काय की चेष्टा की। क्या क्या कषाय, मायाचार आदि किये जिनका ध्यान होने पर शोक का प्रवाह चल उठेगा। किन्तु विवेक करके सोचो—गये का शोक करने से क्या लाभ है। शोक और विषाद के परिणाम से कायरता, अधीरता व दीनता ही बढ़ती है। गुजरे समय का सोच करते हो तो देखो अब तक अनन्त काल व्यतीत हो गया। है ना शर्म की बात, कहाँ तो सिद्ध प्रभु के समान शुद्ध सहज ज्ञानानन्दस्वरूप तुम्हारा और कहाँ कीड़े, मकोड़े, पशु, पक्षी, नरकीटों जैसी दुर्दशा का भोगना। पर शर्म से गड़ मत जाओ, उत्साह का अवकाश रखो, देखो सिद्ध प्रभु भी जो अब अथवा अब से पहिले जो हुए हैं उन्होंने भी अनन्तकाल संसार दुर्दशाओं में व्यतीत किये जब अपना होश सम्हाला, विवेक किया, आत्मज्ञान पाया तब अनात्मतत्त्व को छोड़कर सहज ज्ञानतत्त्व में अपना उपयोग किया। इस निज ज्ञानोपयोंग के प्रसाद से वे शुद्ध बुद्ध निरंजन परमेश्वर हुए। उन्होंने गये समय का शोक करने की अपेक्षा रहे समय का सदुपयोग किया। देखो इस जीवन के रहे सहे अल्प समय का सदुपयोग कर लोगे तो भविष्य का अनन्तकाल सहज सत्य आनन्द के अनुभवन में व्यतीत करते रहोगे। अब पर तत्त्वों को असार जान कर उनसे उपेक्षा करके निज सहज स्वरूप में सहज ज्ञानानन्दभाव में अपना उपयोग बनाये रहो। गये समय का शोक करने की अपेक्षा रहे समय का सदुपयोग करना ही श्रेयस्कर है।

ज्ञान ही तेरा सर्वस्व है, इसकी उपासना से ही तेरा कल्याण होगा

अन्तर में निरख ज्ञान ही तेरी आत्मा है, ज्ञान ही परमात्मा है, ज्ञान ही देव है, ज्ञान ही शास्त्र है, ज्ञान ही गुरु है, ज्ञान ही पुरुषार्थ है, ज्ञान ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्लेशनाशक विधान है। इस विशुद्ध ज्ञान की अनुभूति के ही नाम आज नाना देवी देवताओं के नाम से रूढ़ हो गये। ज्ञान की अनुभूति को दुर्गा, काली, भद्रकाली, चण्डी, चन्द्रघण्टा आदि कहते हैं—दुःकेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा, जो कठिनाई से, क्लेश से, तपश्चरण से दुर्लभता से प्राप्त हो समझ में आये सो दुर्गा। ऐसी कौन ?- ज्ञानानुभूति। कलयति भक्षयति रागादिक शत्रून् सा काली—जो रागादि शत्रुओं को नष्ट करे खा ले, पुलीन करे सो काली, ऐसी कौन ? ज्ञानानुभूति ! भद्रे कलमति प्रेरयति भयकान इति भद्रकाली—जो भव्य जीवों को कल्याण में प्रेरित करे सो भद्रकाली ऐसी कौन ? ज्ञानानुभूति। चण्डयति खण्डयति विरुद्ध भावान सा चण्डी—जो रागादि विरुद्धभावों को खण्डित कर दे नष्ट कर दे सो चण्डी, ऐसी कौन ? ज्ञानानुभूति। अमृतस्रावणे चन्द्र घंटपति सा चन्द्रघण्टा—अमृत बरसाने में जो चन्द्र को मात करे सो चन्द्रघण्टा। ऐसी कौन ? ज्ञानानुभूति। देख विपदाओं से बचाने वाला ज्ञान ही है, शाश्वत आत्मीय आनन्द में मग्न कराने वाला ज्ञान ही है। और यह भी देख ज्ञान ही तू है तू ज्ञान ही है, ऐसा ज्ञानमय स्वयं तू इस स्वयं की उपासना नहीं कर रहा था, इससे ये जन्म मरण के संकट सहने पड़ रहे हैं। इस सहज ज्ञान भाव को छोड़कर अन्यत्र तुम कहीं जाओ, अशान्ति ही अशान्ति पाओगे जैसी कि अशान्ति अब तक भोगी है। और प्रियतम ! कल्याणमय ही तो तेरा स्वरूप है, अपने सुगम स्वाधीन सत्य सहज पवित्र आनन्द का लाभ अपने स्वरूप की दृष्टि से प्राप्त हो सकता है, इसमें भी प्रमाद किया जा रहा है तो इस मूढ़ता का फल क्लेश ही क्लेश है। अरे मेरे स्वयं ! अपने आप पर दया कर ज्ञान ही तेरा सर्वस्व है इसकी उपासना से ही तेरा कल्याण होगा।

अविकार निज चित्स्वरूप को तो देख, इसमें क्लेश का नाम भी नहीं है

प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है, अपने ही स्वरूप से सत् है, अपने ही स्वरूप में उसकी सहज अवस्था है, अपनी सहज अवस्था अपने स्वरूप लाभ के लिये है ! जैसे कि प्रत्येक परमाणु स्वयं सत् है वह किसी दूसरे पदार्थ से अपना सत्त्व उधार नहीं लेता है। प्रत्येक परमाणु अपने स्वरूप से ही सत् है, वह किसी अन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमाणु व अन्य किसी वस्तु शक्ति, परिणति, प्रदेशों को लेकर सत् नहीं हुआ है। प्रत्येक परमाणु की अपने आप याने किसी उपाधि सम्बन्ध के बिना सहज जो कुछ वर्तना होती है वह सहज परिणति उसके ही स्वरूप में होती है। प्रत्येक परमाणु की सहज अवस्था उसका अपना स्वरूप बनाये रहने के लिये है यह परमाणु जब उपाधि संसर्ग में है तब भी कुछ हद तक विकृत परिणमन करके भी इस मर्म चौकड़ी को नहीं तजता है इस मर्म चौकड़ी को अपने में भी घटित कीजिये—विश्व में अनन्तानन्त आत्मा हैं। उनमें से एक मैं हूँ मैं स्वयं सत् हूँ, मैं किसी दूसरे आत्मा से व अन्य भी किसी अचेतन पदार्थ से अपना सत्त्व उधार लेकर सत् नहीं हुआ हूँ। मैं अपने ही स्वरूप से सत् हूँ, मैं किसी अन्य आत्मा व अन्य किसी वस्तु की शक्ति, परिणति, प्रदेशों को लेकर सत् नहीं हुआ हूँ। मेरी अपने आप याने किसी उपाधि सम्बन्ध के बिना सहज जो कुछ वर्तना होती है वह सहज परिणति मेरे स्वरूप में ही होती है। मेरी सहज अवस्था मेरा अपना स्वरूप बनाये रहने के लिये है। यह मैं उपाधिसंसर्ग में भी, भवसम्बन्ध में भी कुछ हद तक विकृत परिणमन करके भी इस मर्म चौकड़ी को नहीं तजता हूँ। इस प्रकार जाने गये निजस्वरूप में देखो जो कि अपने विशुद्ध सत्त्व से है, देखो इसके स्वरूप में विकार नहीं है, यह तो मात्र ज्ञानस्वरूप है। कष्ट का तो यहाँ कुछ काम ही नहीं है, तो आनन्दमय ही है। व्यर्थ भ्रम करके क्यों कष्ट सह रहा है। अविकार निज चित्स्वरूप को तो देख, इसमें क्लेश का नाम भी नहीं है।

अपने स्वरूप से विपरीत विकल्प न कर, विपरीत विकल्पों में क्लेश है

अपना स्वरूप है चैतन्य, जिसकी शुद्ध वृत्ति है जानन, देखन, केवल जाननहार रहना। इसमें विशुद्ध आनन्द का साम्राज्य है। यह मर्म प्रयोग करके ही जाना जा सकता है। पर को पर जान कर, अहित जान कर समस्त पर की उपेक्षा करके क्षण एक जो सहज सिद्धविश्राम होता है, उस विश्राम में आत्मीय आनन्द साम्राज्य की झाँकी होती है। इस झाँकी के पाने पर दृढ़ प्रतीति होती है कि जाननहार रहने में ही अपना भला है। इस स्वरूम व्यक्ति से विपरीत चले तो वहाँ क्लेश होता है देखा—अत्यन्त भिन्न चेतन व अचेतन पदार्थों से अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या वास्ता है, जब सत्त्व स्वरूप का किला अभेद्य है, तब एक का दूसरे से क्या सम्बन्ध रहा। ऐसे अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों के प्रति यह विकल्प करना कि ये मेरे हैं, इनसे मेरा जीवन है, हित है, रक्षण है, अस्तित्व है, यह विकल्प इसका महा कलंक नहीं तो और क्या हैं और भी देखते जाओ—अत्यन्त भिन्न पदार्थों में स्नेह का विकल्प करना यह मूर्खता नहीं तो और क्या है, क्योंकि पर पदार्थ तो तेरे लिये रूखे हैं, उनका तेरी ओर रुझान नहीं, अचेतन तो अचेतन ही है, उनका तो रुझान ही क्या हो सकता है, जो चेतन हैं उनका भी तेरी ओर रुझान नहीं, वे सब अपनी अपनी कषाय से अपनी अपनी चेष्टा करते हैं, जिसमें वे अपनी शान्ति समझते हैं सो वे अपना कार्य करते हैं, तेरा कुछ नहीं करते। ऐसे असम्बद्ध भिन्न पर पदार्थों में स्नेह का विकल्प करना क्या मूर्खता नहीं है। इसी प्रकार अन्य जीवों से विरोध का भाव रखना भी मूर्खता है, क्योंकि अन्य कोई भी जीव मेरा विरोधक नहीं है। स्वरूप दुर्ग अभेद्य है मेरे स्वरूप में किसी भी जीव का कुछ दखल नहीं और न कोई जीव मुझमें दखल करना चाहता है, जिन्हें हम विरोधी समझते वे विरोध नहीं करते, किन्तु अपने विकल्प के अनुसार शान्ति पाने की चेष्टा करते हैं। हम भ्रम करें, राग करें, विरोध करें यानि उन का विकल्प करें ये सब मेरे स्वरूप से विपरीत परिणमन हैं ये सब क्लेश रूप हैं। अपने स्वरूप से विपरीत विकल्प न कर, विपरीत विकल्पों में क्लेश ही क्लेश है।

पर का लगाव ही विपदा है

आत्मा तो स्वयं स्वतः सहज आनन्दमय है। स्वरूप निरखो—यह मैं आत्मा तो निरापद हूँ। मेरा स्वरूप, मेरा सत्त्व, मेरा वैभव, मेरा सर्वस्व ज्ञान है। ज्ञान अमूर्त भाव है, ज्ञान में अन्य तत्त्व का प्रवेश ही नहीं है, ज्ञान में आपदा कहाँ से आ सकती है। ज्ञान तो अमृत तत्त्व है, जिसका उपयोग कण्ठ से पान करने पर ज्ञानामृत पायी अमर हो जाता है। ज्ञान का लगाव ही वास्तविक सम्पदा है। मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसा निरन्तर अनुभव किये जाने पर जाननरूप से परिणमन होता है वहाँ कोई विकल्प तरंग ही नहीं उठता, आपदा कहाँ से आवे। दुनियावी लोग समझते हैं कि लोगों ने हमारा नाम गा दिया तो हमारा जीवन सफल है। यह कितना व्यर्थ और विकट पर का लगाव है। ये लोग मायारूप हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म प्रेरित हैं, कष्ट पूरित हैं, विनश्वर हैं, इनसे कुछ चाहना यह है, पहिली मूर्खता। वर्तमान यह मैं नर कीट भी मायारूप हूँ, कर्म प्रेरित हूँ, विनश्वर हूँ इसके लिये कुछ चाहना यह दूसरी मूर्खता है। नाम किसी क्रम से रखे हुए वर्णों का एक गुच्छ है, तुच्छ है, न कुछ है इसकी चाह करना तीसरी मूर्खता है। गाया जाना भी क्या है ? कषाय वान पुरुषों की गर्ज के कारण उन जीवों में उठे हुए विकल्प के कारण हुए योग की वजह से देहांगों में चली वायु से कम्पित जिह्वादिक स्थानों के निमित्त से परिणत हुए भाषा वर्गणा जाति के पुद्‌गलों का परिणमन है वह भी मायारूप है, विनश्वर है ऐसा गाया जाना चाहना चौथी मूर्खता है। जिसमें मूर्खतायें ही मूर्खतायें बस रही हैं, विपदायें ही विपदायें हैं, हित का लव लेश भी नहीं है उस परके लगाव को क्यों उपयोग में बसाया जा रहा है। हे आत्मन् ! अपने पर करुणा कर, आनन्द स्वरूप निज तत्त्व में लगाव करके विपदाओं से मुक्त हो ले। देख, पर का लगाव ही विपदा है।

शान्ति का मार्ग स्पष्ट है और उस पर चलना भी सुगम है

प्रियतम ! क्यों दुःख भोग रहे हो, यह तेरी बात नहीं, इसमें तेरी शान नहीं। अपने शुद्ध याने केवल स्वरूप को तो देख कैसा पावन आनन्दमय चित्प्रकाश है। हैरान होने की जरूरत ही नहीं, तुझ पर कोई आपत्ति ही नहीं, देख तू भावस्वरूप है, ज्ञायकस्वभाव है, होता जाने दो अपना निजी काम, विशुद्ध जानन चलता चले जाने दो, निज वृत्ति में कष्ट का नाम ही नहीं है। तू एक अखण्ड चैतन्य प्रकाश है, तेरा यही तू है, तू चेतने के अतिरिक्त और कुछ करता ही नहीं है, प्रतिभासने के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकता है, तू प्रतिभासता रहता है, बिगड़ा भी तू तो प्रतिभासन का रूप बिगड़ कर विकल्प रूप हो गया, प्रतिभासन की जाति वहाँ भी नहीं छूटी, तू चेतने को ही भोगता रहता है, जो तेरा परिणमन होता है उसी को ही भोगता रहता है, अन्य वस्तु से तो सम्बन्ध भी नहीं होता, अन्य को भोगेगा क्या ? तू तू ही है, इतना ही है, विपदाओं से दूर है, अपने में विश्राम कर, व्यर्थ परिश्रम मत कर, अशान्त रहना तेरा स्वरूप ही नहीं है, उपाधि के सम्बन्धों से क्षोभ हो जाता है। उपाधि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेरी कुछ है ही नहीं, प्रत्येक पदार्थ स्वयं केवल केवल है। अपने कैवल्य को भी देख तू शान्त है, गम्भीर है, नीरंग है, निस्तरंग है। शान्ति मार्ग तो बिल्कुल स्पष्ट है, जैसा है वैसा अपने को मान ले, कोई विकल्प विकार ही न उठे, फिर क्या विपदा है। निज स्वरूप में सम्पदा ही सम्पदा है, वास्तविक सम्पदा है सर्व समृद्धि है। और यह समृद्धि केवल दृष्टि मात्र से दृष्टि की दृढ़ता से प्राप्त हो जाती है सो प्राप्ति भी अति सुगम और स्वाधीन है। आत्मन् ! अब अशान्ति को दूर कर, शान्ति का मार्ग अपना। देख शान्ति का मार्ग स्पष्ट है और उस पर चलना भी सुगम है।

विकार व विकारों का लगाव छोड़ना ही पड़ेगा, उसे अभी से क्यों नहीं छोड़ देते।

अपने में जो अपने आप अपना स्वरूप है वह कष्ट के लिये कभी नहीं हो सकता। जो भाव मेरे निज स्वभावका नहीं, उपाधि के संसर्ग में आया है, कर्मों के उदय का निमित्त पाकर बना है वह सब विकार है। विकार बिगाड़ के लिये ही होता है वह कष्ट का ही हेतु है। आत्मा की भलाई निर्विकार होने में है। सत्य, आनन्द, निर्भयता, निराकुलता, आत्मसमृद्धि निर्विकार होने में है। यदि सत्य आनन्द चाहते हो, सदा के लिये समस्त संकटों से छूट जाना चाहते हो तो विकार और विकारों के लगाव का परित्याग करना ही होगा। देख, सोच, विचार—विकारों में क्या लाभ है ? विषय कषाय का भाव करके क्या लाभ पा लेता है। स्पर्शन इन्द्रिय के विषय की अभिलाषा करके, काम मैथुन विषयक कल्पना करके या भोग भोग करके आत्मा की क्या उन्नति कर ली जाती है, उल्टी अवनति और विडम्बना ही बना ली जाती है, जीवन भार बन जाता है। रसना इन्द्रिय के विषय में लग कर व घ्राण चक्षु श्रोत्र के विषय में लगकर आत्मा में क्या समृद्धि जग जाती है, बल्कि दीनता, कायरता, पराधीनता की वेदना ही भोगना पड़ती है। इस असार संसार में माया रूप मानव पर्यायों से अपरिचित अमूर्त अपने आत्मा की प्रशंसा चाहना कितना बड़ा अज्ञान व धोखा बाजी का चक्कर है। गुस्सा, घमण्ड, छल, कपट, धनवैभव का लालच भला इन विकारों से भी आत्मा में क्या महिमा जगती है, बल्कि पतन ही पतन है। विकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो अपवित्रतायें हैं देख जब भी तुम्हारा हित होगा, विकार व विकारों का लगाव छोड़ना ही पड़ेगा, उसे अभी से क्यों नहीं छोड़ देते।

इच्छा से जब कुछ होता ही नहीं, तो इच्छा करके क्यों कष्ट उठाते हो

इच्छाओं के मुख्य विभाग ८ हैं— १. इष्ट शीतोष्णादिक स्पर्श भोगने की इच्छा, २. मैथुन इच्छा, ३. इष्ट रस स्वादने की इच्छा, ४. इष्ट गन्ध लेने की इच्छा, ५. सुहावना रूप देखने की इच्छा, ६. रागभरा, सुरीला शब्द सुनने की इच्छा, ७. लोकेषणा याने जन समूह में नामवरी पाने की इच्छा, ८. धन वैभव संग्रह करने की इच्छा। १—इष्ट शीत उष्ण पदार्थ मिलें और अनिष्ट शीत उष्ण से भेंट न हो, यह सब यों कठिन है कि ये वातावरण एक तो समयाधीन हैं, दूसरे कर्माधीन, तीसरे क्वचित् मिल जाने पर भी इनका वियोग व विनाश हो जाता है, चौथी बात—मिलने पर भी शान्ति नहीं होती है, पाँचवी बात—इच्छा के समय तो इष्ट मिलता ही नहीं है। इच्छा से कष्ट ही कष्ट है, सिद्धि कुछ भी नहीं। २—इष्ट काम विषय स्त्री पुरुष मिलें यह सब यों कठिन है कि यह सब उदयाधीन हैं, मिल भी जायें तो यह प्रसंग प्रारम्भ में वर्तमान में भविष्य में सर्व काल क्लेश का ही कारण है और इष्ट इनका वियोग व विनाश अवश्यंभावी है ये चेतन प्राणी अपनी अपनी इच्छा व कषाय को लिये हुए हैं सो ये किसी का ख्याल करें या अनुकूल बन जायँ यह तो असम्भव जैसा है। इच्छा से कष्ट ही कष्ट है, सिद्धि कुछ नहीं। ३—इष्ट मधुरादिक रस चखने की इच्छा के प्रसंग में मिलते रहें यह भी कठिन है उदयाधीन है, उनका भोगना देह सामर्थ्य पर भी निर्भर है, उनके भोगने का परिणाम क्लेशप्रद है, आत्मस्वरूप की दृष्टि से हटाने वाला है, इच्छा से कुछ सिद्धि नहीं। ४—इष्ट गंध के भोगने का विकल्प भी बेकार है। ५—सुहावने रूप के देखने की लालसा भी मूढ़ता है, बाह्य अचेतन पुद्‌गलों का रूप देख लिया इसमें मिला क्या ? उल्टा बिगड़ा ही है सब कुछ, विकल्प मचाया, आकुलता की, अपना कुछ है नहीं सो वियोग होता ही है इष्ट विषय का, सो क्लेश सहा, बुद्धि खोई ! इच्छा से कुछ सिद्धि नहीं। ६—राग भरे सुरीले शब्दों के सुनने की भी क्या मौज ? आगा पीछा सोचो इसमें कुछ सिद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं। ७—लोकेषणा महामूढ़ता है, जन समुदाय मायारूप है कर्मकलंकित है, उनसे अपनी १ १/२ दिन की नामवरी चाहना जो कि स्वार्थ वश गायी जाती है, क्या सार है। ८—धन वैभव पौद्गलिक स्कन्ध हैं उनके संचय का आत्मा के लिये क्या अर्थ ? सब अनर्थ हैं भिन्न हैं जड़ की लालसा रखना ही विपदा है। निज सहज ज्ञानानन्द स्वभाव को भूल कर पर पदार्थ की इच्छा करना विडम्बना है। इच्छा से ज्ञान आनन्द दोनों का घात है। इच्छा से कुछ होता नहीं, न कल्याण है। इच्छा से जब कुछ होता नहीं, तो इच्छा करके क्यों कष्ट उठाते हो।

हे निर्विकार विशुद्ध व्यक्त चित्स्वभाव ! तुम ही सत्य हो, यही सत्यता मेरे प्रकट होओ

विशुद्ध अव्यावाध परिपूर्ण आनन्द इसी परिणमन में है सो हे प्रभो ! यह स्वभाव तुम्हारे व्यक्त विशुद्ध प्रकट हुआ है अतः आप कृतार्थ हो। हे प्रभो ! तुम ही मेरे हृदय में समाये रहो इसमें मेरा उद्धार है ! हे नाथ मैं तुम्हें, तुम्हारे स्मरण को पल भर भी नहीं छोड़ना चाहता, आपकी उपासना के प्रसाद से मुझमें यह बल प्रकट हो कि आपकी उपासना क्षण भर भी न छूटे और यह उपासना अभेद उपासना बनकर, परमार्थ उपासना हो जाये। प्रभो ! तुम्हारा ही जैसा मेरा स्वभाव है, मैं आपकी शरण पाने का पात्र हूँ। मैं अब तक पापी रह कर कषायवश होकर दुष्कर्मरत रहा। इस पामर को नाथ ! तुम्हारा स्मरण ही शरण हो। आपको छोड़कर अन्य कहाँ जाऊँ, कहीं ठौर नहीं है। किसी भी बाह्य तत्त्व के लगाव में मेरा हित नहीं है, सारा अहित है। हे समरसदेव ! यद्यपि मेरी स्वयं की विशुद्धता पर पात्रता पर आपका शरण पाना निर्भर है, किन्तु वह पात्रता तो कुछ कुछ मुझमें आ चुकी है, उसकी उत्कृष्टता तो आपका परिपूर्ण शरण मिलने से होगी। हे नाथ तुम ही मेरे परमपिता हो, तुम्हारी दृष्टि करने से मेरी रक्षा हो जाती है। नाथ ! तुम ही मेरे बान्धव हो जो मेरे लिये निरपेक्ष शरण्य बन गये हो ! नाथ ! तुम्हीं मेरे सच्चे साहब हो जिनकी शरण में रहने से मेरा पोषण होता है। नाथ ! आप ही मेरे कृपालु प्रभु हो। क्योंकि तुम्हारे स्मरण मात्र से सकल विकल संकट टल जाते हैं। मैं ज्ञानमात्र ज्ञानमात्र ही अपने को प्रतीति में लूँ यह तुम्हारे दर्शन का महान् फल है जिससे बढ़ कर अन्य कुछ चाहने योग्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही नहीं है। जो यथार्थ है, स्वयं है, केवल है, वह ही उपलब्ध हो जाय यही सर्वोत्कृष्ट लाभ है। हे निर्विकार विशुद्ध व्यक्त चित्स्वभाव तुम ही सत्य हो, यही सत्यता मेरे प्रकट होओ।

अपने लिये क्या किया, इसका भी कुछ विचार कर लिया करो

अच्छा व्यापार किया, धन संचय किया, उससे आपको क्या मुनाफा पहुँचा। शायद यह कहो कि बाल बच्चे सुख से खायेंगे, रहेंगे, मौज करेंगे, तो सुनो, इसमें तुम मूल में अज्ञान का ही महापाप लाद रहे हो कि इन अनन्तानन्त जीवों मैं से यह छाँट कर डाली कि ये २—४ प्राणी मेरे हैं और फिर मरण के बाद तुम कहाँ पैदा होओगे, इनसे तुम्हारा क्या वास्ता रहेगा। धनसंचय के विकल्प कलंकों से कलुषित होकर क्या मुनाफा पाया—पाप बांधा, जन्म मरण की परम्परा बढ़ाई, संकटों के ठेकेदार बन गये यह मुनाफा मिला। देश में समाज में नामवरी पैदा की, इससे आपको क्या मुनाफा मिला ? नाम भी माया है, नामवरी का विकल्प मिथ्या भाव है। और फिर, नामवरी भी करता कौन है ? जिसको कुछ स्वार्थसाधन नजर आता है वह अपना विकल्पित दुर्निभावी काम निकालने के लिये कुछ बोल देता है उससे तुम्हारे आत्मा को क्या मिलता तेरा तो कुछ नाम ही नहीं, तू तो अमूर्त चैतन्यस्वरूप है। नामवरी के विकल्प में यह मुनाफा कह डालो कि लाभ के लगाव में निर्नाम निज अन्तर्बाह्य को भूले रहे और दुर्गतियों में जन्म लेते रहें। पाँच इन्द्रिय के विषयों साधनों में, सेवा में लगने में कैसी कैसी प्रवृत्तियाँ कर डालीं, कितनी तन मन वचन की विडम्बनायें की, उनमें अपने चैतन्य प्राण का घात ही तो किया, अपने हित में क्या किया। अपना हित तो विशुद्ध ज्ञाता दृष्टा रहने में है, अविकार निज ज्ञानस्वभाव में ज्ञानोपयोग किया जाने पर जो समता परिणाम के कारण अपूर्व आनन्द उमड़ता है उसके अनुभव में ही कहा जा सकता है कि हमने अपने लिये कुछ किया, कुछ क्या, सर्वस्व किया। इस सहजज्ञानानुभव के विपरीत कुछ भी विकल्प करो, उनमें अपने हित में कुछ नहीं किया, अहित ही किया। जो कुछ भी तुम चेष्टा करते हो उसमें अपने लिये क्या किया, इसका भी कुछ विचार कर लिया करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभुमुद्रा में अपना कर्तव्य विदित हो जाता है शान्ति चाहते हो तो यों अपने में समा जाओ

यत्र तत्र विलख भटक कर सुयोगवश ज्यों ही प्रभुमुद्रा दिखने को मिल जाती है, चित्त एकदम बदल जाता है, सार है तो यह है, आनन्द का तो यह आत्मा निधान है ही, आनन्द के विरुद्ध जो विडम्बनायें की जा रही हैं, पर दृष्टियाँ की जा रही हैं उन कष्टों को, उन परिश्रमों को न किया जाय, तो यह अपूर्व आनन्द दशा तो इसके स्वभाव से ही है। हे आत्मन् ! तू विकल्पों से ही तो भटकता रहता है, विकल्प करना ही तो भटकना है। चारों ओर के अनाप सनाप विकल्प मचाकर तू अपने को खदबदा देता है और हाथ कुछ आता नहीं तेरे। इस बेकार अनर्थकारी परिश्रम को करके क्यों दुःखी हो रहा है, शान्ति चाहता है तो देख, सहज ही यों अपने आप में समा जाओ अर्थात् ज्ञान को ज्ञानस्वभाव में जमा कर निस्तरंग हो जाओ। तेरी सब कुछ तेरे में सम्पन्नता है, तू तो सर्व पदार्थों में महान् है तेरी तो अलौकिक अद्भुत अनन्त शक्ति है, तू तो अनन्त शाश्वत आनन्द स्वरूप है, बस यहीं अपने में खुद को निरख, यहीं अपने में ठहर, यहीं अपने में समा, यहीं विशुद्ध आनन्द का अनुभव कर। अहा, दिगम्बर, निरीह, शान्त, गम्भीर पावन प्रभुमुद्रा को निरख कर ही ज्ञानी सर्व सम्पदा प्राप्त कर लेता है। कैसा अलौकिक कृपालु है यह परमात्मा, यह खुद में जरा भी अशान्त नहीं, रंच भी विकल्प नहीं करता, इसके राग द्वेष का नाम भी नहीं है, यह अपने आप में निष्पाप समा कर अपने सर्व गुणों से समृद्ध हो रहा है, रंच भी बाहर दृष्टि नहीं चल रही है, इसी कारण हे नाथ !.आप बिना कृपाभाव किये ही सहज अलौकिक परम कृपालु हो। हे प्रियतम आत्मन् यदि शान्ति का मार्ग एक ही झलक में सारा समझना है और उस शुद्ध अविकल शान्ति मार्ग पर चलने की प्रेरणा पाना है तो आवो, प्रभुमुद्रा के दर्शन करो प्रभुमुद्रा में अपना कर्तव्य विदित हो जाता है कि शान्ति चाहते हो तो यों अपने में समा जाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुलझने के समय भी यदि उलझन बढ़ाई तो उसका परिणाम बरबादी ही है ?

देखो– मनुष्य पर्याय तो संसार संकटों से छूटने का उपाय बना लेने वाला समय है। कितना श्रेष्ठ मन मिला है और साथ ही ज्ञानावरण का क्षयोपशम। वस्तु स्वरूप का सर्व प्रकार से तत्त्व विचार करने की क्षमता आई है और तत्त्वविचार कर भी लिया जाता है। कितना श्रेष्ठ शासन मिला है कि जहाँ युक्ति सिद्ध, अनुभूति सिद्ध जीव, कर्म, नोकर्म, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष व सहज स्वरूप का वर्णन किया गया है, जहाँ अहिंसा, शान्ति, समता, प्रायः विश्राम का यथार्थ दिग्दर्शन है जिससे सहज सत्य आत्मीय आनन्द का सम्बन्ध है। कितना श्रेष्ठ साधर्मिजन मिलन प्राप्त हुआ है कि जहाँ आत्मोद्धार की प्रेरणा, निर्दुःख साधन की सुविधायें, स्थितिकरण और वात्सल्य की वृत्तियाँ स्वपर हितार्थ मिली हैं। कितना श्रेष्ठ वातावरण पाया कि जहाँ निज अन्तस्तत्त्व की साधना के लिये पूरा मौका मिला हुआ। ऐसे परम साधनों से सम्पन्न मनुष्य पर्याय के समय भी जो कि संसार संकटों से जन्म मरण के क्लेशों के उलझनों से सुलझने का समय है, उलझन बढ़ाते रहे तो कभी संसार चक्र के उलझनों से छुट ही नहीं सकते। देखो–इन्द्रिय विषयों की रुचि रखी, जो कि बिल्कुल बेकार बात है, तो उसका परिणाम याने फल बरबादी ही है। समय पर्वत पतित नदी के समान वेग से बह रहा है जो मनुष्यायु पाई वह गुजरती जा रही है, गुजरी हुई आयु किसी भी प्रकार वापिस नहीं होती ! मृत्यु के निकट प्रतिक्षण चले जा रहे हैं। इस महान मनुष्य जन्म को, इस दुर्लभ ज्ञान प्रसंग को यों ही खो दिया तो हे आत्मन् ! यही सभझ कि तूने अपने आप ही अपनी उद्दण्डता करके अपना विनाश कर लिया है। यह सारा समागम तो सुलझने का साधन बन सकता है सुलझने के समय भी अगर उलझन बढ़ाई तो उसका परिणाम बरबादी ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जगत में बाहर कहीं भी सार नहीं है, निष्परिग्रह होओ, आँख मींचो, आत्मा को ध्याओ

बताओ बाहर क्या सार है ? धन संचय करते जाओ चाहे गृह संपदा बढ़ाने के लिये करते जाओ, चाहे लोक संस्थाओं के लिये करते जाओ, यह बताओ कि लिप्सा के फल में क्या पाओगे ? सारी कल्पित संपदा यहीं रहेगी। उससे तुम्हारा क्या वास्ता। तुम तो ज्ञान मय सद्भूत पदार्थ हो, तुम्हारा तो मात्र तुम से ही ताल्लुक है। दुःख होगा तो तुम्हारी कल्पना परिणति से, आत्मीय परमार्थ आनन्द होगा तो तुम्हारी विशुद्ध ज्ञान वर्तना से। फिर बताओ तुम्हारा सब कुछ तुम ही पर निर्भर है ना। मेरे स्वयं प्रियतम ! दुष्ट विषय कल्पनाओं में क्यों लगाव लगा रहे हो। तू स्वयं शीलरूप है, शिष्ट है, आनन्द स्वरूप है। देख ! भाव से ही तो तेरा सब कुछ है, भाव के द्वारा ही तो तेरा सब कुछ है, सब कुछ वह क्या है ? भाव ही भाव तो है, वह सब कुछ भाव भाव होने के लिये ही तो है, भाव सिवाय तू और कुछ नहीं, भाव ही तक तेरी करतूत है, भाव ही का तेरे अनुभवन है, ऐसे निज भाव से ही तेरा सब कुछ है तो ऐसा ही प्रतीति कर और अपने को अब मात्र निरख। तेरा जगत में बाहर कहीं भी क्या सार है ? कुछ नहीं। किसी भी पर जीव से लगाव रखने से तुम्हें क्या मिलेगा ? अहो कितना बड़ा भारी कष्ट है—खुद तो आनन्द धाम है, किन्तु इसके निकट रहने को रुचि नहीं होती है। चर्चा वार्ता भी तो करता नहीं तू अपने आनन्दधाम परमात्म तत्त्व की, भीख माँगता फिरता है कुटुम्ब से भिन्न से जन समूह से। लोगों से यह चाहना कि ये लोग मेरे को अच्छा कर दें, यह तो इतनी गन्दी भीख है, जितनी गन्दी भीख और कुछ नहीं हो सकती। इससे तो अच्छी रोटी माँगने वाले भिखारियों की भीख है। न ही पर चेतन के लगाव में सार है और न किसी अचेतन के लगाव में सार है। जगत में बाहर कहीं भी सार नहीं है, निष्परिग्रह होओ, आँख मींचो, आत्मा को ध्याओ।

अविकार चित्स्वभाव ! प्रसन्न होओ

आनन्द धाम परमात्मतत्त्वस्वरूप निज अन्तस्तत्त्व की प्रसन्नता के बिना एकेन्द्रियादिक जातियों में जन्म ले लेकर क्लेश का बोझ ढोना पड़ा है। जैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भार अलग तत्त्व है पर खुद की कायरता के कारण दूसरों का भार ढोना पड़ता है ऐसे ही क्लेश भाव अलग तत्त्व है, आत्मा का स्वरूप नहीं, पर खुद की अज्ञानता के कारण यह नैमित्तिक बोझ ढोना पड़ा है। इस सब विडम्बना का कारण है अन्तस्तत्त्व की अप्रसन्नता, प्रसन्नता का अर्थ है निर्मलता। अन्तस्तत्त्व है ज्ञानमय। ज्ञानमय यह अन्तस्तत्त्व, ज्ञानमात्र यह आत्मा केवल स्वरूप का विलास करें, इसमें अन्य विलास न आये तो यही है निर्मलता। ज्ञान का विलास मात्र जानन केवल ज्ञाता रहे यह ज्ञानमात्र आत्मा, तो यही है आत्मा की प्रसन्नता। ऐसी प्रसन्नता अन्य का सहारा तके बिना ही होती है ऐसी प्रसन्नता केवल अपने आप की वर्तना पर निर्भर है। यह स्वयं केवल है अविकार चित्स्वभाव ! इस कारण परमात्मतत्त्व की उपासना ही इस आत्मप्रभु को प्रसन्न करने का उपाय है। निजअन्तस्तत्त्व की दृष्टि हुए बिना यह आत्मा नाना पर्यायों में क्लेश योग पा रहा, यह तो चेतना की मुरझाहट है, कभी यह छिनश्वर विषय विष का पान कर राजी होता रहा यह भी चेतना की मुरझाहट है। मुरझाए हुए पुष्प में सुन्दरता क्या, मुरझाई हुई चेतना में सुन्दरता क्या ? यह मैं अन्तस्तत्त्व अनेक अवस्थाओं में रहकर भी शाश्वत एक निजस्वभावरूप हूँ। केवल चैतन्यस्वभाव, सहज ज्ञायक भाव की प्रतीति, रुचि अनुभूति में ही पारमार्थिक सुन्दरता है। हे परान्तर सहज परमपरिणामिक अविकार चित्स्वभाव ! अब मुझे (उपयोग को) अपना शरण दो, भवविपत्तियों से सताये हुए इस मुक्त को अपने में गुप्त कर दो, मेरी प्रसन्नता का निशान भी बाहर न रहे ताकि निर्भय अबाधित हो जाऊँ। हे निज प्रभो ! तुमसे ही मेरी उत्पत्ति, तुम रूप ही मेरी वर्तना फिर भी तुमसे मेरी मुलाकात न हो, यह अंधेर मत मचाओ, अविकार चित्स्वभाव ! प्रसन्न होओ।

मेरे सब प्रोग्राम खत्म, अब तो अरहंत होने का प्रोग्राम है

अनादि से अब तक प्रत्येक भवों में आहारादि संज्ञाओं के प्रोग्राम बनाते आये उन प्रोग्रामों की पूर्ति के लिये भरसक परिश्रम किये। अहिर्निश नाना विकल्पों में जीवन बिता डाल दिया गया। जिस भाव में जितनी इन्द्रियाँ मिलीं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्यता हुई उसके अनुरूप आहारादि संज्ञाओं के इच्छाओं के तांते चले, फल आकुलता ही रहा, कर्म बन्धन रहा, जन्म मरण की परम्परा बढ़ी। अच्छा एक इस मनुष्यभव के विकल्प प्रोग्रामों की भी खबर कर लो। बचपन में खेलों के प्रोग्राम में रहे, कितने तरह के खेल कबड्डी, खोखो, बटा गिल्ली, फुटबाल, वॉलीबाल, गैंद, पिट्ट आदि के आरम्भक विकल्प, जोशविकल्प, हारजीत विकल्प, विकल्पों में ही भारी समय गया। फिर ज्यों ज्यों बड़े होते गये, कषायों को प्रेक्टिकल रूप देने की साधनक्षमता बढ़ती गई, विकल्पों के रंग बदलते रहे, पर दृष्टि करके पर का आश्रय करके पर को मन में सोच सोचकर आत्मबल क्षीण किया, विकल्पों में अपने को बरबाद किया। कभी कुछ ज्ञान पाया, तो उससे बड़प्पन मानने के विकल्प और बड़प्पन मानने की मान्यता में अनेक विध कषाय वृत्तियों के रंग, ये सब प्रोग्राम बरबादी बरबादी के ही किये, अपने सहज स्वरूप की दृष्टि करने के बाबत कुछ कभी सोचा भी नहीं। अब यकायक चित्त बदल रहा, असार किये गये प्रोग्रामों से ऊब जाने के कारण भी समझिये और बात तो अपने सरल ज्ञान की होना ही थी, होना ही चाहिये थी उस पर जबरदस्ती प्रहार कब तक किया जाता सो यों भी सही सहज स्वरूप से मिलते ही रुचि हुई और उससे जाना कि जो इस सहज स्वरूप के ज्ञानानन्द के चरम विकास को प्राप्त हुए उन अरहंत प्रभु की महिमा, सर्वज्ञता व आनन्द स्वरूपता तो परमोत्कृष्ट ही है। वह विकास भी तो चैतन्य का है, चैतन्य मैं भी हूँ, वह ही होने की धुनि आई है। देखो देव देवियाँ राजा महाराजा ऋषि संत सब जो प्रभु की ओर खिंचे जा रहे हैं वह वीतराग तो सर्वज्ञता की ही तो महिमा है। अरहंत देव ज्ञानानन्द के परम विकास हैं, उस ही में तेरी कृतार्थता है। मेरे सब प्रोग्राम खत्म, अब तो अरहंत होने का प्रोग्राम है।

ज्ञानानुभूति के लिये यह जीवन है विकल्प करने के लिये नहीं

विकल्पों में ही तो अनन्त जीवन व्यतीत हुए, जीवन पाते रहने का उपाय ही यह है कि विकल्प किये जाओ। जीवनों से कुछ आत्मा का हित नहीं। निगोद का जीवन मिला क्या लाभ, एक सेकिण्ड में २३-२३ बार जन्म मरण किया, सो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्म मरण का तो विकट दुःख है ही, विकल्पों की मार साथ चलती। निगोद से निकला, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति हुआ, उसमें भी क्या लाभ, सो सब जानते ही हैं। कीड़े, पतंगे, पशु, पक्षी आदि अनेक प्रकार के अनेकों जन्म पाये, उनसे लाभ क्या। भला बतलाओ ऐसी जिन्दगी में क्या सार है कि जन्में नाना विकल्पों के क्षोभ मचाये, आकुलित हुए, मरे, फिर वही चक्की। तो तथ्य तो यह है जिन्दगी पाना कोई आत्माहित नहीं, आत्म स्वरूप नहीं, आत्म शोभा नहीं, लेकिन जीवनों का ताँता तो चला आ रहा है, लग बैठा है, अब तो यही निर्णय है कि किसी जीवन में ऐसा उपाय बन जाये कि उस जीवन के बाद जीवन न मिले अर्थात् जन्म न हो। तो इस ही प्रसंग की बात कही जा रही है इस जीवन में ऐसा उपाय बना लेने का कुछ मौका मिला है सो उपाय बना लें। यद्यपि आज के इस मानव जीवन से यह उपाय नहीं बनता कि इसी भव के बाद अभवदशा प्राप्त हो तथापि उपाय का प्रारम्भ हो सकता है और कुछ सीमा तक उपाय बन सकता है और सफलता प्राप्त हो सकती है। इस भव के बाद एक या दो आदि भव पाकर अभवदशा याने मुक्ति प्राप्त हो सकती है मुक्ति का उपाय अनादि मुक्त सहज ज्ञान स्वरूप की अनुभूति है तथा संसार में रुलने का उपाय अस्वरूप देहादिक का आश्रय करके विकल्प मचाते रहना है। अपना हित किसमें है इसे भली भाँति समझ कर यही एक मात्र निर्णय होता है कि विकल्पों में आत्मा का हित नहीं है, मैं ज्ञान मात्र हूँ ऐसी प्रतीति करके जो अपनी ज्ञान स्वरूप में अनुभूति से ही है उस अनुभूति में ही आत्मा का हित है। अब अपनी दृढ़ धुन बनाओ—ज्ञानानुभूति के लिये यह जीवन है, विकल्प करने के लिये नहीं।

प्रभु के सन्मान और स्तवन में जो लोक समुदाय खिंचा आ रहा है यह सब वीतरागता का आकर्षण है

देख लो यहीं आजकल जब जैन रथ यात्रा होती है कैसी अलौकिक शोभा बनती है। बड़े बड़े नंगे पैर जय जय कार और भजन स्तवन बोलते हुए, कई तो उछलते नाचते हुए, प्रभु मूर्ति के समक्ष अपने आपका सर्वस्व समर्पण सा कर देते हैं। अतः प्रश्न उठना प्राकृतिक है कि यह लोकसमुदाय जो खिंचा चला आ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा है इसका मूल कारण क्या है ? अब साक्षात् प्रभु के समय की बात सोच—तीर्थंकर अरहन्त प्रभु पृथ्वी से ५ हजार धनुष याने ५ मील ५ फर्लांग ऊपर विराजमान रहते हैं। इन्द्र, कुबेर इतने ऊपर एक अलौकिक समवशरण की रचना करते हैं जिस रचना में पृथ्वी से ऊपर जाने के चारों ओर सीढ़ियाँ, ऊपर चारों ओर मानस्तम्भ, फिर चारों ओर गोलाकार कोट, खानिका, वेदिका, फुलवाड़ी, कोट, नाट्यशाला, उपवन, वेदिका, पताका रचना, कोट, कल्पवृक्षवन, स्तूप, महल पंक्ति, कोट स्फटिक, बारहसभायें अतुल शोभा सम्पन्न रचित हैं। उस सबके बीच गन्धकुटी उस पर अनेक रचनायें हैं, गन्धकुटी के ऊपर कमलासन उस पर सिंहासन (श्रेष्ठासन) उसके ऊपर चार अंगुल अन्तरिक्ष विराजमान प्रभु हैं। उनके चरणों की उपासना के लिये चारों ओर से देव देवियाँ अद्भुत संगीत, गान, नृत्य करते झूमते आ रहे हैं, मनुष्यों का समुदाय भक्ति से ओत प्रोत होकर, खिंचा चला आ रहा है। पशु पक्षी मेंढक सर्प जैसे जीव भी खिंचे चले आ रहे हैं। इस विकट आकर्षण का कारण क्या है ? ऐसा अन्तः प्रश्न उठना प्राकृतिक है। लो इसको संक्षेप में समझ लो। यह सब इतना विशाल आकर्षण वीतरागता का है। जिनका होनहार अच्छा है उन्हें वीतरागता प्रिय है सो ऐसे भव्य जीव खिंचे चले आ रहे हैं। रागियों के विशाल निरपेक्ष आकर्षण कहाँ होता प्रभु के सन्मान और स्तवन में जो लोक समुदाय खिंचा आ रहा है, यह सब वीतरागता का आकर्षण है।

मौज मानने की गुन्जाइश है कहाँ, यहाँ तो विकल्प विपदाओं में सर्व ओर से फँसे हुए हैं

इस संसार में कौन सी परिस्थिति ऐसी है जो विश्वस्त हो, जिसमें मौज मानना वाजिब हो। पशु पक्षियों की बात तो झूठ समझ में आ जाती है, मनुष्यभव की बात देखो—बचपन में मौज मानने लायक क्या परिस्थिति है ! बोल नहीं सकते, बता नहीं सकते और इच्छायें अनेक होती हैं जिनकी पूर्ति होते नहीं देखकर आकुलता बनी रहती है, पद पद पर रोना ही रोना चलता रहता है। कुछ बड़े हुए तो वहाँ भी इच्छा के प्रतिकूल वातावरण रहता है, सो वहाँ भी मौज की गुंजाइश कहाँ। जवानी में अनेक विकल्प किये, श्रम किये, क्या किया, खेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही खेद किया। जिस जिस कषाय के अनुकूल कोई समागम मिला तो वह भी मौज के लायक समागम नहीं, क्योंकि मौज मानने का विकल्प स्वयं क्षोभमय है, क्षोभ में आनन्द कहाँ। हे अपने आप, हे आत्मन् देख संसार अवस्था में तो तू विपदाओं से घिरा हुआ है, विपद् पुरुष मौज और आराम के स्वप्न देखे तो वह उसकी नादानी है। विकल्प का बोझ इस आत्मा पर जब तक लदा है तब तक आराम कहाँ अपने में निरख—क्या कभी अपने को ज्ञान मात्र, चिन्तनविकल्प रहित, निराकुल अनुभव कर पाता है, नहीं तो देख—अपने को जब तू अज्ञानमय, राजस्वी भावमय, पर सम्बन्ध चिन्तनविकल्परूप, क्षोभमय अनुभव कर रहा है तो निरन्तर विकल्प विपदाओं में ही तो फँसा हुआ है। यहाँ किसी समागम में भी मौज मत मान, ये सब समागम असार हैं, भिन्न हैं, मायामय हैं, इनमें लगाव बनाना अविवेक है जिसका फल संसार संकट की प्राप्ति है। पर के लगाव से हट, यहाँ मौज मानने की गुंजाइश है कहाँ यहाँ तो विकल्प विपदाओं में सर्व ओर से फँसे हुए हैं।

प्रभुवर अलौकिक कृपालु हैं प्रभु की उपासना से अलौकिक लाभ उठा

लोग कहते हैं कि प्रभु संपदा के दातार हैं, यदि इसको यथार्थ भाव समझ लो तो सही जंच जायेगा कि प्रभु संपदा के दातार हैं। प्रभु के सन्मुख होने पर भक्त में निर्मलता प्रकट होती है, शुद्ध स्वरूप के प्रति उत्साह जगता है ऐसे विशुद्ध अवसर में आत्मा के पापकर्म खिरते हैं, पुण्यरस बढ़ता है, पुण्यकर्म बंधता है, उसके विपाककाल में अनेक संपदा प्राप्त होती है। भक्त लोग प्रभुस्तवन में ऐसा भी कहा करते हैं कि द्रोपदी को चीर बढ़ायो, सीताप्रति कमल रचायो, आदि आदि। इसमें भी तथ्य है, विपत्ति के समय इन्होंने विशुद्ध आशय से प्रभुस्मरण को एकमात्र शरण मान कर निष्पापता का बल बढ़ाया, उस समय अनेक पापकर्म खिरे, पुण्यरस बढ़ा, पुण्य कर्म बंधा उसके फल में चीर बढ़ना, अग्नि का पानी होना ये किसी भी प्रकार हुए, हो गये। प्रभुभक्ति निष्फल नहीं होती। प्रभु भक्ति से सांसारिक सुख प्राप्त होते हैं इतनी ही बात नहीं, किन्तु द्रव्य गुण पर्याय के विवेक और विचार से जब आत्मा को सहज प्रभुत्व की दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है तब आत्मा सहज कारण परमात्मतत्त्व की पवित्र उपासना के प्रताप से सहज आत्मीय विशुद्ध आनन्द प्रकट होता है जिसके प्रताप से परमोत्कृष्ट सिद्धदशा निकट काल में प्राप्त हो जाती है। जिससे उत्कृष्ट और कुछ पद नहीं वह सिद्ध पद है, अरहंत भी सिद्ध वत् अनन्त ज्ञानदर्शनशक्ति आनन्दमय हैं इनके स्मरण मात्र से भक्त का कल्याण हो जाता है अतएव ये अलौकिक कृपालु हैं सेवा तो स्मरण है और फल है सकलसंकट विनाश। प्रभुवर अलौकिक कृपालु हैं, प्रभु की उपासना से अलौकिक लाभ उठा।

निश्चय से जब वाह्य पदार्थ के साथ जानने का भी संबंध नहीं, तब अन्य की कथा ही क्या

जो जिस रूप है जिस रूप होने की योग्यता वाला है वही उस रूप परिणम सकता है वह उसी रूप परिणम सकता है। लोक में अनेक उदाहरण ऐसे हैं, अनेक क्या सारे ही पदार्थ उदाहरण हैं कि प्रत्येक अपने स्वरूप में ही परिणमता है। मोटे उदाहरण भी देखिये—भींट पर कलई पुत जाने से व्यवहार में भले ही यह कहा जाय कि कलई ने भींट को सफेद किया, भींट को नहीं, भींट तो उस फैली हुई कलई के भीतर पहिली जैसी ही है। निश्चयसे कलई ने कलई को ही सफेद किया भींट को नहीं। यह तो तिरोभाव का दृष्टान्त है, जहाँ नैमित्तिक परिणमन भी होता है उस प्रसंग में भी निमित्त स्वयं के स्वरूप में परिणमता है अन्य के स्वरूप में नहीं। अग्नि के सन्निधान का निमित्त पाकर पात्र में स्थित जल उष्ण हो गया, वहाँ अग्नि ने अपने में अपनी उष्णतारूप परिणमन किया और ऊष्णतारूप परिणम परिणम कर अपने में शान्त हो गई। शान्त हो गई अग्नि, इसके मायने यह नहीं कि पदार्थ का निरन्वय नाश हो गया, क्योंकि अग्नि मूलभूत पदार्थ नहीं, वह मूलभूत परमाणु पदार्थों का संघात है। लेकिन दृष्टान्त उपयुक्त हैं, उस प्रसंग में जल में उष्णतारूप नैमित्तिक परिणमन हो गया है, फिर भी जल में शीत ऊष्णतारूप परिणमने की योग्यता है, सो अग्नि का सन्निधान पाकर जल उष्ण हुआ, वहाँ निश्चय से अग्नि ने अपने में अपना उष्णता परिणमन किया, जल में नहीं। आत्मा ज्ञानरूप है, जानन इसका परिणमन है, जानन क्रिया निज में होती तो इसका कर्म भी जानन क्रिया परिणत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं है, तो इसका भाव यह ही तो हुआ कि आत्मा निश्चय से ज्ञेयाकार परिणत निज को ही जानता है। निश्चय से जब वाह्य पदार्थ के साथ जानने का भी संबंध नहीं तब अन्य की कथा ही क्या।

जो यह विकार हो रहा है, मैं इससे निराला सहज ज्ञान स्वरूप हूँ

मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, ये छः जीव के शत्रु हैं। ये मेरे स्वरूप तो हैं नहीं, किन्तु मुझमें आकर मुझे बरबाद कर डालते हैं। इन छहों विकारों के वश होकर ही तो नाना देहों में जन्म मरण करने की विडम्बना हो रही है, परेशानी भी सारी और है ही क्या ? मोह में तो पूरी बेहोशी होती ही है वहाँ तो सारी विडम्बना ही विडम्बना है। कामवासना में चैन कहाँ ! कामवश जिससे राग किया जाय, उसके आगे दीन हो जाना पड़ता है। क्रोध में तो जलना भुनना साफ समझ में आ जाता है। मान में बैचेनी रहा करती है। माया में तो निरन्तर भयभीत रहना पड़ता है। लोभ लालच से आत्मा का घात ही हो रहा है। ये छह शत्रु हैं, विकार हैं, मेरे स्वरूप नहीं हैं अतएव पीड़ा के कारणरूप हैं। जैसे स्वच्छ दर्पण के समक्ष कुछ भी वस्तु आये उस प्रकार का प्रतिबिम्ब बन जाता है दर्पण में। हाथ आगे करो तो प्रतिबिम्ब, हटा लो तो प्रतिबिम्ब नहीं ? जल्दी जल्दी हटाओ लगाओ तो प्रतिबिम्ब होता और मिटता रहता है सो विदित हुआ कि प्रतिबिम्ब होना उपाधि के सन्निधान पर निर्भर है। ऐसे ही कर्मोदय होने पर ये विकार होते हैं, कर्मोदय हटने पर दूर हो जाते हैं, इससे विदित हुआ कि विकार होना कर्म विपाक होने पर निर्भर है, विकार मेरे स्वरूप नहीं। ये होते हैं तो मैं क्या करूँ ? क्या करें ? देखो ये विकार होते हैं तो इस प्रसंग में यह तो जान लो जो यह विकार हो रहा है, मैं इससे निराला हूँ, सहज ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा उपयोग होने पर पूर्व बद्ध कर्म फुस हो जाते हैं, आगे विकार फल न मिले एतदर्थ कर्मबन्ध नहीं होता है और वर्तमान में तो सर्व अशान्ति दूर होकर शान्ति का विलास, साम्राज्य छा जाता है। कितना सुगम ज्ञानमय उपाय है, निर्णय कर लो—जो यह विकार हो रहा है, मैं इससे निराला ज्ञान स्वरूप हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानकारी वह सही है, जिस जानकारी से सारे संसार संकट मिट जाते हों

हम आप जानकारियों के सिवाय और कुछ करते ही क्या हैं। जब हम दुःखी होते हैं उस समय हम दुःखी होने के अनुरूप जानकारी बनाते हैं। पर द्रव्य को आपा व अपना मानकर उसके वियोग में हम किन्हीं विकल्पों रूप जानकारी ही तो बनाते हैं, वियोग की संभावना में हम दुःख के अनुरूप जानकारी ही तो बनाते हैं। जब हम सुखी मानने लगते हैं उस समय भी हम सुख के अनुरूप जानकारी ही तो बनाते हैं और करते क्या हैं ? मगर सुख दुःख के अनुरूप जानकारी बनाने में सार कुछ नहीं है, हित कुछ नहीं है दुःख वाली जानकारी तो सुगमतया असार विदित हो जाती है, किन्तु सुखवाली जानकारी भी उसी तरह असार है। सुखकल्पना वर्तमान में भी क्षोभ भरी हुई कल्पना है, और फिर सांसारिक सुख, दुःखों से घिरा हुआ है, सुख कल्पना के फल में कर्मबन्ध हो रहा है उसका फल इतना तक भी अशुभ हो जाता है कि विपत्तियों और विडम्बनाओं में फंस जाना पड़ता है। परभाव परपदार्थ की ओर दृष्टि रखकर जो भी जानकारियाँ बनती हैं उनमें संकट प्रकृत्या होते ही हैं। पर की ओर लगाव वाली जानकारियाँ हितरूप नहीं हैं। इन सब बाहरी जानकारियों से हट कर अब जरा अपनी जानकारी का प्रभाव देखो पर की उपेक्षा कर दो, पूर्ण विश्राम पाओ, चित्त में पर की चिन्तना न करो, स्वयं ज्ञान स्वरूप होने के कारण ज्ञान की वृत्ति तो होगी ही, अब वह वृत्ति अपने आधारभूत सहज ज्ञानस्वरूप के जानने की होगी। इस जानकारी का नाम है, निज ज्ञानस्वरूप की जानकारी। हित की दृष्टि से देखो तो यही जानकारी सही है। इस ज्ञान वृत्ति में कोई क्षोभ नहीं होता, इसके प्रताप से संसार संकटों से सदा के लिये मुक्ति हो जाती है ऐसी जानकारी होने दो। जानकारी वही सही है जिस जानकारी से सारे संसार संकट मिट जाते हों।

आनन्द तो अविकार रहने में ही है

विकार तो अपवित्र भाव है, आत्मा का कलंक है। सहजज्ञानानन्दघन आत्मप्रभु के स्वभाव में विकार कहाँ ? जैसे दर्पण में समक्ष आगत वस्तु के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुरूप प्रतिबिम्ब छायारूप परिणमन होना दर्पण का अपवित्र परिणमन है इसी प्रकार आत्मा में उदयागत कर्म के अनुरूप विकृत भाव होना आत्मा का अपवित्र भाव है, कलंक है। कलंकित भाव में क्षोभ ही भरा होता है उसमें आनन्द की क्या आशा। विकार तो क्षणिक भाव है, जो क्षण भर को आये और नये क्षणिक को आने का अवसर देकर जाये उस भाव के समय तो विह्वलता ही संभव है, क्षणिक भाव में आनन्द की क्या आशा। विकार तो विपरीत भाव है, जिसमें (आत्मा में) विकार आया वह तो है ज्ञानस्वरूप और विकार है अज्ञानरूप। विपरीत भाव के संग में आनन्द की क्या आशा। विकार स्वयं दुःखस्वरूप है। अब अपने स्वभाव भाव को देखो—आत्मा का स्वभाव है चैतन्य, उसकी विशेष वृत्ति का नाम है ज्ञान और सामान्य वृत्ति का नाम है दर्शन, ज्ञान दर्शन में अर्थात् जानने देखने में कोई क्षोभ नहीं, क्षोभ तो विकार में ही होता है। केवल जानना रहे इसमें आकुलता रंच भी नहीं है जहाँ आकुलता नहीं वहाँ ही आनन्द है। यह आनन्द आकुलता के अभावरूप ही नहीं है, किन्तु सहज निर्विकल्प अलौकिक आह्लादरूप है अविकार अवस्था में ही यह आनन्द है। अविकारता की अनुपम महिमा है। अविकार परम पुरुष की ओर तीनों लोकों के इन्द्र भी आकर्षित हुए चले आते हैं। अविकारना का साक्षात् फल पावन परम सहज आनन्द है। संसार की सर्व दशायें दुःख रूप हैं। आनन्द तो अविकार रहने में ही है।

मैं ज्ञान मात्र हूँ, ज्ञान सिवाय मैं अन्य कुछ नहीं हूँ

ज्ञान का स्वरूप जानन, ऐसा जानन जिसमें जानन ही जानन है, राग, द्वेष, विकल्प, तरंग, हलन, चलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, इच्छा, आशा, प्रतीक्षा आदि कुछ भी नहीं हैं, केवल ज्ञान प्रकाश है। ऐसा ज्ञान प्रकाश मात्र मैं हूँ। केवल ज्ञान ही ज्ञान हूँ, ज्ञा. .न, ज्ञा. .न। अहा, कैसा अलौकिक धाम हूँ, अहा, कैसा आनन्द धाम हूँ, मेरा सर्वस्व यही मैं हूँ। जान लिया अपने प्रभु को। अब कोई कष्ट हो ही नहीं सकता, जन्म मरण के कलंक सदा के लिये खत्म हो जायेंगे। यहाँ ज्ञान ही ज्ञान है, ज्ञान में तो वैभव का विलास है, ज्ञान तो परम सहज आह्लादका धाम है इसका कोई नाम ही नहीं, यह तो अपने में समाया हुआ चैतन्य महा प्रभु है। लोगों से अपने बारे में कुछ अच्छा कहलवाने का भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही नहीं है, अब क्या क्लेश। पाँच इन्द्रियों के विषयों के उपभोग में उपादेयत्व की कल्पना ही नहीं, जब क्या क्लेश। कोई लोग कुछ गाली गलौच, निन्दा, आदि प्रतिकूल चेष्टा करें तो मेरे कुछ प्रतिकूल ही नहीं वस्तुतः। मैं ज्ञानमात्र हूँ, इसमें अन्य का प्रवेश ही नहीं, कोई अन्य इस मुझको जानता ही नहीं। अन्य की चेष्टा में अनुकूलता प्रतिकूलता जंचती ही नहीं, अब क्या क्लेश। अहा, मैं ज्ञान मात्र हूँ। मैं ज्ञान मात्र हूँ इस प्रतीति में मेरी सर्व सम्पदा मिल गई, मैं अब सिद्धत्व के निकट हूँ, कृतार्थ हूँ। अहा मेरा यहाँ जितना जीवन है वह सब अब ज्ञानानुभूति के लिये है। ज्ञान की अनुभूति मेरे निरन्तर रहो, और कुछ मेरे चाह नहीं। अथवा यह भी चाह नहीं, स्वयं को पा लिया, अब चाह का सवाल क्या। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान सिवाय मैं अन्य कुछ नहीं हूँ।

हे सिद्ध भगवान् ! तुम ही सत्य हो, अन्य सब असत्य है

सत्य वह कहलाता है जो केवल विधि से सत् में हो, हे प्रभो जो आत्म सत् में वैभव है, दह आप में व्यक्त है अतः आप ही सत्य हो। लोक में जो अन्य अनेक जीवों की अवस्थायें हैं, गति मार्गणा की दृष्टि से नरक गति, तिर्यंचगति, मनुष्य गति ये सब असत्य हैं। इन्द्रिय जाति मार्गणा की दृष्टि से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अवस्थायें हैं, ये सब असत्य हैं। कायमार्गणा की दृष्टि से पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, मात्रकाय की दशायें हैं वे सब असत्य हैं। योग मार्गणा की अपेक्षा से जो चारों मनो योग, चारों वचन योग व ७ काय योग की अवस्थायें हैं वे सब असत्य हैं। वेद मार्गणा की दृष्टि से पुरुष वेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद की दशायें असत्य हैं। कषाय मार्गणा की अपेक्षा सभी कषायें असत्य हैं। ज्ञान मार्गणा की दृष्टि से कुमति, कुश्रत, कुअवधि ज्ञान असत्य हैं तथा मति श्रत अवधि मनः पर्यय ज्ञान भी सद्विलास होने पर भी असत्य है। इसी प्रकार अन्य अन्य भी जो क्षणिक व नैमित्तिक भाव हैं वे सब असत्य हैं। केवल आत्मा के स्वभाव से अन्य की अपेक्षा किये बिना जो स्वतः स्वयं विकास है वह सत्य है। हे सिद्ध भगवान ! यही विकास तेरा है, केवल ज्ञानपुञ्ज आनन्द धाम शाश्वत आत्ममात्र तुम ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो। अतएव हे सिद्ध भगवान् ! तुम ही सत्य हो। यह स्वभाव मेरा भी है, मैं भी चेतन सत् हूँ। ज़ो विकास सिद्ध प्रभु में है वही मेरा स्वरूप है, क्योंकि मैं ऐसा ही सत् हूँ। मेरा यह सत्य प्रगट हो, सिद्ध भगवान की उपासना से यही सहज जगे। हे सिद्ध भगवन् ! तुम ही सत्य हो, अन्य सब असत्य है।

हे अविकार चैतन्य प्रभो ! तेरे सिवा अन्य कुछ भी शरण नहीं है

वाह्य में कुछ भी शरण मानकार जितना जितना झुके उतने उतने ही हम असहाय और बरबाद होते जाते हैं इसमें रंच असत्य नहीं है। वस्तुतः कोई भी जीव अन्य पदार्थ की ओर झुकता नहीं है, अपने विकार की ओर झुकता है। विकार स्वयं क्लेशरूप है। यह जीव मोह, अज्ञान की अधीनता में रहकर अब तक विकार को ही अपना शरण मानता आया है। इसी कारण पद पद पर ठोकरें खा रहे हैं। अभी तो मनुष्य हैं सो कुछ समझ बना कर दुःख कम कर लेते हैं, दुःखों से उपेक्षा कर लेते हैं, धैर्य रख लेते हैं और सही विवेक बनायें, ज्ञान की धारा बनाये रहें तो सदा के लिये निकट भविष्य में संसार के समस्त संकटों से छुट जायें ऐसा उपाय बना सकते हैं। परन्तु यहाँ अपनी सावधानी न रखी और बन गये एकेन्द्रियादिक भाव वाले, तब फिर हम अपना क्या हित कर सकेंगे। अहो, इन विकारों की प्रीति बड़ी भारी विपत्ति है कि विकारों की प्रीति से ऐसे ही जीवन बिताने पड़ते हैं जैसे कि ये एकेन्द्रिय विकलत्रय पशु पक्षी आदि के जीवन हैं। ऐसे दुःखमय संसार में किसका शरण लूँ कि मेरी रक्षा हो। मेरे से बाहर ऐसा कुछ भी पदार्थ नहीं, भाव नहीं, तत्त्व नहीं, जो मेरे को शरण हो जाये। ये सब स्वयं अशरण हैं ये इस किसी एक रूप में रह ही नहीं सकते हैं। यह सब बदलते हैं, माया हैं, इनका शरण ग्रहण करना अज्ञान है। अज्ञानमय भाव से ज्ञानी पदार्थ को स्वरूप लाभ नहीं हो सकता, समृद्धिलाभ नहीं हो सकता। मेरा शरण मेरा प्रभु मेरे में ही अन्तः प्रकाशमान है। वह अनादि, अनन्त, अहेतुक, सहज चैतन्यस्वरूप है, यही चैतन्य भाव मेरा प्रभु है, जिसमें कोइ विकार ही नहीं है। हे अविकार चैतन्य प्रभु ! तेरे सिवा अन्य कुछ भी शरण नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे शान्ति धाम ! तुम्हारा शरण ही कल्याण का रूप है, विकार की कुटेव अशान्ति और अकल्याण का रूप है

हे प्रियतम निज अपने सहज स्वरूप को देख, तू शान्ति का धाम है। तेरा स्वरूप है चैतन्य। जो सत् हो वह भी प्रतिभास में आ जाये और तेरा जो स्वरूप है वह प्रतिभास में आ जाय यों प्रतिभासने का, चेतने का तेरा स्वरूप है। प्रतिभासने में ज्ञाता दृष्टा रहने में अशान्ति का क्या काम किन्तु प्रभु अर्थात् समर्थ होने के कारण जब अपने स्वरूप की दृष्टि छोड़कर विषय कषायों के विकल्प में रहता आया सो खुद ही अपने पर प्रहार करता आया है। अपने पर अनन्त प्रहार होने पर भी यह स्वयं आप अब भी वही सहज प्रभु है। भाव बिगाड़े तो क्या, जिस क्षण भाव शुद्ध सहज स्वरूप को पा लेगा उस क्षण तो वही शुद्धोपयोग है वहाँ बिगाड़ का निशान भी नहीं फिर तो शुद्ध तत्त्व के उपयोग की धारा निरंतर बहाते रहने की यों आवश्यकता है कि बिगाड़ का संस्कार भी समाप्त हो जाये। मोह.काम.क्रोध.मान.माया.लोभ ये छह जीव के विकार भाव हैं, इनके आग्रह से जीव अशान्त हो जाता है। विकारों रूप रहना ही तो अकल्याण है, विकारों की कुटेव में अशान्ति ही अशान्ति भरी हुई है। अहो, कितना कष्ट है, खुद तो है आनन्द स्वरूप और अनुभव किया जा रहा है क्लेशों का और इतना ही नहीं नाना गति जातियों के देहों में फंसता रहता है। स्वभाव की दृष्टि न करके जो विकार की कुटेव लगा रखी है इसमें अपना सारा अहित ही अहित है। अपने स्वरूप को देखो यह स्वयं शान्ति धाम ! तुम्हारा शरण ही कल्याणरूप है, विकार की कुटेव अशान्ति और अकल्याण का रूप है।

वे क्षण धन्य हैं, जिन क्षणों में ज्ञान धारा बहती है

आत्मा का सर्व हित अनाकुलता में है। आत्मा की कुछ भी अवस्थायें हों उनमें किसी में यदि अनाकुलता है तो वह अवस्था तो आदेय है, हितरूप है, अन्य सारी अवस्थायें अहित रूप हैं। अनाकुलता की अवस्था उसी स्थिति में होती है जहाँ ज्ञान में ज्ञान स्वरूप रहता है। ज्ञान ज्ञान को ही जानता रहे इसे ज्ञान धारा कहते हैं। जीव में यहाँ ज्ञान धारा अथवा कर्मधारा ये दो धारायें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चलती हैं, ज्ञान स्वरूप को ग्रहण करे ऐसी वर्तना चलने को ज्ञान धारा कहते हैं, ज्ञान अज्ञान स्वरूप राग द्वेषादि विकारों को ग्रहण करे, विकारों को आत्म रूप माने उससे जो ज्ञान और योग की प्रवृत्ति होती है और आनन्द गुण का विकृत परिणमन होता है उस प्रवाह को कर्मधारा कहते हैं। कर्मधारा अनादि से चलती आई है, कर्म धारा में जीव ने नाना विचित्र देह धारण कर, कषायों को भोग भोग कर आकुलता ही प्राप्त की है। जीवनों के ऐसे सब क्षण बेकार रहे, बरबादी के कारणभूत रहे। अब ज्ञान धारा की महिमा देखिये। ज्ञान एक प्रतिभास रूप भाव है, ज्ञायकशक्ति रूप में शाश्वत सहज रहने वाला ज्ञानभाव सहज ज्ञान स्वरूप है, यह सहज अन्तस्तत्त्व ज्ञान में निरन्तर बना रहे इसे ज्ञान धारा कहते हैं। जिन क्षणों में ज्ञानधारा बहती है वे क्षण पावन हैं अर्थात् ज्ञान स्वरूप का ज्ञान करने वाला आत्मा पावन है। ज्ञान मूर्ति अन्तस्तत्त्व के दर्शन से सर्व संकट नष्ट हो जाते हैं। जीव को शरण केवल सहज ज्ञान का अवलम्बन है। वे पुरुष धन्य हैं जिनके सहज ज्ञान स्वभाव का अवलम्बन है। वे क्षण धन्य हैं जिन क्षणों में ज्ञानधारा बहती है।

दुर्लभता से तो नर भव पाया और दिया इसे विषयों में गमा तो इस अज्ञानता की पूर्ति का बदला अन्य कुछ नहीं

विभाव परिणामों का और भवभ्रमण का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। विभाव भवबीज है। राग द्वेष मोह भाव ही संसार के कारण भूत हैं। इस मिथ्यात्रयी के वश होकर जीव अनादि से भवों में भ्रमण करता चला आया है। कैसी कैसी वे भवपर्यायें हैं इस ओर भी तो ध्यान करो। सर्वनिकृष्ट पर्याय थी निगोद की। निगोद शरीर सूक्ष्म होता है, लोकाकाश में सर्वत्र वे हैं ये आँखों से नहीं दिख सकते, एक सेकेन्ड में २३ बार वे जन्म मरण करते हैं, एकेन्द्रिय जीव हैं, उनके सिर्फ स्पर्शनेन्द्रिय जन्य ज्ञान है। सो भी न कुछ के बराबर। जो निगोद शरीर वादर हैं, प्रत्येक वनस्पति, हरे पेड़, फल, फूल, पत्र के आश्रय हैं, कीट पतंग कर्म भूमिज मनुष्य पक्षी पशु आदि के आधार में रहते हैं वे भी सूक्ष्म निगोद जैसा ही जन्म मरण का कष्ट सहते हैं। पृथ्वी जल आग हवा वनस्पति के भव भी दुर्गति हैं। कहाँ तो यह अनंत ज्ञान अनन्त आनंद स्वभाव वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मतत्त्व और कहाँ पेड़ पानी हवा जैसी हालत। कीट पतंग पशु पक्षी आदि की दशा कैसी दयनींय है सो प्रायः विदित है। उन सब भवों से निकल कर मनुष्य का भव पा लेना कितना कठिन था, जिस कठिनाई उपमा में संत पुरुष कहते हैं कि नर भव पाना कठिन है जैसे समुद्र में फेंका गया रत्न मिलना कठिन है अथवा महानदी के एक किनारे पर सैल छोड़ दिये जायें और दूसरे किनारे पर जुवा छोड़ दी जाये फिर कहीं जुवा के छेद में सैल का लग जाना कठिन है। यों तो दुर्लभता से नरभव पाया और इसे विषय भोगों में गमा दिया जाय तो सोच लो वह कितनी बड़ी भारी अज्ञानता है। इस के फल में फिर निगोद पेड़ पानी कीट आदि जैसे भव में रहना पड़ेगा। जरा अपने आप पर दया करके सोच कि दुर्लभता से नर भव पाया और दिया इसे विषयों में गमा तो इस अज्ञानता की पूर्ति का बदला अन्य कुछ नहीं।

वाह्य में तो कुछ मेरा वैभव ही नहीं, अत्यन्ताभाव वाले पदार्थों से मेरा क्या नाता

मैं मैं हूँ, अन्य नहीं हूँ कुछ। मै अपनी शक्तियों में तम्मय हूँ अन्य की शक्तियों का मुझमें त्रिकाल अभाव है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, तभी वस्तु की सत्ता कायम है, प्रत्येक वस्तुवों का अस्तित्व इसी कारण बना हुआ है कि किसी भी पदार्थ की शक्ति अन्य पदार्थ में नहीं पहुँचती। जब शक्तियों का परिवर्तन नहीं है तब किसी पदार्थ का परिणमन किसी अन्य में पहुँच ही कैसे सकता है। जब किसी अन्य द्रव्य का मेरे स्वरूप में दखल नहीं, किसी भी अन्य पदार्थ की शक्ति का मुझ में प्रवेश नहीं, किसी भी अन्य पदार्थ के पर्याय का मुझमें सम्बन्ध नहीं तब मेरा मेरे सिवाय और रहा क्या। मेरा वैभव मैं हूँ। भेद दृष्टि से देखूँ तो मेरे वैभव मेरे ज्ञान दर्शन आनन्द वीर्य चारित्र सम्यक्तव आदि गुण हैं। मेरे वैभव इन ज्ञान आदि गुणों के विशुद्ध विलास हैं। मेरा बाहर में कहीं भी कुछ भी वैभव नहीं। सुवर्ण, रजत, काठ, पत्थर, कागज, आदि पुद्गलों के ढेर हैं इनका मुझमें अत्यन्ताभाव है इनसे मेरा क्या सम्बन्ध ? इनको चित्त में बसाना सिवाय मूर्खता के और क्या है। मुझ जैसे चैतन्य स्वरूपी कुछ चेतन कर्मबद्ध जन्म मरण के फंद वाले नरभव में आकर यहाँ इकट्ठे हुए हैं, इनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुझमें अत्यन्त अभाव है, इनमें मौलिक जो चेतन है अणु अणु है उन सभी का मुझमें अत्यन्त अभाव है। इनसे प्रीति करके व्यर्थ अपने को कलुषित करना मूढ़ता नहीं तो और क्या है ? हे आत्मन् ! कुछ अपने आप पर दया कर, सत्य समझ, सत्य में अपने को रमा, निरख अपने में, वह मेरा सत्य मुझमें ही सहज शाश्वत विराजमान है ? वाह्य में तो कुछ मेरा वैभव ही नहीं, अत्यन्ताभाव वाले पदार्थों से मेरा क्या नाता।

तुम तो सहजानन्द धाम हो, क्यों जबरदस्ती दुःखों का निर्माण किये जा रहे हो

हे आत्मन् ! अपने आप पर दया करके अपने घर का पता तो कुछ कर लो। निहार तो लो अन्तर में अपने आपको कि आत्मा का स्वरूप क्या है ? मेरा निर्माण, सहज निर्माण, अनादि स्वरूप किन तत्त्वों से है ? वाह्य के विकल्प हटा कर आत्म विश्राम पूर्वक परखने पर वह आत्मतत्त्व विदित होता है। मेरा अन्तस्तत्त्व है चैतन्य और आनन्द। मेरे में चेतना पाई जाती है, ज्ञान दर्शन द्वारा प्रतिभास होते रहना मेरा विलास है उसी के अविनाभाव में आनन्द भी निरन्तर है। यह आनन्द परम आह्लाद रूप है, सहज है। अब समझ लो तुम्हारा निर्माण ज्ञान और आनन्द से हुआ है, तुम ज्ञान और आनन्दमय हो, यह ज्ञान भी सहज है तेरा और यह आनन्द भी सहज है तेरा। अब बता बाहर में क्या चाहता है ? क्या रखा बाहर में सार। तेरा सब कुछ सार सर्वस्व तेरे में ही है तू सम्पूर्ण है, परिपूर्ण है। कृतकृत्य है, क्लेश का तेरे में नाम नहीं, तू तो सहजानन्द धाम है। अपने सहज आनन्द की तो सुध न रखो और व्यर्थ विकल्प करके अपने को हैरान बनाते रहो। इसमें क्या भलाई पावोगे। भलाई तो क्या संसार में कीट स्थावर पशु पक्षी आदि देह धारण कर कर रुलते रहोगे। प्रियतम ! अपनी सुध कर, विशुद्ध आनन्द अमृत का पान कर। प्रियतम तुम तो प्रभुवत् अनन्त गुणों के धाम हो, अपनी प्रभुता को भूल कर दीनवत् क्यों अपना उपयोग बना रहे हो, तुम तो सहजानन्द धाम हो क्यों जबरदस्ती दुःखों का निर्माण किये जा रहे हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, फिर मोह का क्या अवकाश ?

पदार्थ पदार्थ तब ही रहता है जब कि वह वह ही हो, अन्यरूप न हो। कोई पदार्थ वह वही रहे इसका अर्थ है कि उसका गुण, स्वभाव, पर्याय, प्रदेश सब कुछ उसमें ही है, अन्य किसी पदार्थ में नहीं। इससे स्पष्ट है कि मेरा द्रव्य, गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रदेश कुछ भी अन्य में नहीं जाता और अन्य किसी पदार्थ का द्रव्य, गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रदेश, प्रभाव आदि कुछ भी मुझमें नहीं आता। यों प्रत्येक अणु अणु प्रत्येक आत्मा व आकाशादिक प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, किसी का कोई अन्य नहीं, किसी में किसी अन्य का दखल नहीं। निमित्त पाकर उपादान में जो परिणमन होता है उसका मर्म यह है कि निमित्त सन्निधान पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला बनता है और ऐसा होना परिणममान पदार्थ की प्रकृति है। कौन पदार्थ किस प्रकार की वस्तु का सन्निधान पाकर किस रूप परिणम जाता है यह परिणममान उस पदार्थ की कला है। तो देखो प्रत्येक अणु प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र हैं, फिर करने की गुंजाइश कहाँ है। मोह, अज्ञान, मिथ्यात्व ये अनर्थान्तर हैं। मिथ्यात्व के नाम हैं। स्वतंत्र पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध निरखना, ऐसा वस्तुतः है नहीं और मान रहे सो हुआ अज्ञान और इस मिथ्याभाव के कारण अपना होश खो दिया सो यह हुआ मोह। वस्तुस्वरूप का सम्यक् ज्ञान होने पर अज्ञान हट गया, मिथ्यात्व हट गया और मोह हट गया। प्रियतम अब तो समझ, अपना होश सम्हाल, प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, फिर मोह का क्या अवकाश ?

जो समय संसार सागर तिरने के लिये पाया उसी समय विकल्प का बोझ लाद कर डूब रहे तो भला कब होगा।

संसार में जीव की जितनी पर्यायें हैं उनमें असंज्ञी की पर्यायों में तो तिरने के उपाय की रंच भी बात नहीं है। निगोद जीव जो एकेन्द्रिय हैं जिन अनन्त जीवों का एक औदारिक शरीर होता है ऐसे असंख्याते पिण्ड हैं, व्यवहार बहिर्गत हैं वे बेचारे क्या समझें हित को। पृथ्वी, जल, आग, हवा, हरी वनस्पति जो अन्य स्थावर जीव हैं वे भी एकेन्द्रिय हैं क्या जाने हित को। लट आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वीन्द्रिय, चिंउटी आदि त्रीन्द्रिय, मक्खी आदि चतुरेन्द्रिय व जलसर्प आदि असंज्ञी पंचेन्द्रिय के भी हित बोध नहीं जगता। सो असंज्ञी भवों में तो हित का कोई उपाय है नहीं। अब संज्ञी पंचेन्द्रिय भवों की बात देखिये यद्यपि सम्यक्त्व नारक संज्ञी तिर्यंच, देव व पर्याप्त मनुष्य चारों भवों में संभव है, किन्तु संयम की योग्यता केवल पर्याप्त मनुष्य में ही है। उसमें भी यद्यपि आजकल के हम लोग संयम धारण कर इसी भव से तिर जायें मुक्त हो जायें यह संभव नहीं है, फिर भी जितनी अधिक निर्मलता आजकल के हम लोग संयम धारण करके प्राप्त कर सकते हैं उतनी निर्मलता नारक, संज्ञी तिर्यंच, देव में संभव ही नहीं, वे सकल संयम के अधिकारी ही नहीं हैं। नरभव की दृष्टि से मनुष्यभव ही संसार सागर से तिरने का उपाय कर सकता है और इस भव में भी विकल्प बोझ लाद लिये जावें तो फिर तिरने का कौन सा अवसर होगा। जो समय संसार सागर से तिरने के लिये पाया उसी समय विकल्प बोझ लाद कर डूब रहे तो भला कब होगा।

तुम तो अतुल शक्ति सम्पन्न हो, अपनी शक्ति की सम्हाल करो

हे आत्मन् ! क्यों अपने को दुःखी अनुभव किये जा रहे हो पुराण पुरुषों की वृत्ति का तो स्मरण करो। दुःखी अनुभव किये जाने का साधन परिग्रह का सम्बन्ध है। बाह्य चेतन अचेतन पदार्थों को अनुकूल बनाने निकट बनाने, उनसे अपना यश माननै के परिणाम को परिग्रह से अर्थात् बाह्य पदार्थ से और उनके सम्बन्ध में उठे विकल्पों से जब तक राग रहेगा, लगाव रहेगा, चिपकाव रहेगा तब तक अपने को दुःखी अनुभवते रहोगे और शक्ति हीन मान कर व्याकुल रहोगे। लोक में श्रेष्ठ काम क्या है, इसका सही निर्णय रखो। देखो बाहुबलि महाराज को क्या नहीं मिला था, राज्य था, रानियाँ थीं और इज्जत इतनी पूरी बढ़ गई थी जैसी कि भरत चक्रवर्ती की भी न थी, षट्खंड चक्रवर्ती भरत पर भी विजय प्राप्त कर लेने के प्रसंग की इज्जत को कितनी बड़ी कही जाय सो अनुमान कर लो। सब होने पर भी श्रेष्ठ कर्तव्य क्या है सो उनके कार्य से समझ लो। बाहुबलि महाराज ने राज्य छोड़ा, घर छोड़ा, भिन्न प्रसंग छोड़ा, यशोगान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसंग छोड़ा, वस्त्र छोड़ा, गात्र मात्र उनके निकट था, और रहे ज्ञानमात्र आत्म स्वरूप में लीन। ऐसी वृत्ति अपनी बनाओगे तब शान्त सानन्द हो पावोगे। देखो जो योगेश्वर हुए हैं, प्रभु हुए हैं उनमें जो शक्ति थी वही शक्ति तुम में है। अपनी शक्ति की और स्वभाव की ओर दृष्टि दो, तब स्वयं यह समझ लोगे कि आत्मन् ! तुम में है कहाँ क्लेश ? तुम तो अतुल शक्ति सम्पन्न हो अपनी शक्ति की सम्हाल करो।

५९००

दृढ़तम निर्णय के साथ पर भाव से हटकर स्व भाव में समा जाओ

कर्म विपाक का निमित्त पाकर जो अपने में राग द्वेष आदिक भाव उठते हैं वे परभाव हैं। इनकी प्रीति से अब तक भवभ्रमण चलता रहा। ये परभाव अपावन हैं क्योंकि ज्ञानसमुद्र में गन्दगी रूप हैं। विशुद्ध ज्ञानस्व भाव आत्मा में राग विरोध भोग विषय के विकल्प उठना कितनी घृणास्पद बात है। ये पर भाव जीव स्वभाव से उल्टी चाल चलते हैं इनकी प्रीति में आत्मा का अकल्याण ही है। इनसे हटने में ही भलाई है। परभाव से हटने में कोई श्रम नहीं करना है, एक सही ज्ञान करना है और जान कर कि यह तो स्वका सहज सिद्ध भाव है और ये सब परभाव हैं, परभाव से उपयोग को मोड़ लेना है। प्रियतम आत्मन् ! उपाधि प्रसंग में कब तक रुलते रहोगे, कब तक जन्म मरण के संकट सहोगे। आखिर यदि शान्ति चाहते हो तो अपने सत्यस्वरूप का निर्णय दृढ़तम करना ही होगा और दृढ़तम निर्णय के साथ निर्णीत तत्त्व पर डटना ही होगा। देखो अधम से अधम पुरुष भी और उत्कृष्ट पुरुष भी जो भी इस सत्य निर्णय को करके सत्य आग्रह में रहे वे कृतार्थ हो गये। हम भावमात्र ही स्वरूप वाले हैं भाव को ही करते हैं भाव को ही भोगते हैं भावरूप ही फल पाते हैं, सो किसी उत्कृष्ट भाव को ही तो करना है। वह कल्याणकारी भाव है अपने सहज स्वभाव को निरख कर उसमें उपयोग रमाना। स्वभाव में रम जाना ही उत्कृष्ट योग है, उत्कृष्ट साधना है। हे प्रियतम ! अब दृढ़तम निर्णय के साथ पर भाव से हटकर स्व भाव में समा जाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब तक ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व के बल से राग आग को न बुझा लोगे तब तक व्याकुलता ही रहेगी

हे आत्मन् ! अपने में देख, सोच तू आनन्द स्वरूप है अपने में समृद्ध है, हरा भरा है। इसमें राग आग लग गई है सो हरा भरापन सब मुरझा गया है, राग आग की ज्वाला में झुलस गया है। अहो, देखो राग करना आसान व प्रिय जच रहा है, किन्तु इसका परिणाम भयंकर है। आत्मा की कहाँ यह प्रकृति थी कि पेड़ आग कीड़े मकोड़े पशु पक्षी जैसे देहों में बंध कर फंस कर विपरीत क्रिया करे, किन्तु हो रहा है यह सब ! यह किसका प्रसाद है ? यह है राग ज्वाला का प्रसाद। जब तक राग आग को न बुझा लोगे तब तक व्याकुलता हट ही नहीं सकती। इस राग आग को बुझाने का उपाय अपने को ज्ञानमात्र अनुभव करना है। अपने को ज्ञानमात्र माना इसमें सब उपादेय तत्त्व आ जाते हैं। मैं ज्ञानमात्र हूँ अन्य रूप नहीं हूँ। जब मैं ज्ञानमात्र हूँ तो ज्ञानमात्र का ही परिणमन कर सकता हूँ, मैं ज्ञान मात्र हूँ अतः ज्ञानमात्र ही अनुभवन कर सकता हूँ। ज्ञानमात्र मुझ में ज्ञान का ही प्रकाश संभव है, राग आदि विकारों का सद्भाव इस ज्ञानमात्र स्वभाव में संभव नहीं। यों ज्ञानमात्र अपने को निरखने से अनन्त बल प्रकट होता है। कषाय रूप अनुभव से बल हीन हो जाता है। ज्ञानमात्र भावना से प्रकट हुए अन्तस्तत्त्व के बल से समृद्ध ज्ञानी के राग संताप शान्त हो जाता है। हे आत्मन् ! ज्ञानमात्र भावना पाकर राग आग को शान्त कर लो। जब तक ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व के बल से राग आग को न बुझा लोगे तब तक व्याकुलता ही रहेगी।

मिथ्यात्व ही एक मात्र महत्तम विपदा है, इसे हटाओ और सम्यक्त्व संपदा प्राप्त करो

इस जीव पर या तो विपदाओं का भारी बोझ लदा है या विपदा का नाम भी नहीं है; इन दो बातों में से कोई एक बात दिखती है, जब जैसी दृष्टि हो तब तैसी बात दिखती है। विपदाओं का बोझ तो यों दिखता है कि यह बाह्य पदार्थों से अपना सम्बन्ध बनाना चाहता है, अपनी इच्छा के अनुसार बाह्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थों की परिणति देखना चाहता है व करना चाहता है, लेकिन सम्बन्ध है कहाँ ? वस्तु का स्वरूप उसका उस ही में है, द्रव्य क्षेत्र काल भाव उसका उसमें ही है, सो इच्छा के अनुकूल कुछ होता नहीं और इच्छायें दमादम बढ़ती ही जाती हैं। बस इच्छा के अनुकूल हो नहीं पाता सो यह बाह्य पदार्थों का नाम ले ले कर रोता है—हाय हम इस बात से बड़े दुःखी हैं। यों इस जीव पर विकल्प विपदाओं का भारी बोझ लद गया है। इसका कारण मिथ्यात्व भाव है। अपना होश नहीं, पर की ओर दौड़ लग रही है सो विकल्पों का बोझ लद गया। अब अपने अन्तस्तत्त्व की बात देखो—मेरा स्वरूप ज्ञान और आनन्द है, ज्ञानानन्द स्वरूप यह मैं आत्मा अमूर्त हूँ, सब से निराला हूँ इसमें किसी अन्य पदार्थ का सम्बन्ध ही नहीं, प्रवेश ही नहीं। इस मुझ ज्ञानमात्र आत्म में पर से कुछ आता जाता नहीं। इस मुझ में विपदा क्या हो सकती, मैं मैं हूँ अन्य अन्य है, अन्य किसी रूप रहा करो इससे मुझे क्या। अहा, विशुद्ध ज्ञानमात्र आत्मा में तो अलौकिक आनन्द ही बरस रहा है। यह सब किसका प्रताप है ? अन्तर्दृष्टि से सम्यक्त्व से शान्ति बनती है और बाह्य दृष्टि से, मिथ्यात्व से अशान्ति बनती है। मिथ्यात्व ही एक महत्तम विपदा है इसे हटाओ और सम्यक्त्व संपदा प्राप्त करो।

चोरी मायाचारी करते समय मुझे कोई नहीं देख रहा, यह संतोष न करो, कर्म तेरे बैरी हैं ये तो तेरे साथ सर्वत्र हैं

हे आत्मन् ! तूने इस दुनिया के व्यवहार से ही अपना सारा निर्णय कर रखा है इससे तू बड़े खतरे में है। यहाँ के लोग अच्छा कह दें इससे तू अपने को अच्छा मानता है। इसी ख्याल से तू बाह्य में अपनी ऐसी पोजीशन बनाता है कि लोगों को दिखने में बड़ी सज्जनता लगती है। किन्तु, भीतर में हैं विषय कषाय के संस्कार, तो जो निन्द्य कार्य हैं उनको करना पड़ता है मगर कोशिश यही करता है कि लोग मुझे यों खोटा न समझ लें। इसी कारण किसी बात की कुछ चोरी करता है यह समझ लेता है कि मुझे कोई देख नहीं रहा, चलो मैं ठीक हूँ। कभी कोई मायाचारी करता है चुगली आदि करता है तो वहाँ भी ऐसा यत्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है कि मुझे कोई यों समझ न ले देख न ले। हे आत्मन ! तू इस बात से संतोष मत कर कि मुझे कोई देख नहीं रहा, पाप करते समय तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं हो सकता। अरे जिनकी निगाह में यहाँ तू सज्जन जचना चाहता है वे तेरा कुछ भी भला नहीं कर सकते, उनके ख्याल में तू सज्जन जच गया इससे क्या खोटे काम के फल से बच जायेगा। तेरे सुख दुःख में तो तेरे बद्ध कर्मों का उदयादि निमित्त है। कर्म तेरे बैरी हैं, तो इस समय जो कर्मरूप वर्गणा हैं वे तेरे साथ हैं और अनन्ती कार्माण वर्गणायें ऐसी भी तेरे साथ हैं जो अभी कर्मरूप नहीं, किन्तु तेरे विभाव परिणाम का निमित्त पाकर तुरन्त ही कर्मरूप बन जाती हैं। तू कहीं भी कैसे ही छुप कर पाप कर, कर्म बन्ध तो नियम से होगा ही और उसके उदय में कुफल भी भोगना पड़ेगा। सो चोरी मायाचारी करते समय मुझे कोई देख नहीं रहा, यह संतोष न करो, कर्म तेरे बैरी हैं, ये तो तेरे साथ सर्वत्र हैं।

संतोष पाने का एक मात्र उपाय निज ज्ञान स्वरूप का उपयोग बनाये रहना है

बाहर में जिसके निकट जाओ उसके आश्रय का भाव होने से असंतोष ही होता है। खूब प्रयोग करके देख लो बाह्य का सहारा तकने से कभी शान्ति प्राप्त की क्या। संतोष भाव यदि किसी पर का अचेतन का पर्याय होता तो कहा जा सकता था कि पर के सहारे से संतोष प्राप्त हो सकता है, किन्तु मेरा संतोष भाव तो मेरा परिणमन है वह बाहर कैसे आवेगा। दुनिया में बड़े-२ राजा महाराजा हो गये, आखिर जीवन में बीती क्या उन पर, असंतोष में उनका जीवन गया। कोई लौकिक बड़ा बन कर क्या पा लेगा, है तो सभी जीव भाव मात्र, भाव ही तो बनते हैं, कैसे भाव बनते हैं उनके, इस का अन्दाज कर लो। बाह्य परिग्रह से जीव का कुछ सम्बन्ध नहीं, वे रहे आये इस पर जीव कोई अधिकार नहीं सो बाह्य परिकर बिछुड़ता रहता है, इच्छा से कुछ आता नहीं, सो लौकिक बड़ों की विह्वलता को गरीब क्या समझे। संतोष पाने का उपाय बाह्य में कुछ संग्रह विग्रह करना है ही नहीं। संतोष पाने का उपाय अब अपने अन्तरंग में निरखो। आत्मा का स्वभाव अविकार विशुद्ध जाननमात्र है, यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभावमात्र अपनी प्रतीति करने में, ज्ञानमात्र अपने आपके उपयोग में अशांति का अवसर नहीं, आत्मस्वरूप सदा काल है सो इसके वियोग की आशंका नहीं। अतः संतोष स्व के आश्रय ही मिल सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। संतोष पाने का एक मात्र उपाय निज ज्ञानस्वरूप का उपयोग बनाये रहना है।

सम्यक्त्व ही एक मात्र जीवन का शरण है

जीव है ज्ञान मात्र, आकाशवत् निर्लेप, किन्तु चैतन्य भाव से विशिष्ट इस ज्ञानमात्र जीव का कोई अन्य कुछ भी नहीं है, किसी भी पदार्थ का कोई अन्य कुछ भी नहीं हो सकता। तब बाह्य वस्तु मेरा शरण कैसे हो सकता है। मुझमें जब किसी अन्य का दखल ही नहीं तो दूसरा कौन मुझे शरण है। दूसरा न हित करता है मेरा, न अहित करता है मेरा। निमित्तभूत कर्म द्रव्य मैं मेरे अहित का निमित्तत्व है अवश्य, फिर भी सत्ता की ओर से निरखो तो यह निःसन्देह बात है कि निमित्तसन्निधान होने पर भी मैं दुःखी अपने परिणमन से ही होता हूँ निमित्तभूत कर्म की परिणति से नहीं। वस्तु की स्वतंत्रता का भान हो जाना ज्ञान की समीचीनता है। समीचीनता का नाम सम्यक्त्व है। सम्यक् मायने समीचीन व सम्यक् के भाव को सम्यक्त्व कहते हैं। ज्ञान सही सही बना रहे यही जीव को शरण है। ज्ञान में विपरीतता आने से ही जीव की बरबादी है। अज्ञान में यह जीव किस किस की शरण पहुँचा, जहाँ जहाँ शरण मान कर रहा वहीं वहीं इसने धोखा खाया, कष्ट उठाया। क्यों न कष्ट उठाता, जो बात स्वरूप में ही नहीं उसके पुलीवा बाँधने का तो परिणाम यही होता है। प्रियतम आत्मन् ! असत्य का आग्रह करके क्या पा लोगे। असत्य तो तुमसे अलग ही है। अपने सत् में होने वाले भाव का आग्रह करो ! आत्मसत्य का दर्शन होना सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व साम्य भाव ही एक मात्र जीव का शरण है।

हित तो सम्यक् ज्ञान में और आत्मतत्त्व के निकट रहने में है

किसी के निकट सोना चाँदी रकम मकान आदि पुद्गलों का ढेर निकट हो गया तो क्या हो गया। इन पुद्गलों से क्या शान्ति निकलती है। देख तो लो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब ओर ! धनी समृद्धों में कोई शान्त भी नजर आया। धन की आशा में, रक्षा में, वृद्धि में, हानि न होने देने में चिन्तित होकर यत्र तत्र दौड़ लगाया करते हैं। धन के प्रसंग में कोई हित नहीं है। किसी के इस मायामयी दुनिया में यश बढ़ गया तो क्या हो गया। जिनमें यश बढ़ावे कोई सत्यतत्त्व है ही नहीं, कर्मप्रेरित, विभाव कलुषित, दुःखी मानव है। यश भी क्या बढ़ा, लोग स्वार्थवश अपनी गर्ज सिद्ध करने के लिए मायारूप प्रशंसावाले शब्द कभी कदाचित् बोल डालते हैं। कल्पित असत्य यश ही सही उससे न लाभ इस जीवन में है और उल्टे व्याकुलित होकर ही फिरना पड़ता है तथा आखिर मरण करके सर्वतता विवश होकर छोड़ना पड़ता है, छूट जाता है। यश प्रसंग में कुछ भी हित नहीं है। कुछ चेतन पदार्थों से नेह बढ़ाया, उन्हें परिवार माना, परिचय किया, इससे क्या हित, हित तेरा कहीं बाहर नहीं। तू स्वयं हितमय है, अपने हितमयस्वरूप को पहिचान, ज्ञानमात्र अपने को निरख, यही सत्य ज्ञान है। अपना सम्यक् ज्ञान करके फिर हित स्वरूप आत्मतत्त्व के निकट रहना, यह ही विशुद्ध परमार्थ अनुष्ठान है। हित तेरा तेरे से बाहर नहीं है, हित तो सम्यक् ज्ञान में और आत्मतत्त्व के निकट रहने में है।

मोह में न माया मिलती, न आत्माराम

धन वैभव संपदा माया प्राप्त होने का निमित्त मोह भाव नहीं है। यद्यपि किसी दृष्टि से कह सकते हैं माया प्राप्ति का कारण मोह है, अर्थात् संपदा माया प्राप्त होती है पुण्यविपाकसे, पुण्यबंध होता है शुभ राग भाव के निमित्त से, शुभ रागभाव भी मोह का अंश है, तथापि यहाँ प्रसंग यह है कि जो यहाँ मोहभाव आसक्तिभाव किया जा रहा है उससे संपदा प्राप्त नहीं हो जाती है। प्रकट देख लो इसी जीवन में, मोह करते-करते कितने क्षण गुजर गये हैं, क्या लाभ पा लिया। पूर्वयोग से मिल भी जाय संपदा माया छाया, तो एक क्षण भी तो विश्राम नहीं, बल्कि पतन ही पतन है। सर्वनिकृष्ट पतन तो यह है कि आत्मा को अपनी सुध नहीं रही। जब आत्मा को अपना होश नहीं रहा तब आनन्द पाने की धुन में यह पर विषय साधनों की ओर दृष्टि लगाये रहता है, इस धुन में अपना गौरव खो देता है। अहो, कैसी विकट विपदा जीव पर छाई हुई है। यह मोही जीव अपने में विकल्प ही तो उत्पन्न करता है पर से मिलता कुछ नहीं, लेकिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस बेहोश को कुछ होश नहीं है। पर को आनन्दस्वरूप मान कर इन्द्रियविषयों को अचेतनों को आनन्दस्वरूप मान कर उनकी ओर भागा जा रहा है सो इस मोही को अपना आत्मप्रभु भी नहीं मिल रहा। यह मोह व्यर्थ का परिणाम है। मोह में न माया मिलती, न आत्माराम।

'ज्ञान मात्र हूँ' ऐसा अनुभवने का यत्न करो

हे आत्मन् ! दु:खी मत होओ, घबड़ाओ मत, तुझ पर कोई विपत्ति नहीं, कोई बोझ नहीं, कोई समस्या नहीं। देख अपने को अन्तर में दृष्टि करके कि तू है क्या और तुझ पर है क्या। तू है एक प्रतिभासक पदार्थ, तुझ में यही वैभव है कि जानना देखना हुआ करें, तू रूप, रस, गंध, स्पर्श व शब्द से रहित है, अमूर्त है, तुझ पर रूप, रस, गंध, स्पर्श व शब्द चिपट ही नहीं सकते, तुझे ये अन्य कोई पदार्थ छू भी नहीं सकते, तेरा यहाँ फिर रहा क्या। ये परिजन परिकर क्या हैं ? तेरे समान स्वतंत्र चेतन पदार्थ, कर्मविपाकवश तेरे समान ये नरभव में आये हैं, कुछ समय बाद बिछुड़ जावोगे, इनसे तेरा रंच भी सम्बन्ध नहीं। अब सोच इन दृश्यमान पदार्थों से प्रीति करने में, इन्हें अपना सर्वस्व समझने में रंच भी हित नहीं, शान्ति नहीं। इज्जत पाने का विचार भी मूढ़तापूर्ण विचार है— किससे इज्जत चाहते हो ? इस मनुष्य समुदाय से ? ये तो सब अशरण हैं, कर्म प्रेरित हैं, आकुलित हैं, मरण कर जाने वाले हैं, तुझ से अत्यन्त भिन्न हैं, तेरे स्वरूप में ये सब कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं हैं। कितने क्षेत्र में इज्जत चाहते हो ? इस सारे देश में ? यह सब आज के वैज्ञानिकों द्वारा परिचित ज्ञात दुनिया समस्त लोक का एक इतना छोटा हिस्सा है जैसे कि विशाल समुद्र के सामने एक बूँद। यहाँ से मरण कर ३४३ घन राजू लोक में कहाँ पैदा होओगे और क्या बनोगे, फिर तेरी इज्जत क्या, और कितने दिन की। प्रियतम आत्मन् ! बाह्य में सबका सम्पर्क छोड़, अपने स्वरूप को देख तू ज्ञानमात्र है, इसमें किसी अन्य का सम्पर्क नहीं, इसी कारण कोई विपदा नहीं। ज्ञानमात्र हूँ मैं, ऐसा अनुभव होने पर शान्ति रस झरता है परम सहज आनन्द जगता है, कर्मध्वंस होता है, तेरा स्वरूप ज्यौं का त्यौं प्रकट हो जाता है। यदि तू अपना भला चाहता है तो समस्त कल्पनायें तजकर ज्ञानमात्र हूँ ऐसा अनुभवने का यत्न करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह पदार्थ मुझ ही में है जिसके दर्शन होने से पूर्ण भला हो जाता है

ऐसा कौन सा पदार्थ है जिसके दर्शन से सदा के लिये संकट मिट सकते हैं, लोक में खोजो। बाहर कहीं भी कोई ऐसा न मिलेगा जिसके दर्शन से संकट मिट जायें। परिजन का सम्पर्क तो संकट का मुख्य आश्रय ही है। परिजन के सम्पर्क में प्रथम संकट तो यह है कि सबकी इच्छाओं की पूर्ति में श्रम करना, उनकी इच्छाओं की पूर्ति तेरे अधीन नहीं, और इच्छाओं की सीमा नहीं सो अतिव्याकुलता रहती है और फिर परिजन भी मिथ्या भाव, तेरे से अन्य सब अत्यन्त भिन्न हैं। परिजन के दर्शन से भला होने की क्या आशा। मित्रजन, भक्तजन, इज्जत, धन संपदा सभी का स्नेह आकुलता का कारण है उनके सम्पर्क से दर्शन से भला होने की कोई आशा नहीं। सच तो यह है कि ज्ञानस्वरूप तुझ अन्तस्तत्त्व का बाहर कुछ नहीं, सो बाहर शरण ढूँढना व्यर्थ है। अब अन्तर में शरण देखिये—अहा, यह मैं आत्मा केवल विशुद्ध ज्ञान प्रकाश मात्र हूँ। मेरे ही सत्त्व के कारण अन्य की उपाधि बिना स्वतः सहज मेरा स्वभाव चैतन्य। यह स्वभाव केवल सामान्य स्वसंचेतन में प्राप्त होता है, ज्ञान दर्शनात्मक सामान्य स्वसंचेतन में इस निज अन्तः स्वभाव का दर्शन होता है। यह परम पावन दर्शन है, यह सम्यक् दर्शन है। इस आत्म देव के दर्शन से सर्व मोह राग द्वेष जाल जंजाल भाग जाते हैं। अनन्त आनन्दमय विशुद्ध चैतन्य तेज जहाँ प्रकट हुआ है वहाँ कोई मल कलंक नहीं रह सकते। यहाँ ही परम संतोष होता है, सहज आनन्द जगता है, कृतार्थता होती है, कैवल्य प्रकट होता है। अहा, अब सब गुत्थियाँ सुलझ गईं। अब दृढ़तम निर्णय हुआ—वह पदार्थ मुझ में ही है जिसके दर्शन होने से पूर्ण भला हो जाता है।

जैन शासन रत्न पाकर विषयों में लग कर उसकी उपेक्षा कर देने की गलती की तो इसका बदल कुछ नहीं है

एकेन्द्रिय से लेकर चतुरेन्द्रिय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में तो हित की बुद्धि ही नहीं जग सकती उनकी गलती की हम चर्चा क्या करें वे स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़ी गलत पर्याय में पड़े हैं। किन्तु, अपनी बात तो देखो, तुम तो मनुष्य पर्याय में आये हो। जहाँ श्रेष्ठ मन है, श्रेष्ठ साधन है, हित कर सकने की बुद्धि और योग्यता है। हित के लिए तुमने जैन शासन एक ऐसा रत्न पाया कि जिसकी होड़ अन्य कुछ है ही नहीं। देखो तुम हो चैतन्यमात्र पदार्थ, जिस में रूप रस गंध स्पर्श शब्द कुछ नहीं है, जिसमें रूप रस गंध स्पर्श शब्द से कोई बाधा नहीं और न किसी अन्य द्रव्य का दखल है, इसी कारण संकट का कोई अवकाश नहीं है। ऐसे भावमात्र अपना होश न रखकर बाह्य पदार्थों में जो लगे भिड़े जा रहे हो जिनसे महान क्लेश भोगते, अपवित्र होते, जन्म मरण की विडम्बना पाते। यदि किसी निमित्त से तुम्हें सहजानन्दमय चैतन्यमात्र अन्तस्तत्त्व का परिचय हो जाय, अनुभव हो जाय सदा के लिए संसार संकट समाप्त हो जाय, तो तुम उसका कितना उपकार मानोगे ? बहुत बहुत ही क्या, पूर्ण पूर्ण। लो यही निमित्त है यह जैन शासन जिसके ज्ञान से हम निष्पक्ष परोक्ष्य वास्तविक स्वरूप जानते हैं, समस्त अन्य द्रव्यों से निराला स्वतंत्र शाश्वत आनन्द धाम ज्ञानमात्र अपने को समझ जाते हैं, जिसके अनुभव से आनन्द मग्न होकर सब झझंटों से मुक्त हो जाते हैं। अब ऐसे रत्न को पाकर खो दिया, विषयों में लगकर गँवा दिया तो इस गलती का जो भयंकर परिणाम है उसे न भोगने के लिए कोई कहे कि हमारी सारी यह लोक संपदा ले लो अथवा कोई जो चाहे दंड दे दो यह भयंकर फल न होने दो तो इसका बदल कुछ है ही नहीं। इससे सावधान होओ, जैनशासन पाने का लाभ उठाओ, ज्ञानार्जन करो, स्वहित में प्रमाद मत करो। देखो जैनशासन रत्न पाकर विषयों में लगकर उसकी उपेक्षा कर देने की गलती की तो इसका बदल अन्य कुछ नहीं है।

अपने मूल परम पदार्थ का दर्शन सर्व संकटहारी दर्शन है

अपने में मूल पदार्थ है सहजसिद्ध विशुद्ध ज्ञायकस्वभाव। उसकी दो प्रकार की अवस्थायें बन रही हैं— एक तो दर्शन ज्ञान चरित्र आदि आत्म गुणों में रमने वाली अवस्था, ज्ञानमय अवस्था, स्वसमय और, दूसरी अवस्था है नर नारकादि भवों में रमने वाली, इन्द्रिय विषयों की ओर उपयोग रखने वाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानमय अवस्था, परसमय। कोई जीव किसी अवस्था में है, कोई किसी अवस्था में है। जो ज्ञानमय अवस्था में हैं वे भी पहिले अज्ञानमय अवस्था में थे। उन्होंने कैसे अपना उद्धार कर लिया। बात यह है कि किसी प्रकार उन्होंने मूल पदार्थ का परिचय कर लिया। अब सहज स्वभाव का अनुभव कर करके, प्रसन्न होकर, निर्मल होकर सर्व उपाधियों का त्याग कर शुद्ध निर्विकार ज्ञानमय हो गये। देखो दोनों प्रकार की, सब प्रकार की अवस्थाओं में अवस्था को न निरख कर, पर्याय को न निरख कर मूल पदार्थ का उपयोग करो, परखो, भले ही अवस्थायें होती हैं, किन्तु मूल तो है ज्ञायक स्वभाव ही ना। इसके दर्शन का उपाय है—पर को अहित असार भिन्न जान कर समस्त पर से उपेक्षा करके अन्तः विश्राम पाना। इस आन्तरिक संयम के प्रसाद से उपयोग स्वयं स्वतः सहज सहजज्ञायक स्वभाव का अनुभव करता है। लोक में सर्वत्र घूमे अनेक अन्यों का आश्रय किया, किन्तु वहाँ संकट ही संकट सहे, शान्ति का तो नाम ही नहीं, बाहर सर्वत्र खतरा ही खतरा है, विपदा है, विडम्बना है। अपने मूल पदार्थ का दर्शन सर्व संकटहारी दर्शन है।

मैं केवल भाव को ही करता हूँ, भाव को ही भोगता हूँ

प्रत्येक पदार्थ का अपना स्वरूप होता है, जैसे यह चौकी है तो इसमें क्या भरा पड़ा है, किससे निर्मित है यह। स्पष्ट है, इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श है, ऐसे मूर्त अणुओं से रचा है। परमाणु रूप, रस, गंध, स्पर्श का पिण्ड है, आकाश अमूर्त, अवगाहन गुण वाला है; ऐसी ही अपने आपके याने आत्मा के बारे में परख करो इसमें क्या भरा है, यह किससे रचा है। रूप, रस, गंध, स्पर्श तो इसमें है नहीं, यह है ज्ञानमय पदार्थ। ज्ञान ज्ञान यह आत्मा है व ज्ञान के ही कारण आनन्दमय है, मुझ में ज्ञान है, आनन्द है, मैं ज्ञान और आनन्द भाव से ही रचा गया हूँ। मैं ज्ञान भाव मात्र हूँ। भाव मात्र यह मैं भाव को ही करता हूँ, भाव को ही भोगता हूँ। मैं ही क्या समस्त जीव भाव को ही करते हैं और भाव को ही अनुभवते हैं। स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, पशु, पक्षी, नारकी, देव, मनुष्य, अरहंत, सिद्ध, भगवंत सभी आत्म भाव को ही करते हैं, भाव को ही भोगते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभु शुद्ध ज्ञान भाव को अनुभवते हैं, उसी रूप परिणमते हैं। ज्ञानी योगी अपने अनुरूप शुद्ध भाव को करते हैं व अनुभवते हैं। अज्ञानी जीव शुभ अशुभ भाव को करते हैं व भोगते हैं। जीव जब भावमात्र है तो वह और कुछ करेगा भोगेगा क्या। जो कुछ करना धरना लोगों को दीखता है व जिसके आश्रय से अज्ञानी करना धरना मानता है वह तो निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध की बात है। मैं किसी पर को करता होता तो यह ही कर लेता कि मैं शरीर को बूढ़ा न होने देता। मैं अपने प्रदेशों में अपने गुणों के परिणमन को ही करता हूँ, भोगता हूँ। जब मैं बाहर कुछ कर भोग ही नहीं सकता तो मेरा क्या रहा। मेरा मात्र मैं ही हूँ। हे आत्मन् ! किसी भी बाह्य अर्थ की परिणति देख कर चित्त में हर्ष विषाद मत कर, सत्य निर्णय पर आ मैं केवल मैं हूँ मैं केवल भाव को ही करता हूँ, भाव को ही भोगता हूँ।

तेरा प्रभु तेरे अन्दर नित्य अन्तः प्रकाश मान है

जो तेरी रक्षा कर सके तेरा प्रभु है। लोक में जिस सम्पर्क में रहता है जहाँ रहता है वहाँ तेरा कोई प्रभु नहीं है। ये जगत के जीव जिनमें कोई कुटम्बों में नजर आ रहे हैं कोई मित्र से नजर आ रहे हैं कोई कुछ, ये स्वयं असहाय हैं विषयासक्त दीन हुए भटकते फिरते हैं इनसे रक्षा की आशा क्या। योगी ज्ञानी संत निरपेक्ष हैं उनका उपदेश तेरी रक्षा के लिए होता है, किन्तु वे स्वयं तेरी रक्षा तो न कर सकेंगे, उस उपदेश पर चलकर तू विकल्प तोड़कर अखंड ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करेगा तो तेरी रक्षा होगी। अरहंत सिद्ध भगवान प्रभु हैं, रक्षक हैं, हाँ उनका स्वरूप ऐसा विशद है कि उस स्वरूप की उपासना करने से अपने स्वरूप की दृष्टि प्रतीति होती है और अभेद उपासना बनने से अनुभूति भी होती है, जिससे अपने आत्मा की रक्षा हो जाती है, दुर्गति टल जाती है, मुक्ति निकट होती है, मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस कारण देव, शास्त्र, गुरु मेरे व्यवहारतः रक्षक हैं। निश्चयतः तो अपने आप में नित्य व्यक्त अन्तः प्रकाशमान सहज ज्ञान भाव की दृष्टि प्रतीति अनुभूति, स्वभावपरिणमन अपना रक्षक है। यह ज्ञान स्वभाव, यह विशुद्ध ज्ञानभाव ही तेरा रक्षक है, तेरा प्रभु तेरे अन्दर नित्य है। तेरे अन्दर नित्य अन्तः प्रकाशमान है, तभी तो कितना भी विकार आने पर भी अपने स्वरूप से चलित नहीं हो सका। देख अब विह्वल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मत हो, अपने अन्दर आ, अपने प्रभु की खूब उपासना करके शान्ति तृप्ति पा, खूब दर्शन कर, तेरा प्रभु तेरे अन्दर नित्य अन्तः प्रकाशमान है।

सारा दुःख तृष्णा का है, इसे हटाओ और सुखी हो लो

आत्मन् ! व्यर्थ दुःख अनुभव करते हो, वस्तुतः तुम में कुछ दुःख है ही नहीं। तुम तो अमूर्त ज्ञान मात्र पावन द्रव्य हो। तुम्हारा असीम अनन्तानन्त जाननस्वभाव है। ऐसा अन्य कोई पदार्थ है नहीं। यह तो आनन्द का धाम है, आनन्द इसका स्वरूप ही है। अन्तर्दृष्टि करके देख लो। बाह्य की ओर जो दृष्टियाँ दौड़ रही हैं ये ही आनन्द धाम में रहने नहीं देतीं। हे प्रभो ! क्यों ऐसा हो रहा है। हे नाथ ! मुझ द्रव्य में तो कोई अपराध है नहीं। माना कि स्वरूप में विकार न होकर भी उपाधि के संसर्ग से विकार परिणमन चल रहा है, किन्तु ऐसा हुआ ही क्यों ? जैसा सिद्ध प्रभु है तैसा ही तो मैं हूँ। कहा जा सकता है कि सिद्ध प्रभु के उपाधि का संसर्ग नहीं, तो यही तो निवेदन कर रहा हूँ नाथ ! सिद्ध प्रभु भी तो पहिले हम जैसी आफत में थे उन्हें भी यह क्यों हुआ। मैं तो सर्व जीवों के लिये पूछ रहा हूँ। अपने सत्त्व से अपने में विशुद्ध ज्ञान आनन्द धर्म वाले जीव को अनादि से भी क्यों संसर्ग व संसर्गज भाव लगा हुआ है। निरपराध को अनादि से ही पीसा जा रहा है। नाथ ! मेरे अन्तर में उत्सुकता यही है कि मैं कुछ भी विकल्प न करूँ, कुछ बाह्य उपयोग ही न करूँ, जैसा सहज जो कुछ मैं हूँ सो ही रहूँ। सोच रहा हूँ कि कभी तो विकल्प छोड़ना ही है, क्यों विलम्ब किया जाय। परन्तु कैसी अशुद्धता है, यह सब तृष्णा का फल है। देख लो देह में, वैभव में, इज्जत में बुद्धि लगी है ना। तृष्णा न हो तो सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। हे आत्मन् ! क्यों व्यर्थ दुःखी होते हो, दुःख तृष्णा का है, इसे हटाओ और सुखी हो लो।

मेरे को ज्ञान मात्र अन्तस्तत्त्व के सिवाय सब कुछ ढा जाने वाली बात है

मेरे को यहाँ क्या रखा है जो कुछ सामने है, जो कुछ मिला है, वह सब कुछ ढा जाने वाला है, रहने का नहीं और फिर इससे मेरे को मिलेगा क्या। मेरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो कुछ है वह मेरे में ही है, मैं जो कुछ कर सकता हूँ मेरे में ही कर सकता हूँ, अनुभवन भी मेरा सारा मेरे में ही हो सकता है। पदार्थ के स्वरूप का ही नियम ऐसा है। परन्तु खेद है कि बाहर मेरा न कुछ होने पर भी बाहर ही सब कुछ ढूँढा जा रहा है, इस यत्न में कितना संकट सहना पड़ता है वह वचन के अगोचर है। अथवा सामने ही तो सारे संकट हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वनस्पति, आग आदि कैसे कठिन क्लेश पा रहे हैं। भीतर की यह शल्य, जो बहिर्मुख होने से लग बैठी है, अति अनर्थ को उत्पन्न कर रही है। जगत के इस ढेर में उपयोग होने से खुद का ढेर हो रहा है। हे प्रियतम आत्मन् ! साहस तो बना, बाहरी विकल्प तोड़ कर केवल विश्राम से ही तो बैठना है। तेरा तेरे स्वरूप के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। मेरे अविकार स्वभाव में मेरा उपयोग प्रविष्ट हो जाय, रम जाय, यही मात्र मेरा सच्चा वैभव है, ऐसा हुए बिना बड़े बड़े तीर्थंकर चक्री जैसे महापुरुष भी शान्ति न पा सके। अब तो दृढ़ निर्णय कर। पर की अनुकूलता, कला निरख कर हर्ष की व्याकुलता मत मचा। गम्भीरता से देख, अपने को सम्हाल, दृढ़ निर्णय रख— मेरे को ज्ञान मात्र अन्तस्तत्त्व के सिवाय सब कुछ ढा जाने वाली बात है।

आवरण और परिणमनों को भेद कर अन्तस्तत्त्व की दृष्टि होना कृतार्थता का मौलिक एक मात्र पुरुषार्थ है

इस अन्तस्तत्त्व कारण परमात्मा पर बाह्य आवरण देह है सो यद्यपि देह अन्तस्तत्त्व से भिन्न है और अमूर्त आत्मा को स्पर्श नहीं कर पाता तथापि पूर्व वासना और वर्तमान अज्ञान के कारण देह पर दृष्टि होने से और वर्तमान ऐसा ही परिणमन होने से आवरण बना हुआ है। इस आवरण में उपयोग भटक गया इस कारण उपयोग देह आवरण को भेद कर अन्तः गति नहीं कर पाता। देह आवरण का स्वरूप अचेतन है मूर्त है, मुझ अन्तस्तत्त्व का स्वरूप चैतन्य है और अमूर्त है ऐसा भेद विज्ञान करके अन्तर्बल की वृद्धि से उपयोग देह आवरण को भेद कर अन्तः प्रगति करता है। अब आन्तरिक आवरण मिलता है द्रव्य कर्म का आवरण। इस का अटकना क्या। कर्म इन्द्रियों के अगोचर हैं आगम गम्य व युक्तिगम्य है, इनका विपाक काल होता रहता है और तब तब उस उस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के विभाव होते रहते हैं। यह जीव विभावों में भटकता है अतः विभाव आवरण का प्रसंग देखिये। यद्यपि रागद्वेष विभाव आवरण आत्मा में उपाधिसंसर्ग के निमित्त से होते तथापि सहज भाव नहीं है ये नैमित्तिक भाव हैं। आत्मा के सहज ज्ञायक स्वभाव में आत्मत्व की प्रतीति करने वाला ज्ञानी विभाव में नहीं अटकता है ये विभाव परिणमन आन्तरिक आवरण है। इनमें तो अटकना ही नहीं है और जो ज्ञानादि गुण के अपूर्ण विकास रूप परिणमन है अथवा सर्व प्रकार के परिणमन है उनमें भी नहीं अटकना है। आवरण और परिणमनों को भेद कर अन्तस्तत्त्व की दृष्टि होना कृतार्थता का मौलिक एक मात्र पुरुषार्थ है।

कैसी व्यर्थ की परेशानी है, इसका कारण पर की आशा मात्र है

जब मैं ज्ञानानन्द स्वरूप ही सहज हूँ तब परेशानी की ही बात क्या थी। मैं अपने स्वरूप को जैसा है तैसा सम्हाल लूँ, यही मात्र एक कार्य है। दुनिया में दिखने वाले लोग मेरा हित करने में समर्थ नहीं हैं, बल्कि ये लोग आश्रय बन सकते हैं तो मेरे राग द्वेष मोह के बन सकते हैं, सब ये निमित्त (आश्रयभूत) हुए राग द्वेष मोह के। राग द्वेष मोह भाव मेरे बैरी हैं जो बैरी को आश्रय देवें मेरे बैरी ही तो कहलावेंगे, किन्तु हितू नहीं कहला सकते यद्यपि निश्चयतः मेरा विभाव परिणमन बैरी है, किन्तु इन दिखने वाले लोगों का आश्रय करके ही तो ये हो पाते हैं। अतः यह दृश्य जाल तेरे लिये अरम्य है अविश्वास्य है इन के आकर्षण में मत रह इन्हें महत्त्व न दे। तू अपने को सदा सर्वत्र अकेला समझ, अकेला निरख। मेरे प्रियतम अब परेशान मत होओ देख तो लिया सबका मर्म ! मेरे प्रियतम ! अब परेशान मत होओ देख तो लिया निज का धर्म। मेरे प्रियतम! अब परेशान मत होओ जान तो लिया कि क्या है कर्म। कोई क्या करेगा, कहाँ है परतंत्रता। आशा की कि आशावश आशा के आश्रयभूत पर के तन्त्र हो गये। हाय हाय कैसी भ्रम की परेशानी है, जिसमें दम कुछ नहीं, किन्तु मानते कम नहीं। अपने सत्य नित्य निरंजन विशुद्ध ज्ञान मात्र स्वरूप को देख, फिर स्वयं समझ जायेगा कि कैसी व्यर्थ की परेशानी है, इसका कारण पर की आशा मात्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्हीं लोगों को देख कर ईर्ष्या करना तेरी नादानी है

कुछ लोग बेकार पड़े रहने वालों से, लोभी व मूर्ख होने पर भी किसी धांधली में पूरा भोजन पान शारीरिक पूर्ण आराम पाने वालों से ज्ञान व धन में बढ़ने वालों से इत्यादि अनेक जनों से ईर्ष्या करते हैं। यह उनकी नादानी है, क्योंकि कोई किसी प्रकार पुण्यफल पाये उसमें तेरा क्या गया वे यहाँ पुण्यफल न भोगते, अन्यत्र रह कर पुण्य फल भोगते तो क्या भोगते न होते। लोक में अनन्त जीव हैं, क्या तुमने सब का ठेका ले रखा है। इन व्यर्थ की बातों से उपेक्षा करके अपना बड़प्पन समझना चाहिये। तेरा बड़प्पन है तेरी निर्मलता में। तू सिद्ध प्रभु के समान निर्मलता का स्वभाव रखने वाला पावन पुरुष है तेरे ही समान लोक में अनन्ते सारे जीव हैं। तू सब जीवों का सुख चाह। किसी को किसी प्रकार की बाधा न हो ऐसी अभिलाषा रख। सब जीवों में मित्रता का परिणाम रख। इस असार अशरण अनित्य संसार में तेरा कहीं कोई रक्षक नहीं है। अपने परिणाम को अहिंसा सत्य अचौर्य शील व अकिञ्चनता में ढाल कर निरपराध रहकर इस जीवन को व्यतीत कर ले तो तेरे विशुद्ध परिणाम तेरी रक्षा करेंगे अर्थात् तू शान्त रह सकेगा और धर्म परिणाम में बढ़कर अपने को संसार संकट से सदा के लिये मुक्त कर सकेगा। तू बाह्य में कैसे ही रहने वालों से ईर्ष्या मत कर, उनसे रंच भी विरोधभाव मत कर। अपने आप को देख। किन्हीं लोगों को देख कर ईर्ष्या करना तेरी नादानी है।

जिन शासन के परिज्ञान का मर्म अखंड सहज ज्ञानमात्र स्व का अनुभव करना है

जिन शासन का परिमाण बहुत विशाल है, गणधर श्रुतकेवली उसका पार पा सकते हैं, फिर भी आज के उपलब्ध आचार्य प्रणीत ग्रन्थों में जितना निबद्ध है वह भी आज के अन्य प्रत्येक दर्शनों से बहुगुणित है। जिसके विषय —जीव दशा, जीव स्वरूप, कर्मविधि, वस्तु स्वरूप, 'आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्षस्वरूप लोक, परिमाण, कालपरिमाण, शलाकापुरुष, व्रतविधि, योगसाधना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान, चरित्र, भक्ति आदि अनेक हैं उन सबके परिज्ञान का मर्म अखण्ड सहज ज्ञानमात्र स्वका अनुभव करना है। जीव दशायें जानीं, कैसे कैसे विचित्र विढंगे देह होते हैं उन सबकी अवगाहना आदि जानने का परिणाम यही तो है कि अखण्ड सहज ज्ञानमात्र स्वके परिचय बिना ऐसे ऐंसे देहों में बंधना फिरना पड़ता है। यदि इन विडम्बनाओं से बचना है तो अखण्ड सहज ज्ञानमात्र निज का अनुभव करो। कर्म बंधते हैं, विपाक होता है उस समय जीव की क्या अवस्था होती है इस सबके परिज्ञान में तो यह समझा गया कि ये भार अखंड सहज ज्ञानमात्र निज के अनुभव के बिना लद जाते हैं। कर्मभार से मुक्त होना है तो अखण्ड सहज ज्ञानमात्र स्वका अनुभव करो। जीव स्वरूप में यथार्थतया, भूतार्थ दृष्टि से, वस्तुतः अनाद्यनंत सहज चैतन्यमात्र अन्तस्तत्त्व को बताया ही है। लोक परिमाण में लोक का विस्तार बताया उसे जानकर झट यह बुद्धि हो जाती है कि निज सहज स्वरूप के परिज्ञान के बिना ऐसे लोक में परिभ्रमण करना पड़ता है। काल परिमाण से अपनी अनाद्यनंतता का स्पष्ट बोध होता है। इत्यादि सभी विषयों के परिज्ञान का फल तो यही है कि अहित रूप वस्तुओं से हट कर हितमय निज सहज भाव में आये जिन शासन में प्रणीत सभी विषयों का परिज्ञान कर लो। जिन शासन के परिज्ञान का मर्म अखण्ड सहज ज्ञान मात्र स्वका अनुभव करना है।

बाहर के विकल्पों का तो इतना बोझ, खुद का विचार कुछ भी नहीं

बाह्य पदार्थ की व्यवस्था में, संस्था की व्यवस्था में, घर दुकान की व्यवस्था में, सामाजिक समारोह की व्यवस्था में जो प्रकरणरूप हों, कृत्य हों इतने ही विकल्प किये जावें तब भी गनीमत, किन्तु यहाँ तो लोग ऐसी ऐसी कल्पनायें उठाते रहते हैं कि उन सबको बताने लगें तो बताने में भी संकोच हो जाता कहीं कोई पागल न कह बैठे। रात दिन सोते जागते विकल्पों ही विकल्पों का शोर मचा रहता है। बताओ इन विकल्पों में लाभ क्या पा लोगे तेरा किसी से रंच भी तो सम्बन्ध नहीं और पोजीशन सोच सोच कर विकल्पों का बखेड़ा बनाकर अपने को परेशान किये जा रहे हो। इस धुन में सार नहीं है। सार तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म स्पर्श में ही है। यह ज्ञान अपने स्रोतभूत सहजज्ञान स्वभाव का स्पर्श करले याने निकट परिचय करले इसमें तो आत्मा की भलाई है, और स्वच्छन्द होकर जिस विषय में बुद्धि जाने लगे उस विषय में ही दौड़ कर भागे इसमें तो पतन है। प्रियतम आत्मन् ! तेरे आत्मा को यहाँ कोई जानता ही नहीं, लोग जिसे देख कर जान पहिचान करते हैं वह तू नहीं है। तुम तो गुप्त ही गुप्त अपने में प्रवेश पा कर अपने को निरखो और ज्ञानस्वरूप स्वका अनुभव करके निर्मल रहो प्रसन्न रहो। विकल्पों का बोझ बढ़ाने और लादने से तेरी कोई भलाई नहीं है। बहुत रुल चुका, बहुत दुःखी हुआ, अब तो अपने आत्मापर दया कर, तेरी दया इसी में है कि बाह्य विकल्प तोड़कर अपने में समा जा। देख, सोच, समझ, क्या यह कुछ उचित है कि बाहर के विकल्पों का तो इतना बोझ, खुदका विचार कुछ भी नहीं।

अहंकार परकार ममकार परीयकार इन चारों कारों में वस्तुत्व के नाश की मिथ्या कल्पना आत्मघात करने वाली है

पर पदार्थ को अहं बनाना अर्थात् पर पदार्थ को लक्ष्य में लेकर यह मैं हूँ ! ऐसा अभिप्राय बनाना अहंकार कहलाता है, इसमें इस अभिप्रेता ने परका वस्तुत्व का नाश करना चाहा है। इसकी दृष्टि में कुछ नहीं रहा सो परका अस्तित्व नष्ट करना चाहा है। सो इसमें परका अस्तित्व क्या नष्ट करना चाहा है अपने को ही नष्ट कर दिया, क्यों कि इस विचार में पररूप से मैं नहीं हूँ, यह विवेक नष्ट कर दिया सो जब पररूप से मैं हो गया तो मैं स्वयं कुछ नहीं रहा, अतः अहंकार भाव में अपना विनाश कर लिया जाता। अहं को पर रूप बनाना अर्थात् मैं यह हूँ ऐसा पर दृष्टि करके अभिप्राय बनाना परकार है। इसमें इस अभिप्रेताने स्वका वस्तुत्व नष्ट करना चाहा है। इसकी दृष्टि में स्व कुछ नहीं रहा स्व तो पर है यह रहा सो स्वरूप से मैं हूँ यह विवेक न रहने से अपना विघात कर लिया गया है। पर के प्रति सोचना यह मेरा है इस भाव को ममकार कहते हैं। इसमें परका सत्त्व महत्त्व नष्ट करना चाहा है। यह तो मेरा है इसमें स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ सत्त्व (बल) नहीं, यह तो न कुछ, असहाय है, इसका तो मैं स्वामी हूँ, तो इस भाव में इसने परकी स्वतंत्रता खो दी, प्रत्येक पदार्थ खुद खुद का स्वामी है, इस वस्तु स्वातन्त्र्य को उड़ा क्या सकेगा, बुद्धिदृष्टि बहिराशा होने से अपनी स्वतंत्रता ही खो दी गई है। परको लक्ष्य में लेकर 'मैं इसका हूँ' ऐसा भाव करने को परीयकार कहते हैं। इसमें स्वका सत्त्व महत्त्व नष्ट कर देना चाहा है। मैं तो इसका मुझमें स्वयं कुछ सत्त्व महत्त्व नहीं, मैं तो न कुछ, असहाय हूँ, मेरा तो यह स्वामी है, लो इस भाव में स्वयं की स्वतंत्रता खो दी, मैं खुद परिपूर्ण सत् हूँ, मेरा मैं स्वामी हूँ इस स्वातंत्र्य को उड़ा दिया सो स्वयं दीन हीन बन कर अपना घात कर रहा है। अहंकार परकार ममकार परीयकार इन चारों कारों में वस्तुत्व के नाश की मिथ्या कल्पना आत्मघात करने वाली कल्पना है।

आनन्द तो केवल रहने में है

हम सिद्ध भगवान को क्यों पूजते हैं ? यों कि वे केवल हैं। उनमें न राग द्वेषादि विकार हैं, न उनके कर्म रहा है और न ही शरीर है। समस्त बाह्य अन्तर मलों से सर्वथा रहित हैं। ऐसा केवल रहने में उनको परिपूर्ण अनन्त सहज आनन्द का अनुभव रहता है, केवल रहने से उनका ज्ञान त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य गुण पर्याय को निरन्तर जानता रहता है। परिपूर्ण वीतरागता व सर्वज्ञता केवल रहने में है अतः केवलात्मा, परमात्मा हमारे पूज्य हैं, आदर्श हैं। हमारा भी केवल स्वरूप परमात्मा के समान है। हम भी केवल हो सकते हैं। केवल रहने में ही शुद्ध आत्मीय अबाधित स्वायन्त सहज आनन्द है। यद्यपि इस समय स्वरूपतः केवल होकर भी हम अकेवल चल रहे हैं, हममें नाना अशुद्धियाँ हैं तथापि घबड़ाने की बात कुछ नहीं है, क्योंकि शुद्धपन से अन्तः परिचय कर लेने का इतना महान प्रताप है कि वे अशुद्धियाँ शिथिल तो तत्काल हो जाती हैं और शुद्धपन के विषय भूत कैवल्य स्वभाव के आश्रय होने पर पूर्वबद्धकर्म भी अनेक झड़ जाते हैं तथा नव्य बन्ध हीन हो जाता है। जगत के इन दृश्यमान असार पदार्थों के सम्पर्क में क्या सार है। इनसे कुछ भी तो प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, बल्कि आकुलता में ही समय बीतता है। जितना अपने को विशिष्ट मानते जावोगे, जितना विशेष अकेवल बनते जावोगे, मैं विपुल धन संपदा वाला हूँ, विशिष्ट परिवार से विशिष्ट हूँ, मैं बड़ी पोजीशन कीर्ति वाला हूँ इत्यादि रूप से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जितना विशिष्ट मानते जावोगे उतने ही क्लिष्ट संक्लिष्ट होते जावोगे। खूब प्रयोग कर लो, अनुभव करलो अकेवल बन कर और केवल स्वरूप का चिन्तन कर। खुद ही मान जावोगे कि आनन्द तो केवल रहने में है।

एकत्वविभक्त अन्तस्तत्त्व का दर्शन ही मंगलमय दर्शन है

लोक में ऐसा कौन पदार्थ है जिसके दर्शन से संसार के समस्त संकट नष्ट हो जायें। चलो, जरा खोज कर लो। प्रथम तो परिजन, परिकर की बात समझ लो—इनके दर्शन से सम्पर्क से जो कल्पना बनती है वह किसी न किसी पर विषयक बनती है। इज्जत में बढ़ने की, धनिक बनने की, इनकी दृष्टि में श्रेष्ठ जचने की, इनके सम्पर्क से विषय साधन बढ़ा लेने की, इत्यादि प्रेरणायें मिलती हैं जिससे आकुलता बेसुधी आदि फल मिलते हैं, इनका दर्शन मंगलमय दर्शन नहीं। अच्छा दुनिया की नेताओं की बात समझ लो इनके सम्पर्क में तब रह पाते हैं जब कुछ इनकी इज्जत सम्पदा बढ़ाने आदि के काम आवे, सो इसमें कुछ दुनियावी इज्जत मिल भी जावे तो भी इससे कई गुने श्रम विकल्प उनके लिये करने पड़ते हैं और फिर रखा क्या है उस वातावरण में दुनिया सब असार है, तेरा बाह्य की ओर उपयोग रहकर जो विकल्प जाल बनता है, वह तुझे फंसाने वाला है, बरबाद करने वाला है। इनका दर्शन मंगलमय दर्शन नहीं। यही बात पब्लिक के सम्पर्क की है मूढ नानाविध ख्याल श्रम वाली प्रजा के लोग भी क्या हैं ? दुःखी जन्म मरण के संकट वाले हैं। उनके सम्पर्क से भी अलाभ ही पाओगे। अब परमेष्ठी महापुरुषों की बात देखो ये एकत्वविभक्त अन्तस्तत्त्व के दर्शन से स्वयं निर्मल प्रसन्न आनन्दमय हो रहे हैं, परमात्मा तो पूर्ण निर्मल, केवल, अनन्त ज्ञानानन्दमय है। इनका दर्शन पावन है, एकत्वविभक्त अन्तस्तत्त्व के दर्शन के आश्रयभूत है। है ये मुझ से भिन्न पावन आत्मा अतः इनका दर्शन व्यवहारतः मंगलमय दर्शन है। इनके ध्यान के सेवा के प्रसाद से स्वयं के अन्तस्तत्त्व का जो होता है, जो निश्चयतः स्वयं के प्रसाद से होता है यह दर्शन समस्त संसार संकटों को, संकटों के मूल को नष्ट कर देता है। अहो ! यह पावन दर्शन तो मेरा मेरे में ही मिल गया। यह एकत्वविभक्त अन्तस्तत्त्व का दर्शन ही मंगलमय दर्शन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे अन्तः प्रभो ! बिजली सी झाँकी देकर क्यों ओझल हो जाया करते हो

अनादि काल से अनेक दुर्गमनों मे भटक भटक कर इस नरभव में आकर तो मैं आपका परिचय कर पाया नाथ ! अब मेरे ही सर्वस्व होकर, मेरे ही अन्तः विराजमान रहकर भी मुझे दर्शन मिलन के लिये तरसाते हैं। बहुत मिन्नत के बाद बहुत ध्यान चिन्तन के बाद कभी कभी सामने आते हो सो मुझे बड़ी प्रसन्नता, विशुद्ध आनन्द परिणति होती है, किन्तु बिजली सी झाँकी देकर ओझल हो जाया करते हो सो यह लुका छिपौवल का खेल किसने सिखाया नाथ तुमको। अरे भूल गया नाथ, क्या बक गया मैं नाथ, क्षमा करो, क्षमा करो, तुम तो शाश्वत अन्तः प्रकाशमान हो, तुम तो वही के वही, वहीं के वहीं विशुद्ध चिज्ज्योतिस्वरूप सदैव दर्शन देते रहने को विराजे रहते हो, यहाँ मैं (उपयोग) ही बहका हुआ रहने से बहुत समझाये जाने पर बड़ी कठिनाई से आपके दर्शन के लिये तैयार हो पाता हूँ। नाथ ! तुम्हारी सहज सरलता जैसी कुछ वर्दी पहिन कर आपके दर्शन के लिये चलता हूँ जब, और गम्भीरता की चाल चलकर गुप्त सुरक्षित एकत्व के महल में अखण्ड स्वरूप शय्या में व्यापक समाये हुए तुम्हारे दर्शन कर ही पाता हूँ नाथ, कि त्वरित् में ही वासनावश हट कर लौटकर वापिस आ जाता हूँ। आ तो जाता हूँ वापिस मैं प्रभु ! किन्तु आपका माहातम्य, आपके दर्शन का आनन्द यह सब कुछ मेरे चित्त में समाया रहता है, इस कारण बिजली सी झाँकी देकर ओझल हो जाने जैसी बात मुझ पर नहीं होनी चाहिये। अतिपरिचय हो जाने पर फिर मिलन में अटक नहीं हुआ करती। अब तो मेरा अपराध कम है, अंब तो पुकार सुन लो—हे अन्तः प्रभो ! बिजली सी झाँकी देकर क्यों ओझल हो जाया करते हो।

अपना दर्द किसको बतायें कौन मिटायेगा ?

यहाँ तो कोई ऐसा नजर भी नहीं आता जिसको दर्द ना हो, क्लेश न हो, कष्ट न हो। सभी आपत्ति में पड़े हुए हैं इन दुःखियों को अपने ही दर्द भोगने से फुरसत नहीं, यहाँ किसको अपना दर्द बतायें। तो चलो दर्द रहित क्लेश रहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा को ढूँढो, चलो उसके पास। यहाँ जो खासे बड़े बड़े सुने जाते हैं उनको तो गरीबों से भी ज्यादाह कष्ट, उन्हें बता कर मिलेगा क्या, उल्टा मजाक ही करेंगे। तो चलो दुनिया का त्याग करने वाले साधु संन्यासियों के निकट। चलो मगर वहाँ भी अनेक ऐसे हैं कि दुनिया को दिल में बसाये हैं और स्वयं बड़े दुःखी हो रहे हैं। चलो उन्हें छोड़ो, जो संसार शरीर भोगों से विरक्त हैं उनके पास चलो। शान्त ज्ञानी सत् पुरुषों के दर्शन से उनकी सद्वाणी से दर्द तो कुछ कम हुआ, दर्द था कहाँ ? दर्द भ्रम में था, स्वपर भेद की समझ आने से भ्रम दूर हुआ और दर्द भी कम हो गया। ज्ञानप्रकाश होने पर समझ आई कि कोई किसी के सुख दुःख को न करता है न मिटाता है। यह बात सत्य लग रही है। इन संतों को भी दर्द की बात क्या बतायें ये भी तो मेरा दर्द मिटा न सकेंगे। अथवा बताने की क्या जरूरत, ये तो मेरा और सबका दर्द जानते ही हैं, मुझ से भी अधिक स्पष्टता से जानते हैं। प्रभु के पास चलो वे तो सर्व संकटों से सर्व विमुक्त हैं। चलें तो यह बात तो ठीक है। किन्तु वे अपने विशुद्ध ज्ञान आनन्द के अनुभवन में हैं, और फिर वस्तुत्व यही है कि कोई किसी दूसरे की परिणति को नहीं कर सकता। अपना दुःख अपने को स्वयं को ही मिटाना होगा। जान लो, समझ लो, ज्ञान द्वारा भ्रम दूर करके ज्ञान की उपासना से सब क्लेश, संक्लेश, दर्द मिटा लो, बाहर की बात तो बाहर ही स्पष्ट है, यहाँ अपना दर्द किसको बतायें कौन मिटायेगा।

पर का सम्पर्क ही क्लेश है

आत्मन् ! तुम क्लेश से बचना चाहते हो यह तो युक्त है, किन्तु बचने के लिये उपाय करते हो वह जो कि क्लेश का कारण है। क्लेश के कारणों पर विचार कर लो, आखिर मूल यह विदित होगा कि पर का सम्पर्क ही क्लेश है। देखो तुम अपने शुद्ध एकत्व को देखो, अकेले पर को विचारो, तुम्हें आनन्द मिलेगा तुम हो अपने सत्त्व से केवल अपने आप शुद्ध ज्ञानप्रकाशरूप हो जिसमें विशुद्ध आह्लाद असीम निस्तरंग भरा पड़ा हुआ है जहाँ पूर्ण निराकुलता है। अब पर के सम्पर्क की बात परख लो, यहाँ लोगों से सम्पर्क बनाया है किसी से कुटुम्बरूप में किसी से मित्ररूप में किसी से इज्जत करने वाले लोक समुदाय के रूप में सो उनका फल देख लो, अपनी बेहोशी बन गई है, बढ़ गई है, कार्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्प, प्रोग्राम इतने चित्त में रहते हैं कि चित्त उस बोझ के मारे परेशान हो रहा है। शरीर सम्पर्क की बात देख लो, शरीर के सम्बन्ध से ही तो जन्म, मरण, रोग, बुढ़ापा, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, अपमान आदि के सारे क्लेश सहने पड़ रहे हैं। कर्म सम्पर्क की बात देखो सर्व उपद्रवों का निमित्त कारण कर्म का उदय है, इसके उदय में लोकसम्पर्कज व देहसम्पर्कज क्लेश तो होते ही हैं, राग द्वेष ईर्ष्या विकल्प आदि आन्तरिक क्लेश भी हो रहे हैं। अब सूक्ष्म पर सम्पर्क भी देखिये, आत्मन् ! तुम सहज चित्स्वरूपमात्र हो, तुम्हारे प्रतिभास में सब ज्ञेय तत्त्व आते हैं यह तुम्हारी स्वच्छता का प्रताप है। ये राग द्वेषादि विकार तुम्हारे स्वरूप में नहीं हैं, कर्मोदय के निमित्त से तुममें आते हैं, ये परभाव हैं। इन परभावों को उपयोग पकड़ता है अपनाता है यह पर सम्पर्क उक्त सर्व उपद्रवों का मूल कारण बन जाता है और यह पर सम्पर्क महा उपद्रव रूप है स्वयं यह आत्मा निरूप द्रव्य है। इसमें क्लेश नहीं है। स्वयं क्लेश रहित है पर का सम्पर्क ही क्लेश है।

ज्ञान स्वरूप निज आत्मतत्त्व निज की दृष्टि में रहे ऐसा उपयोग बनाओ

हे आत्मन् ! तुम ज्ञानस्वरूप हो इस कारण कुछ न कुछ पदार्थ तुम्हारे ज्ञान में आते ही रहते हैं। पदार्थ ज्ञान में आते रहते हैं इससे कुछ बुराई नहीं, किन्तु ज्ञान में आते हैं तो सब पदार्थ ज्ञान में आवें। कुछ ही पदार्थ ज्ञान में आते इसमें विडम्बना बन रही हैं, राग द्वेष के भाव बन रहे हैं, आशा बन बन कर बरबादी ढा रही है। अथवा एक भी पदार्थ ज्ञान में मत आओ तो शान्ति से समय गुजर जायेगा, न ज्ञान में आया कुछ, न विकल्प करना पड़े कुछ। मगर इस समय विकट परिस्थिति बन रही है, न तो यह क्षमता है कि सर्व पदार्थ ज्ञान में आवें और न यह धीरता है कि कुछ भी पदार्थ ज्ञान में न आवें। ऐसी परिस्थिति में अब एक उपाय है संकटों से बच निकलने का कि तुम निज स्वरूप को जानने में लग जाओ। तुम ज्ञानानन्द स्वरूप हो, इसमें भी आनन्द स्वरूप को देखने में उपयोग लगाने की नहीं कही जा रही, क्योंकि उसको देखना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहोगे तो दिखेगा, वह तो विशुद्ध ज्ञान का फल है। ज्ञानस्वरूप को ज्ञान द्वारा निरखने में ज्ञान का अनुभव होगा और तत्काल विशुद्ध आनन्द का भी लाभ होगा। देखो अन्यत्र कहीं उपयोग बनाने में लाभ नहीं है। यदि शाश्वत सत्य शान्ति चाहते हो तो ज्ञानस्वरूप निज आत्मतत्त्व निज की दृष्टि में रहे ऐसा उपयोग बनाओ।

असमानजातीय द्रव्यपर्यायरूप देहवेश की अपनायत मिथ्या भाव है

कभी घर कुटुम्ब मित्रजन आदि सब कुछ भी छोड़ दिये और उपवास ग्रीष्मता सहन शीत सहन आदि तपश्चरण भी किये, किन्तु मैं साधु हूँ, मैं त्यागी हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ देह के वश में अपनायत की तो इतना छोड़छाड़ करने पर भी मिथ्याभाव ही रहा। समस्या कुछ न थी और कठिन बन गई। इस देह में जीव का इतना तीव्र आत्माध्यास हो गया कि निकलने की कोई जगह ही नहीं हाय कितना जबर्दस्त अन्याय है आत्मप्रभु पर। बाह्य जगत से कुछ लेन नहीं, कुछ देन नहीं, किन्तु उन पर अपने को कुर्बान किये जा रहे हैं। बता किस लिये इतना धन संग्रह करता, किसको देने के लिये मरता, यहाँ कौन तेरा रक्षक है, किसकी दृष्टि में अच्छा कहलाना चाहता है। अरे सब असार बातें हैं, सबसे उपेक्षा कर, अपने में समाये जाने की धुन रख। देह के साथ तू घिसटना चाहता है, इस मांस लोथड़े में तुझे क्यों प्यार हो रहा है ? भूख प्यास लगती है और इसे खिलाने पिलाने से सुख मिलता है क्या इस कारण तुझे देह में प्यार हो गया है तो अरे नादान सुन, नादान न बन, ऐसा उपाय कर कि तू ज्ञानमात्र परमार्थ आत्मा आत्मा ही केवल रह जाय, यह शरीर ही न मिले, फिर भूख प्यास ही न होती, और इतना ही नहीं, फिर तो रंचमात्र भी संकट न रहेगा, सदाकाल अनन्त सुख भोगेगा। देख ज्ञानमात्र स्वतत्त्व आत्मा मान यही आनन्द का धाम है, असमानजातीय द्रव्य पर्यायरूप देहवेश की अपनायत मिथ्याभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा मन अब आत्मा राम से लगा, अब बाहर का सुहाना कम हो गया है और निश्चय हो गया है कि अब कुछ बाह्य सुहायेगा भी नहीं, लो सर्वसंकट मिटे

अहा ! सर्व समृद्धि मेरी यही तो है। अकिंचन ज्ञान प्रकाशमात्र इस निज को इस संकल्प के पश्चात् देखने में अपूर्व लाभ मिला। किस संकल्प के पश्चात् ? कि लोक का अणु अणु, प्रदेश प्रदेश, जर्रा जर्रा, मेरा रंच भी कुछ नहीं है, मुझे किसी से कुछ नहीं चाहिये, मुझे किसी को कुछ जचाना नहीं न्याय का जो स्नेह है जीवों पर उतना ही रहो और वह भी मिटो, पर से पूर्ण उपेक्षा का उपयोग बनने पर जो आराम मिला, जो विश्राम मिला वह अलौकिक वैभव मिला। उसका तो रसिक से सम्बन्ध है, धनिक हो, या अधनिक। धनिक को भी अकिंचन बनना पड़ेगा तो यह आत्मीय वैभव मिलेगा। फिर धन से लाभ क्या ? अरे किसे अपनी शान दिखाना चाहता है, कौन है तेरा, तेरा केवल तू ही है। सच मान रंच मा: भी धन से तेरा लाभ नहीं। पर के उपकार के लिये भी तू धन का प्रसंग रखेगा, बनावेगा तो भी आबाद न हो पावेगा। प्यारे खुद के प्यारे, खुद प्यारे हित की बात भी तुझे न सुहायेगी क्या ? देख आत्मीय आनन्द में मग्न रहेगा, स्वतंत्र रहेगा, धीर होगा, गम्भीर रहेगा आत्मबली रहेगा, बस इतना ही तुझे पहिले करना है कि पर को पर, बाह्य जानकर उनसे उपयोग मोड़ना है, अनादि से ही तो पर में लिपटा चला आया है, मिला क्या ? रहा है अब तक हीन भिखारी ही। अब जाग, अपने में अनुभव कर— मैं अकिंचन, ज्ञानमात्र हूँ, मेरा वैभव सर्वस्व मेरे में है, मैं कृतार्थ हूँ, अमृत को छोड़ कर विषपान करने कौन जाय। मेरा मन अब आत्माराम से लगा, अब बाहर का सुहाना कम हो गया है और निश्चय है कि अब कुछ बाह्य सुहायेगा ही नहीं, लो सर्व संकट मिटे।

शान्ति अपने का अकिंचन अनुभव करने पर मिलेगी

बता तू सब कुछ बना, तेरे पर रीझा कौन ? अनादि से अपरिमित काल तो निगोद बन बन कर बीता। वहाँ रीझे कौन ? वहाँ से निकला पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, पत्र, फूल बना सो कोई इन पर रीझा, तो क्या इन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आराम देने के लिये रीझा, इनको खोदने, तपाने, खाने, पीने के लिये अपने सांसारिक सुख के लिये उन्हें बरबाद करने के लिये रीझा। यह क्या रीझना कहलाता है। फल अच्छा लगा सो तोड़ा, चीरा, पकाया, भूना, ऐसी बातें क्या रीझने में शामिल की जावेंगी। केंचुवा, कीड़ा, पतंगा, मेंढक, मछली, पशु, पक्षी, आदि बना तो उस पर कौन रीझा। रीझा भी कोई तो उन्हें मारने, खाने, दूसरों को मारने के लिये मराने आदि के लिये ही तो कषायी बधक लोग रीझे। यह क्या कुछ रीझने में शामिल है। अब मनुष्य बना तो इसमें अब यह और और कुछ भी बन ठन रहा है। नेता बनता है यह, तो इस पर रीझता कौन है ? लोग तो अपने आराम के लिये जरासी कभी कभी शाबासी देकर उसे उल्लू बना रहे हैं, यह कोई वास्तविक रिझान है। धंनी बनता है कोई तो इस पर रीझता कौन है। लोग तो अपने स्वार्थवश कुछ सम्बन्ध बनाते हैं, यह तो बेचारा जीवन में मर पच कर, धन जोड़ कर सब कुछ एक दम चल देगा। तो अब समझ लो अपने को कैसा बनाने में शान्ति मिलेगी। अरे कुछ भी बनने में शान्ति नहीं मिलेगी, शान्ति अपने को अकिंचन अनुभव करने पर मिलेगी।

जीवों के सहज स्वरूप पर दृष्टि देकर उदारता की वृत्ति बनाओ

सभी जीव एक समान स्वरूप वाले हैं। सबका स्वरूप सहज चैतन्य मात्र है। किसी भी जीव का अन्य पदार्थों में कुछ नहीं है। जो जीव अज्ञान आवरण से आच्छादित हैं उन्हें बाह्य पदार्थ रुचते हैं तो उसमें उनका महत्त्व नहीं बढ़ जाता। वे इसी विकल्प से सुखी होते हैं तो तेरा क्या जाता जिससे कि दूसरे के उपभोग तुम्हें सुहाते नहीं, वे तो बेचारे संसार संकट में पड़ रहे हैं, बढ़ रहे हैं जो जिस प्रकार सुखी होता हो होओ। यदि विशेष उदारता जगी है, परमार्थ उदारता जगी है तो उनके प्रति एक भावना यह बना लो कि इनको निज एकत्वस्वरूप का भी भान हो जाय तो इनका सकल संकट सदा के लिये टल जाय। एक स्वरूप आत्माओं को निरख कर उनकी ज्ञानानन्दवृद्धि की भावना करो। एक उदारता निज ज्ञानानन्द की किसी सीमा तक वृद्धि होने में बनती हैं। अतः निज ज्ञानानन्दस्वरूप की सम्हाल कर अपने को सुखी बनाओ। अपने को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय कषायों के तुच्छ परिणामों से हटा कर अविकार ज्ञान स्वभाव में जोड़ना सो अपने प्रति उदारता वर्तना है, अपनी उदारता की वृत्ति कुछ आने पर अन्य जीवों के प्रति लौकिक और अलौकिक उचित उदारता बनती है। अनुदारता का कारण विषय कषाय के परिणामों का लगाव है इसी से न तो अपने प्रति उदारता जगती है और न अन्य जीवों के प्रति उदारता जगती है। अनुदारता में लोभ में संसरण परम्परा बढ़ती है। उदारता में पवित्र परिणति में शान्ति का वातावरण मिलता है। उदारता की परिणति पाने का उपाय जीवों के अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण चैतन्य स्वभाव पर उपयोग देना है। सो जीवों के सहज स्वरूप पर दृष्टि देकर उदारता की वृत्ति बनाओ।

अविकार ज्ञान स्वरूप को अपना कर अबाधित हो जाओ

हमको बाधायें आती रहती हैं, वे बाधायें क्या हैं ? इच्छायें होती हैं और उनके माफिक बाह्यार्थ परिणति नहीं देख पाते हैं सो हम वहाँ बाधा समझ लेते हैं। सो जब तक इच्छायें हैं तब तक बाधायें हैं ऐसा निर्णय रख लीजिये। यदि आप अबाधित रहना चाहते हैं तो इच्छाओं का त्याग कर दीजिये। इच्छायें कैसे मिटें इसका उपाय समझ लीजिये। इच्छायें होती हैं पर पदार्थ से अपना बड़प्पन समझने से। पर पदार्थ से अपना बड़प्पन समझना अज्ञानता है, क्योंकि पर पदार्थ अपने आत्मा से अत्यन्त भिन्न है, किसी भी पर पदार्थ से मुझमें कुछ परिणति नहीं बनती, न किसी पर से मेरा सुधार है और न किसी पर से मेरा बिगाड़ है। मेरा सुधार प्रारम्भ होने में कोई विशुद्ध पर आश्रय बन जाय और मेरा बिगाड़ होने में कोई पर आश्रय बन जाय, लेकिन सुधार बिगाड़ स्वयं ज्ञान परिणमन पर आधारित है। वस्तु का स्वरूप तो है ऐसा और माना जा रहा विपरीत, सो इस अज्ञान में इच्छायें उठेंगी ही, इच्छायें उठीं और बाधायें आईं। तब इन बाधाओं को इच्छाओं को दूर करने का उपाय अब सम्यग्ज्ञान समझ में आया। मैं विशुद्ध चैतन्य मात्र हूँ इच्छा राग आदि विकार मेरे स्वरूप नहीं हैं। चैतन्यस्वच्छता है ही सो अज्ञान में उपधिसंसर्ग में इच्छा परिणति होने लगती है। अपने अविकार ज्ञानस्वरूप को देख, क्यों व्यर्थ में तू दुःखी हो रहा है। बाहर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से तेरा सम्बन्ध नहीं, अज्ञान में बाहर का सम्बन्ध मानकर दुःखी होते हो। तेरा स्वरूप शुद्ध प्रतिभास मात्र है। अविकार ज्ञानस्वरूप को अपना कर अबाधित हो जावो।

निरहंकारता व निर्लोभता शान्ति का अपूर्व साधन है

जब पर पदार्थ में अहंकार भाव जगता है, पर पदार्थ से अपना बड़प्पन जँचता है, देह को अपना आत्मा समझने की बुद्धि चलती है तब बाह्य की जरा जरा सी घटना पर अशान्ति बन जाती है, क्रोध होने का भी मूल कारण अहंकार है। देखिये क्रोध कब आता है, जब देह को माना यह मैं तब देह की सम्हाल तो अथक यत्न करके भी रखनी होगी, विषयों का योग जुड़ाना अत्यावश्यक समझ लिया जायेगा और जैसा चाहा वैसा होता नहीं उससे उल्टा भी हो जाता सो अपने पर क्रोध आने लगता। क्रोध कब आता? जब देहको माना यह मैं तब उसे अपने याने देह के सम्मान की पड़ जाती है, जो नाम धरा गया देह का उस नाम की पड़ जाती है, किन्तु इच्छानुसार होता कुछ नहीं सो क्रोध आने लगता है। तो क्रोध का मूल यह अहंकार रहा। अहंकार और क्रोध में शान्ति कहाँ। इसी प्रकार जब लोभ की वृत्ति जगती है तो परपदार्थ के संचय में धुनि बन जाती है सो प्रथम तो यह बात है कि पर संचय का आशय अज्ञान है, अज्ञान में शान्ति कहाँ, दूसरी यह बात है कि परसंचय होना अपने वशकी बात तो नहीं सो इच्छानुकूल परसंचय होता नहीं उसमें यह अज्ञानी जीव महान् क्लेश मानता है। मायाचार छल कपट का भी मूल लोभ है। छल कपट किया जाता है कब ? जब किसी पर पदार्थ की प्राप्ति का लोभ हो गया हो या किसी पोजीशन सम्मान आदि पाने का लोभ उठ खड़ा हो गया हो तब उसकी प्राप्ति के लिये यत्न कुछ छल कपट भी समझ लिया जाता है, कायर पुरुष तो छल कपट का ही साधन बनाया करते हैं इष्ट लाभ के लिये। सो छल कपट में शान्ति कहाँ अहंकार और लोभ का परिहार कर लो। निरहंकारता व निर्लोभिता शांति का अपूर्व साधन है।

परमहित रूप ब्रह्म अकिंचन्य भाव ! जयवंत प्रवर्तो

आत्मा का हित शान्ति है, शान्ति वहीं होती जहाँ आकुलता नहीं हो। अनाकुलता वहीं संभव है जहाँ आकुलता का कारणभूत विकल्प न हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकुलता तो उत्पादक विकल्प है अनहोनी को होनी करने का। भाव लोक में जितने पदार्थ हैं उनमें केवल एक मैं तो मैं हूँ अर्थात् चित्स्वरूप अस्तित्व करि तन्मय यह निज मात्र केवल मैं हूँ किन्तु इस निजस्वरूप से अतिरिक्त अनन्तानन्त जीव, समस्त अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य ये सब पर हैं मुझसे भिन्न हैं। मेरा परमें अत्यन्ताभाव है। मेरा पर में अत्यन्ताभाव है परका मेरे में अत्यन्ताभाव है इसका भाव यह हुआ कि मैं अपने ही द्रव्य क्षेत्र काल भाव से हूँ, समस्त पर वे अपने अपने ही द्रव्य क्षेत्रकाल भाव से हैं। मैं त्रिकाल भी दूसरों के गुणों से नहीं हूँ और न कोई पर मेरे गुण से है। मैं त्रिकाल भी दूसरे की परिणति से नहीं परिणम सकता और न कोई पर मेरी परिणति से परिणम सकता है। वस्तुस्थिति तो ऐसी है जिससे सिद्ध है कि मेरा मेरे सिवाय लोक में अन्य कुछ है ही नहीं, किन्तु अज्ञान वश जब यह सोचा जाता है कि मेरा धन है, घर है, आदिक तो यह अनहोनी को होनी करने का आशय ही तो कहलाया अनहोनी कभी होनी होती नहीं। अज्ञान में यह सोचा जाता है कि मैं मकान बनाऊँगा लोगों से कीर्ति गान कराऊंगा आदि तो यह अनहोनी को होनी करने का ही तो आशय हुआ, मैं किसी भी पर में कुछ कर ही नहीं सकता। अज्ञान में यह सोचा जाता है कि मैं अमुक पुद्गल को (विषय को) भोगूँगा सो यह भी अनहोनी को होनी करने का आशय बनाना है क्योंकि मैं अपनी ही परिणति को भोग सकता हूँ, अनुभव सकता हूँ, अन्य को नहीं। पर को व पर से अपना कुछ समझना, संबंध बनाना यह अहितरूप भाव है। परमहित रूप तो अकिंचन भाव है। जहाँ परमब्रह्म स्वरूप अकिंचन सहज चित्त अन्तस्तत्त्व का दर्शन होता है वहाँ सारे भ्रम और संकट समाप्त हो जाते हैं। यह अकिंचन धर्म हमें निज आनन्द धाम में पहुँचाता है। हे अकिंचन्य भाव तुम ही परम हित और शान्ति के प्रदाता हो। परमहित रूप परमब्रह्म अकिंचन्य भाव जयवंत प्रवर्तो।

मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसे अनुभव में वर्तने का यत्न करो

ज्ञानमात्र तत्त्व का स्वरूप जानकर उसमें उपयोग लगाना यह तो ज्ञानमात्र अनुभवने का सीधा यत्न है ही, किन्तु जिन्हें यह यत्न कुछ कठिन लगे, शीघ्र सीधे ज्ञानमात्र तत्त्व को निहारना मुश्किल पड़े तो उन्हें एक मार्ग यह मिल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता है अन्तर्दृष्टि करके देखो मुझमें रूप, रस, गंध नहीं है, इस कारण यह मैं अमूर्त हूँ। अपनी अमूर्तता का चिन्तन करें। मैं आकाशवत् निर्लेप अमूर्त आत्मा हूँ। अमूर्त स्वरूप का लगन के साथ एकाग्र चिन्तन चलेगा तो वहाँ अन्य परविषयक विकल्प न होने से और स्वयं ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञानमात्र तत्त्व का दर्शन करने लगेगा तो यह यत्न जनसाधारण के लिये भी सुगम पड़ सकता है। अपने को अमूर्त निरखने में अन्य कुछ निरखा न गया सो यह ज्ञान भाव स्वयं को निरख लेता है। ज्ञानमात्र अनुभवने का एक तीसरा तरीका देखिये विकल्प करते करते थक गये सो अब सबका सोचना बन्द कर दो, कुछ सोचो ही नहीं, दिल को, उपयोग को पूरा विश्राम दो। जब कुछ सोचना ही न रहेगा तब उपयोग तो विश्राम में रहता हुआ भी गंभीरता से सामान्यरूप से अपना काम तो करेगा ही, स्वरूप को कहाँ टाला जा सकता है, स्वरूप है ज्ञानमात्र। सो उस परमविश्राम की दशा में बिना सिखाये, बिना बहकाये, बिना चलाये, स्वयं सत्य शाश्वत परमार्थ ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व का दर्शन होगा। अब ज्ञानमात्र अनुभवने के चौथा तरीका पर भी चलकर देखिये सर्व उपाधियों से विमुक्त, पूर्णविकसित चैतन्यस्वरूप सिद्धप्रभु के स्वरूप का, अरइंत प्रभु के अनन्त वैभव का ध्यान करने लग जाइयेगा, ऐसी लगन से ध्यान कीजिये कि केवल वही चैतन्यस्वरूप तेरी दृष्टि में रहे। जब चैतन्यस्वरूप उपयोग में चैतन्य स्वरूप निरंजन परमात्मतत्त्व बस रहा है तो वहाँ साधक निजस्वरूप में आदर्श प्रभु स्वरूप की समता होने लगती है। और तब अभेदोपासना बनने लगती है। इसी सिलसिले में ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व का दर्शन होता है ज्ञानमात्र अनुभवने में ही परम कल्याण पाओगे। अतः मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसे अनुभव में वर्तने का यत्न करो।

विकार और आत्मस्वभाव में भेदज्ञान करो, अन्यथा संसरण नहीं मिटेगा।

संसार में संसरण करने का जन्म मरण करते रहने का कारण क्या है ? केवल निज में न रह सकना। जब हम पर में रुचि रखते हैं, पर में संतोष करते हैं हम में प्रभुता तो है ही हमारा प्रभुत्व हमारी रुचि के अनुसार पनप जाता है अर्थात् पर में रुचि करने से पर का सम्पर्क मिलता रहता है। सारा क्लेश पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पर्क में ही है। शरीर का सम्बन्ध पर सम्पर्क ही तो है। शरीर को आपा माना, शरीर से भिन्न अपने को समझ न पाया इससे शरीर के मिलने का तांता बन गया है। बाह्य दृष्टि ही सारी बिडम्बना है। अहो, कैसी व्यर्थ की बाह्य दृष्टि ? नितान्त असार ज्ञानमात्र इस मुक्त अन्तस्तत्त्व का कौन परिचयी है। जो लोग मेरी निन्दा करते हैं वे मुझे तो जानते ही नहीं, उनका मुझे क्यों बुरा लगे व्यवहार अच्छा है, मेरा तो कुछ बिगड़ता नहीं, वे और सुखी हो जाते हैं, होने दो सुखी, कभी सत्यसुख से सुख, कभी सत्य सुख से भी सुखी हो जावे ऐसी सुमति आवे। देखो तुम अपने विकार भावों से राग द्वेषादि भावों से अपने स्वरूप को न्यारा निरखते रहोगे तो अनेक संकटों से छूट जावोगे। देखो तुम तो सहज चित्स्वरूप हो, सहज पवित्र हो, ये रागादिक विकार अचेतन हैं, कलुषित हैं इन्हें अपना स्वरूप न समझो। ये विकल्प विचार अहंकार, प्रत्यय ये सब तुम नहीं हो, तुम सहज चित्स्वरूपमात्र हो, इन्हें आत्मस्वरूप न समझो। इस बाह्य जगत से हट कर अपने अन्तः पवित्र चित्स्वभाव के निकट आवो, उपयोग बनाओ, तुम स्वभावमात्र हो, स्वभाव ज्ञानानन्द मय है। विकार और आत्मस्वभाव में भेदज्ञान करो, अन्यथा संसरण नहीं मिटेगा।

आत्मन् ! तुम हो और परिणमते रहते हो, इससे आगे यहाँ तेरा क्या ?

किसी भी पदार्थ का किसी अन्य में तादात्म्य नहीं है। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ में अपना गुण, शक्ति, परिणमन, प्रभाव आदि कुछ भी नहीं रख सकता फिर एक दूसरे का कर्ता कैसे हो सकता, करने का अर्थ क्या ? कोई दूसरे में कुछ परिणम सकता नहीं, सभी स्वयं में स्वयं परिणमते हैं, तब फिर खुद में करना क्या हुआ, परमें करना बनता नहीं। तथ्य तो यह है कि करने शब्द का प्रयोग अज्ञानी मिथ्या वासित जनों की ओर से हुआ है, फिर अज्ञानी जनों के, भद्र मिथ्या दृष्टि जनों के प्रतिबोध के लिये ऋषि संत जनों ने ग्रन्थ रचना की है व उपदेश दिये हैं सो अज्ञानियों की भाषा में, शब्द के प्रयोग करके समझाना पड़ा है कि जैसा प्राणी समझते हैं कि मैं परको करता हूँ सो वे परको नहीं करते हैं, वे खुद खुद का ही परिणमन कर सकते हैं। वस्तु की ओर से देखो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो वस्तु है, वस्तु अपने स्वरूप से है परके स्वरूप से नहीं, वस्तु निरन्तर परिणमती रहती है याने वस्तु में नवीन क्षण की दशा होना पुराने क्षण की दशा विलीन होना यह होता रहता है, चाहे वस्तु के अनेक परिणमनों में यह परिवर्तन समझ में न आये और स्वभाव परिणमन में तो उत्पाद व्यय समझ में आना तो कठिन है तो भी पारखीजन समझते ही हैं कि समस्त वस्तुवों में उत्पाद व्यय होता ही रहता है अन्यथा ध्रौव्य भी न रह सकेगा, वस्तु अपने स्वरूप से परिणमती है परके स्वरूप से नहीं परिणमती। यह अटल नियम तुम में भी घटित होता है इस कारण तुम्हारा तुम से बाहर कुछ नहीं तुम्हारे सर्वस्व तुम ही हो। इस तथ्य को अन्तर्दृष्टि करके फिर सोचो हे आत्मन् ! तुम हो और परिणमते रहते हो, इससे आगे यहाँ तेरा क्या !

बाह्य व्यवस्था के विकल्प तो बहुत करते, कुछ आत्मव्यवस्था का भी चिन्तन करो

परिवार जनों की, परिकर में रहने वाले जनों की, मित्र जनों की व्यवस्था सोचना यह तो प्रकट व्यर्थ बाह्य विकल्प है ही, किन्तु संस्था का उद्धार सोचना, साहित्य का प्रसार सोचना आदि भी बाह्य विकल्प है और स्वयं हित की दृष्टि से वे विकल्प भी व्यर्थ हैं। ज्ञान प्रचार के लक्ष्य से होने वाले संस्था विकास आदि के विकल्प इतने मात्र हित में सहायक हैं कि विषय कषाय के खोटे विकल्पों से बच जाते हैं। फिर भी आत्मदर्शन में बाधारूप हैं भले की ज्यादह अटक न डालने से आत्मदर्शन की पात्रता हो जाय, किन्तु उस विकल्प के काल में तो बाधारूप ही हैं। देखो नाना विचारों को बना बना बाह्य पदार्थों की व्यवस्था के विकल्प बहुत किये जा रहे हैं, मगर यह भी सोचा कि इस विकल्प चक्की के बीच मेरी क्या दशा हो रही है। खुद क्लेश संक्लेश में पड़ रहा है खुद खुद को बरबाद किये जा रहा है। आत्मन् ! अब अपनी भी सुध लो। देखो प्यारे ! तुम्हारा लोक में अन्य कोई भी नहीं है, जिन को चित में रख कर विकल्पों की इतनी तेज घुड़ दौड़ मचाया करते हो ये सब अत्यन्त पृथक हैं। विकल्पों में रहे तो तुम्हारा हाल क्या होगा, मरण करो जन्म लो, मरण करो जन्म लो, यही ताता रहेगा, जन्म में भी कैसे जन्मोगे सो पेड़, आग, कीड़े,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मकोड़े, पशु, पक्षी आदि देखकर अन्दाज कर लो। प्रियतम ! अब अपने को न सताओ, दृढ़ श्रद्धान के साथ अपने ज्ञानानन्द स्वभाव के निकट आवो और इस अन्तस्तत्त्व में अपना उपयोग रमा कर अपनी उत्तम व्यवस्था न करलो। बाह्य व्यवस्था के विकल्प तो बहुत करते कुछ आत्म व्यवस्था का चिन्तन करो।

काम एक ही पड़ा है करने को, रागादि से हटकर ज्ञानमात्र स्व में उपयोग बनाये रहना

किसी भी वस्तु अथवा भावके राग में कल्याण नहीं, शान्ति नहीं। अब तक अनगिनते क्या अनन्ते यत्न कर डाले अनादि काल से अनन्ते भव पा कर कुछ कल्याण न हुआ, ज्यौं का त्यौं कलुषित आकुलित बना रहा। वह कोई शान्ति का विधान ही न था जो जो कुछ अब तक किया। मोह अवस्था में ऐसा लगता है कि मैंने बहुत काम करना है। बहुत काम क्या कर डाले, एक ही तो काम किया कि परका आश्रय बना कर विकल्प में उपयोग लगाया। वे पर नाना हैं इस कारण आश्रय भेद की अपेक्षा नाना काम कहे जाते हैं, अन्तः देखो तो विकल्प में उपयोग लगाया यही किया। तथा मोह वृत्ति चलती रहेगी तो यही करेगा। इसमें सार कुछ न पाया न पावोगे। यह तो भ्रम है, अज्ञान है। हे आत्मन् ! परसे तो कुछ सम्बन्ध है नहीं, परसे तो कुछ लेना देना होता नहीं, मायामय विकल्प में राजी हो हो कर अपने को बरबाद कर डाला। अब चेतो, देखो यदि शान्ति चाहते हो, शुद्ध रहना चाहते हो, संकट मुक्त होना चाहते हो तो समस्त असार पर पदार्थों की, पर भावों की कांक्षा छोड़ कर अपने निज अन्तर में देखो अपने को। तुम्हारी दुनिया इतनी ही है जो तेरा स्वरूप है अस्तित्व है। यहाँ ही तुझे अपनी शान्ति का काम करना है वह काम भी विकट नहीं, सरल है; नाना नहीं, एक है। शान्ति का संदर्भ चाहते हो तो देखो काम एक ही पड़ा है करने को, रागादि से हट कर ज्ञानमात्र स्व में उपयोग बनाये रहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रागादि से हट कर ज्ञानमात्र स्वरूप में आने का उपाय सम्यग्ज्ञान है

अपनी वास्तविकता समझने के लिये मुकाबला करने को तेरे सामने दो भाव हैं— (१) अपना ज्ञानस्वभाव, (२) रागादि विकारभाव। ज्ञान स्वभाव तो जीवका स्वरूप है, शाश्वत प्राण है, किन्तु रागादि विकार जीव का अस्वरूप है, क्षणिक भाव है, जीव में निबद्ध हुआ है जीव को बरबाद करने के लिये। विकार सारभूत नहीं, ज्ञानमात्र वर्तना यही सारभूत है। ज्ञानमात्र स्वरूप में उपयोग रखने में तेरा सर्वस्व कल्याण है। हे आत्मन् ! तुम रागादिक विकल्प में रहकर राजी होना चाहते हो सो यह तो बताओ कि रागादिक विकल्प खुद सशरण हैं मजबूत हैं स्थायी हैं या नहीं ? ये विकल्प खुद सशरण तो हैं नहीं अशरण हैं, ये आते हैं क्षण भरके लिये दूसरे क्षण भी ये रह सकते नहीं, भले ही नये नये विकल्पों के आने का तांता बना रहे, पर हैं वे सब के सब अशरण। ये विकल्प मायारूप भी हैं ये जीव के स्वके भाव नहीं कर्मादिक परके परिणमन नहीं फिर भी झलक इनकी जीव में हो रही सो ये मायारूप भाव हैं। आत्मा का ज्ञान स्वभाव स्वका शाश्वत सहज भाव है स्वयं सशरण है और परमार्थ भूत है। रागादि विकल्प दुःखरूप हैं व आगामी दुःखों के कारण हैं, किन्तु ज्ञान स्वभाव स्वयं आनन्दमय है आनन्द परम्परा बनाये रहने का कारण है। ऐसा सम्यक् ज्ञान जब प्रकट होता है तो जीव विकल्पों से हट जाता है और इसका उपयोग सशरण स्थायी परमार्थ भूत आनन्द स्वरूप सहज़ ज्ञान स्वभाव में रमने लगता है। यही परम हित है, वस्तुतः धर्म पालन है। यही रागादि से हटकर ज्ञान स्वरूप में आने की स्थिति है। इस सर्वहित का श्रेय सम्यग्ज्ञान को है। रागादि से हटकर ज्ञान मात्र स्वरूप में आने का उपाय सम्यग्ज्ञान है।

बाह्य में तुम्हारा कुछ इष्ट (हितरूप) है नहीं, व्यर्थ क्यों परेशान होते हो

जिस पर तुम राग करते हो वह तुम्हारा हितरूप नहीं। कोई भी जीव अपना ही कुछ करता है और चाहता है, तुम्हारा कुछ न कर सकता है न चाहता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आप में परिणमन करता है अन्य में नहीं। सो इच्छारूप परिणमन जिस आत्मा का हैं उस इच्छा का विषय भी आत्मा निश्चयतः नहीं हो सकता है। इससे सिद्ध है कि कोई भी किसी दूसरे का कुछ कर नहीं सकता। फिर तेरे से बाहर क्या हितरूप है। हाय ! कितना विकट कष्ट है कि लेन देन नहीं, कुछ सम्बन्ध नहीं, फिर भी परको विषय बनाकर इतनी परेशानी उठाई जा रही है। प्रभुसम प्रभुस्वरूपी प्रियतम आत्मन् ! आकिंचन्य भाव ही तो अमृत है। दुनिया से तू चाहता क्या है, अहो चाह ही तो विष हैं। तू विष को चाह चाह कर पीना चाहता है, चाह विष पी पीकर प्रतिक्षण भवमरण करता जा रहा है फिर भी चाह विष को तू छोड़ना नहीं चाहता। प्रश्न अवश्य सामने है यह कि चाहविष को छोड़ने का संकल्प करके रहा कहाँ जाय। शहरों में चाहका वातावरण है, गाँव में प्रज्ञों का अनिवास है, जैन त्यागियों के कब्जे वाले आश्रमों का हाल ही विचित्र है सिवाय खाने व देहाराम के और दूसरा लक्ष्य नहीं है। उनके बीच रहकर हाथ धोने का पानी भी नहीं मिल सकता उनका अतिथिसंविभाग व्रत तो मर ही चुका है, गुफाओं में रहने को अनुकूल समय नहीं। खैर, अध्यात्मरसिक एक दो ही का सत्संग रखो। अन्य कुछ उपाय बनता नहीं। बाह्य से तो मुख मोड़ना ही पड़ेगा। बाह्य में तुम्हारा कुछ इष्ट (हितरूप) है नहीं, व्यर्थ क्यों परेशान होते हो।

कीर्तिसाधन के स्थान को पसंद करना पाप भाव है इसका फल बुरा है

आजकल गृहस्थ जन सोचते हैं कि कहीं कभी तीर्थस्थान पर भी रहा जाय, यह चिन्तन तो उनके अनुकूल सही बैठता है वे संक्लेश के साधन से हट कर शान्ति के साधन में आ जाते हैं। परन्तु त्यागी पुरुष उसी तीर्थस्थान पर रहकर या तो खाने के विकल्प में प्रायः समय बिता देते हैं या कीर्ति का भोजन चाहते हैं याने कीर्ति की चाह रखते हैं। जहाँ निकट पहिले कोई महापुरुष कीर्ति पा गया हो उस स्थान पर रहने का ध्यान कीर्ति चाह को बढ़ाने में साधन है उससे अहित ही प्राप्त किया जाता है। हाँ कीर्ति चाह बिना भी रहा जा संकता है, किन्तु यह तो वातावरण सिद्ध कर देता है कि चाह बिना रहा जा रहा है या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहपूर्वक। विशुद्ध स्थान की खोज करते करते भी उसकी प्राप्ति नहीं हो रहीं। सच तो यह है कि पहिले अपने मन को निरीह बनाना होगा। कुछ भी आकाँक्षा न रहे ऐसी स्थिति होने पर धनिकों के बीच रहना अति कम हो जायेगा। धनिकों से सम्पर्क बड़े त्यागियों का हो पाता है। बड़े त्यागी अपने शरीर के लिये कुछ नहीं चाहते और न वे कुटुम्ब को कुछ चाहते, केवल समाज सेवा की धुन में रहने के कारण संस्था को दान कराते हैं, कई दृष्टियों से यह भला दान है, लेकिन लोभकषाय का ही यह भी अंश है। इस परोपकार के कार्य में भी संक्लेश, दीनता आदि सब भाव आ जाते हैं। यह परोपकार भी आत्मघातक विदित होता है। इस वृत्ति से भी हटना है। विशुद्ध नाम रहित अकिंचन चिन्मात्र भाव की रुचि में ही तृप्ति मिल सकेगी। कीर्ति साधन के स्थान की पसंद करना पाप भाव है, इसका फल बुरा है।

सर्व परकीय विकल्प तोड़कर निर्विकल्प रहना ही मात्र श्रेष्ठ काम है

निर्विकल्प रहने की धुन लोकेषणा नष्ट करने पर हो सकती है। हाय यह प्रायः सर्व जनसमुदाय लोकेषणा में लगा है, यह मैं भी अन्य जनों की भाँति लोकेषणा में लगता हूँ तो इसका फल संसार परिभ्रमण है। जिस स्थान पर जनसमुदाय का आकर्षण हो उस स्थान पर रहकर क्या अन्तः निर्विकल्पता बन सकती है ? असम्भव नहीं तो कठिन है। प्राचीन काल में कल्याणार्थी योगी निर्जन एकान्त वन गिरी आदि स्थानों पर रहते थे जहाँ कोई बात करने को भी न मिले। इसका रहस्य क्या था ? यही कि लोकेषणा पिशाचिनी को आने का अवकाश न मिले। मन में तो आता है कि निर्विकल्प साधना में रह कर रहूँ अब कहाँ रहूँ ? प्रसिद्ध स्थानों पर रहूँ तो वही प्रसंग, निर्जन स्थान में रहूँ तो जो प्रवचन, अध्यापन, प्रवचन साहित्य शोधन आदि कार्यों में व्यस्त रहकर समय यापन करता रहा वह समय यापन कैसे करें। लोकेषणा मेरी इतनी मात्र है कि साहित्य का प्रकाशन हो जिसके निर्माण में मैं रात दिन व्यस्त रहता हूँ, इसे लोग पढ़ेंगे तो उन्हें यथार्थ वस्तु स्वरूप का अवगम होगा यह भी लोकेषणा का रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, किन्तु चित्त में सामान्य लोक की बात नहीं आती कि लोग मेरा यश गावे। सारा जहाँ भी निन्दा करे उससे मेरा कुछ बिगाड़ नहीं, किन्तु जब तक समाज में ज्ञान प्रसार करने का उपयोग चल रहा तब तक समाज में श्रद्धा होगी तभी तो ज्ञान लाभ होगा। एतदर्थ जो आवश्यक है उतना बाह्य सम्पर्क चल भी रहा है। जब स्वहित की दृष्टि में से देखते हैं तो है सब अन्धकार। बाहर में कुछ श्रेष्ठ काम नहीं है, सर्व परकीय विकल्प तोड़कर निर्विकल्प रहना ही एक मात्र श्रेष्ठ काम है।

प्रभुस्वरूप जब हृदय में नहीं रहता तब चित्त परेशान होता है

प्रभुस्वरूप है विशुद्ध ज्ञानमात्र। जब ज्ञानमात्र प्रभुस्वरूप की धुनि बनानी हो तो धनिकों के बीच न ठहरना होगा व धनिकों के आकर्षित क्षेत्रपर न ठहरना होगा, क्योंकि उस सहवास से यह चित्त बनेगा कि इनके पसंद व लाभ वाले स्थान पर रहते हैं तो इनके अनुकूल हमारी प्रवर्तना होनी चाहिये, बस इतनी बात आते ही परेशानी का समागम बन गया समझिये। गरीबों के बीच या उनके आकर्षित केन्द्र पर न ठहर पाओगे, वहाँ ठहरने में यह चित्त बनेगा कि इन अनपढ़ व अशिक्षितों के बीच हमारा ठहरना जैसा बड़ा काम व्यर्थ हो रहा है। गरीब बन्धु प्रायः अविद्वान होते ही हैं, जैसा देहातों में प्रायः निवास है। निर्जन एकान्त स्थान में न ठहर पावोगे, जब तक शरीर है इसका भरण आवश्यक है, कितनी ही व्यवस्था हो फिर भी त्रुटियाँ रहेंगी असुविधा रहेगी। फिर रहना कहाँ। यह समस्या है, सुलझे या न सुलझे, कहीं रहो, पर अपना अन्तर्बल लगाकर अभी से यह करना है कि ज्ञानमात्र प्रभु को हृदय में विराजमान रखना है। इस जीवन में अन्य कोई कार्य सारभूत नहीं है। आत्मा अकेला है अकिंचन है अपने स्वरूप में है इसमें पर से कुछ आता जाता नहीं है। पर में इसका कोई दखल नहीं है। फिर बाह्य के किसी कार्य में सार क्या रखा। आत्मा में क्लेश का कोई स्वरूप नहीं है। अपने ज्ञानानन्दस्वरूप को देखो यहाँ आनन्द ही आनन्द है। यही प्रभुस्वरूप है। प्रभुस्वरूप जब हृदय में नहीं रहता तब चित्त परेशान होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्याय करने से चित्त दुर्बल हो जाता है, जिससे क्लेशों का अनुभव होता है

दूसरों पर अन्याय करने पर, अन्याय करने वाला भी तो चेतन है सो अन्तर में समझता ही है कि यह अन्याय है, दिल में यह बात बसते ही दिल गवारा न करने से दुर्बल हो जाता है। दुर्बल दिल में सदा क्लेशों का ही अनुभव होता है। यों अन्याय करना अपना आत्मघात है, अन्याय से अन्यायी जीव कभी सुखी रह नहीं सकता। अन्याय सम्यक्त्व का घातक भाव है। अपने द्रव्य का, अपनी कीर्ति का, अपने वैभव का भी घात हो तथापि दूसरों को सताने का भाव न होना चाहिये। दूसरों को सताना महा पाप है। जिसके जीव दया न हो वह तो पशु है। ऐसी पशुता की वृत्ति अनेक बार की, व्रत धार कर भी पशुता की वृत्ति नहीं छूटती तो इससे बड़ा अनर्थ क्या होगा ! पशुता वृत्ति का मूल आधार है लोभ कषाय। लोभ कषाय परिवार के लिये किया जाता हो वहाँ भी पशुता की वृत्ति बन जाती है। लोभ कषाय संस्था के लिये किया जाता हो वहाँ भी पशुता की वृत्ति बन जाती है। लोभ कषाय अनर्थ है। अनर्थ से शान्ति कैसी हो सकती है। हे आत्मन् ! अपने स्वरूप की ओर दृष्टि तो कर, समझ लेगा खुद कि लोभ कषाय महा अनर्थ है। हाय लोभ पिचाश ने जगत के प्राणियों को अन्यायी बना दिया है। हाय रे लोभ पिचाश तेरी छाया भी भयंकर है। लोभ से ही अन्याय का जन्म है। अन्याय करने से चित्त दुर्बल हो जाता है, जिससे क्लेशों का अनुभव होता है।

विपत्ति प्रशम भाव की परीक्षा है

कोई मनुष्य दगा दे, अमानत में ख्यानत करे, अपने पर अन्याय करे आदि अवसर ही तो विपत्तियों के स्थान हैं। ऐसी विपत्तियों पर उन विराधकों पर प्रतिक्रिया की भावना होना प्राकृतिक है। उस समय चित्त क्या निर्णय देता है इस निर्णय से ज्ञान व अज्ञान का निश्चय किया जा सकता है। उस धोके में उस अन्याय में अपने कल्पित वैभव में ही तो कुछ कमी आई होगी उस कमी को सह कर विराधक पर कोई विपत्ति नहीं डालना चाहता है क्या ऐसा आशय बनता है या स्वयं विह्वल होकर विराधक पर प्रतिक्रिया करने की बुद्धि करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। यदि वैभव हानि को सह कर विराधक पर विपत्ति नहीं डालना चाहता है, विपत्ति कारक प्रतिक्रिया नहीं करना चाहता है तो समझिये उसके प्रशम भाव जागृत है। यदि वैभव हानि की बात समझ कर व्याकुल हो जाता है और उस संपदा के मिलने की आशा करके कानूनी या प्रासंगिक कार्यवाही करना चाहता है या करता है तो इतना तो सभी को स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रशम भाव नहीं। कभी कुछ ऐसी बड़ी परिस्थितियाँ आ जाती हैं कि कुछ विधिवत् प्रतिक्रिया करना आवश्यक हो जाता है वहाँ भी विवेक रखकर प्रशम भाव को मुख्यता देता है तब भी वह प्रशम भाव का भक्त है। आत्मा उत्थान प्रशम भाव से है। बाह्य जड़ पौद्गलिक कल्पित असार वैभव के पीछे ही जो पड़ जाना है, विपत्ति तो वास्तव में वही है। इसमें तो पतन स्पष्ट ही है, परीक्षा का अवसर क्या? जो वैभव हानि आदि रूप लौकिक विपत्तियाँ हैं उनमें बह जाना या न बह जाने की स्थितियाँ आती हैं। जो पुरुष तब अपनी सुध नहीं रख सकते उनके प्रशमभाव कहाँ ? जो अपनी सुध रखते हैं और विराधक पर मित्रवत् व्यवहार करते हैं उनके प्रशम भाव सुनिश्चित है, विपत्ति प्रशम भाव की परीक्षा है।

परिग्रह सम्पर्क क्लेश का ही कारण है

आनन्द तो निस्तरंग वृत्ति में है। यदि किसी भी प्रकार की तरंग उठती है तो वहाँ निराकुलता हो ही नहीं सकती। आत्मा का आत्मा ही सर्वस्व है, आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ आत्मा का नहीं है। अन्य किसी भी अर्थ का सम्बन्ध आत्मा में तरंग उत्पन्न होने का हेतु है। कुछ भी परिग्रह हो उसके प्रति उपयोग तो जावेगा ही अन्यथा कुछ है ही नहीं। जब परिग्रह के प्रति उपयोग जावेगा तो आत्मा हिल जायेगा, विकल्प तरंग उठ जायेंगी। विकल्प होते ही आत्मा आकुल हो जाता है। इच्छानुसार परिग्रह है उसमें मौज माना जा रहा है उसमें भले ही कोई अपने को सुखी समझे, लेकिन वहाँ शान्ति नहीं है। बाह्य की ओर उपयोग रखने में कोई भलाई नहीं, मलिनता ही है। हे प्रभो अकिंचन्य भाव ! तुम्हारे प्रसाद बिना यह आत्मा कैसा बरबाद हो गया है। किसी भी बाह्य से मिलता कुछ नहीं, लेकिन बाहर उपयोग को डुला कर क्लेश भोगा जा रहा है। अहो परिग्रह पिचाश का बड़ा बुरा फंदा है। यह सारी शान्ति खसोट लेता है। जब ज्ञान ज्ञानमात्र स्वरूप को तज कर अज्ञान मय बाह्य अर्थों में लग गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब इसकी शान्ति की गुंजाइश कहाँ। परिग्रह से आत्मा के किसी भी अर्थ की सिद्धि नहीं है। परिग्रह की कल्पना ही आत्मा की पवित्रता को नष्ट कर देती है। संसार के क्लेश परिग्रह के सम्बन्ध से ही हैं। तभी तो चक्री जैसे महापुरुषों ने सर्व वैभव तज कर निर्ग्रन्थ होकर आकिंचन्य भावामृत से ज्ञानानुभावामृत से अपने आपको पुष्ट किया। उनसे हमें शिक्षा लेनी है। परिग्रह ही सब अनर्थों का मूल है। सुखी होना है तो परिग्रह की उपेक्षा कीजिये। परिग्रह सम्पर्क क्लेश का ही कारण है।

इच्छा विनाश किये बिना सुखी हुआ ही नहीं जा सकता

सुख प्राप्ति के लिये बड़ा उद्यम करते फिरते हो, कुछ लक्ष्य लेकर कुछ लक्ष्य लिये बिना यत्र तत्र डोलते रहते हो, आकुलित रहते हो, ऐसा विषैला व्याकुल जीवन बना कर क्या सिद्धि पावोगे। माना कि साहित्य प्रचार के लिये तुम्हारा सारा कदम है। किन्तु उसके लिये द्रव्य की आवश्यकता होती है। द्रव्य के इच्छुक सारे लोग हुआ करते हैं जो न्याय प्रिय हैं वे इसके बाधक नहीं किन्तु जो न्याय प्रिय नहीं वे तो बाधक ही हैं सो प्रायः सर्वत्र संदेह है। उससे संदेह तुला में रहकर तुम व्याकुलता ही पाते हो। और देखो जिस समाज के भले के लिये तुम श्रम करते हो समाज में प्रायः लोग उसके अभिलाषी नहीं, बिरले ही लोग सत् कृतियों के समर्थक हुआ करते हैं। तेरा तेरे से बाहर क्या ? किसी बाह्य अर्थ से तुझे कुछ लाभ नहीं फिर क्यों किसी की इच्छा करके व्यर्थ दुःखी होते हो ! इच्छा ही अनर्थ है। हृदय से सोच लो जो होना हो सो होओ, मुझे कुछ नहीं चाहिये मेरा जीवन मेरे हित के लिये है। मेरा हित आत्मदृष्टि में है आत्म चिन्तन रहा करो। दूसरों का सम्मान विशेष देखकर उस ओर रंच भी उपयोग न करो, वह सब व्यर्थ है। तुम्हें शान्ति चाहिये या अशान्ति। शान्ति.के लिये ही तो प्रयत्न करते हो। शान्ति निराकुलता में है। निराकुलता इच्छा के अभाव में है। अपने ज्ञान बल को विशिष्ट करो, ज्ञान द्वारा स्वरूप को निरखते रहने का यत्न रखो, इच्छा का विनाश करो इच्छा विनाशं किये बिना सुखी हुआ ही नहीं जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी भी पर पदार्थ का भार चित्त पर मत बसाओ और प्रसन्न रहो

आत्मा तो अकिंचन ज्ञानमात्र है इस पर भार कुछ है ही नहीं तब अप्रसन्नता किस बात की। आत्मा शान्त सुखी स्वभावतः ही है। अब बात यह है कि आत्मा है उपयोग स्वरूप पदार्थ, इसके उपयोग चलता रहता है। औपाधिक मलीनता के कारण जब उपयोग इन्द्रिय विषयों में चला जाता है तब चित्त पर अन्य पदार्थ का भार आ जाता है। जहाँ अन्य पदार्थ का भार चित्त पर आया कि यह आत्मा फिर विषयों में पड़ जाने से बाह्य अर्थ के लाभ होने की चिन्तना में बेचैन होने लगता है। देखो, जब तुम ज्ञानमात्र हो तुम्हारा विशुद्ध चैतन्य स्वरूप है जिसमें कुछ गड़बड़ होता ही नहीं है ऐसे चैतन्य महा प्रभु होकर भी अपने को अनाथ समझ कर सनाथ बनने के लिये चेतन अचेतन परिग्रहों को बसाये रहते हो यह बड़ी भारी गलती है जिसका परिणाम यह समस्त संसार बाधा है। तुम प्रसन्न रहना चाहते हो तो चित्त में यह अतिशय करना ही होगा कि चित्त पर किसी भी पर पदार्थ का भार न बस जाये। ज्ञानरूप उपयोग करने में समस्त भार विघट जाता है। जिस को प्रसन्न रहने की चाह हो उसको चाहिये कि ऐसा फक्कड़ बने कि कुछ भी विषय न चाहे। स्पर्शन इन्द्रिय का विषय स्पर्श, रसना इन्द्रिय का विषय रस, घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध, चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप, श्रोत्रेन्द्रिय का विषय शब्द व मन का विषय लोकेषणा आदि इन सबकी प्रीति व्यर्थ है, आखिर इस आत्मा को अकेला ही जाना है सो इस एकाकी स्वरूप का विचार करो और विशुद्ध ज्ञानी बनो, किसी भी पर पदार्थ का भार चित्त में मत बसाओ और प्रसन्न रहो।

पर की आशा करने से चित्त में दुर्बलता आती है

चित्त नहीं लगता, चित्त चंचल रहता, चित्त में खुशी नहीं आती, और और भी सारी खराबियों को बताते जावो, सब आपत्तियों की मूल है पर की आशा। दिल में जब किसी भी प्रकार की पर की आशा झलकती है तब चित्त दुर्बल हो जाता है। चित्त ही तो मनुष्य का खास अंग है, चित्त दुर्बल हो गया तो सब बेकार हो गया। चित्त शुद्ध सावधान रहा तो ज्ञानबली होकर प्रसन्न रहोगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्त तो ज्ञान का सेवक है उसे पर की आशा का लोभ देकर क्यों मालिक का विरोधी बना रहे हो। जो पुरुष आशा के दास हैं उनका जीवन क्या, वे न यहाँ सुखी हैं न आगे सुखी रहेंगे। तथा जो आशा के दासों के बीच रहेंगे उनका भी भला नहीं है। परकी आशा करना, भिखारी बनना है। और पर की आशाओं में भी भोजन वस्त्र आदि आशा रखने की वृत्ति रखना इतना बुरा नहीं है जितना बुरा लोकेषणा का भाव है। पर से अपने बारे में प्रशंसा चाहना कीर्ति चाहना, ये लोग कुछ अच्छा कह दें, ऐसी भीख माँगना बड़ी गंदी भीख है। इस भीख में मिलता जुलता तो कुछ है ही नहीं, पर की ओर का आकर्षण और हो जाता है जिससे बन्धन दृढ़ हो जाता है। जो पर की आशा नहीं करते उनका चित्त बलिष्ट है, मन वचन काय की प्रवृत्ति भी विवेक पूर्ण है, वे सदा प्रसन्न रहते हैं। यदि प्रसन्न रहना हो तो परकी आशा मत करो। पर की आशा करने से चित्त में दुर्बलता आती है।

निरन्तर ज्ञानमात्र आत्म स्वरूप का ध्यान रखो

प्रियतम ! यहाँ तेरा अन्य कुछ नहीं है। धन वैभव मकान आदि प्रकट पुद्गल डले हैं उनसे तेरा क्या वास्ता। ये चेतन कुटुम्ब परिग्रह भी तेरे से अत्यन्त जुदे हैं इनके परिणाम इनके साथ हैं, इनका भाग्य इनके साथ है उनसे भी तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। शरीर से भी तेरा सम्बन्ध नहीं, भले ही शरीर इस समय एक क्षेत्रावगाह में है जहाँ आत्म प्रदेश, वहीं देहाणु, लेकिन आत्मा का देह में देह का आत्मा में अत्यन्ताभाव है। तेरे में उत्पन्न हुए रागादि भी तेरे नहीं, इनका अन्वय व्यतिरेक कर्म विपाक से है, ये तेरे स्वरूप नहीं। अब और क्या बतायें विकल्प विचार वितर्क भी तेरे कुछ नहीं ये भी ज्ञानांश हैं, परिणमन हैं, अध्रुव हैं तुम तो अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञान मात्र हो, ज्ञानघन हो। इस कारण परमात्मतत्त्व के ध्यान से ही मार्ग सही बनेगा। बड़े बड़े सम्राट पुरुषों ने भी साम्राज्य की असारता जान कर साम्राज्य को छोड़ा तथा ज्ञानमात्र निज अन्तस्तत्त्व की सारता शरण्यता समझ कर इस ही निज कारण समय सार की उपासना की। पर की उपासना में खेद ही खेद है और माया रूपता व असारता होने से पछतावा ही रह जाता है। यदि अपने को आनन्दमय अनुभवना चाहते हो तो निरन्तर ज्ञानमात्र आत्म स्वरूप का ध्यान रखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तू दुःखी है ही नहीं, इच्छा बना कर दुःखी हो रहा है

हे आत्मन् ! तू तो पूर्ण आनन्द स्वरूप है। तेरे स्वरूप में दुःख है ही नहीं। तू ज्ञान स्वरूप है ज्ञान में जानने में अशान्ति नहीं हुआ करती। ज्ञान का अविनाभाव आनन्द से है। तुम्हें समागम अच्छा मिला है, जीवन में कोई चिन्ता का काम नहीं। परिग्रह त्याग करने का नियम ठाना है अब समाज के हित के लिये अथवा समाज हित की धुन में कुछ चेष्टायें कर रहे हो यह अनर्थ की बात है, अपने हाथ अपनी बरबादी किये जा रहे हो इच्छा बना बना कर। तुम्हें क्या करना है इस लोक में रह कर, तुम कर ही क्या सकते हो इस लोक में। सबका ठीक निर्णय बना कर सत्पथ पर आओ। देखो तुम्हें करना है निर्विकल्प समाधिभाव। कैसी ही हो, कब ही हो, सारभूत कार्य इतना ही है कि विशुद्ध ज्ञाता दृष्टा रहो, निस्तरंग निरंग रहो, विषय कषाय भाव से दूर रह कर निर्विकल्प रहो। ऐसे तुम बन सकते हो इसमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि तुम्हारा स्वरूप स्वभाव ऐसा ही है याने तेरा स्वरूप अविकार अकिंचन चैतन्य भाव तुम्हारा स्वरूप है। उपाधिवश से आई हुई छाया माया तो दूर की जा सकती है। प्रियतम ! अपने स्वरूप की दृष्टि कर, तेरे स्वरूप में राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ सुख दुःख आदि कोई विकार नहीं। अपने अविकार स्वभाव को निरख और सत्य आनन्द पा। वस्तुतः तू दुःखी है ही नहीं, इच्छा बना कर दुःखी हो रहा है।

मौन रह, स्वरूपदृष्टि करके स्वका परिपोषण कर

इस लोक में करने को कुछ ही नहीं। क्या करना है, कर ही क्या सकते यहाँ। प्रत्येक अपने स्वरूप में परिपूर्ण है अतः मेरा किसी भी अन्य पदार्थ में कुछ करतब है ही नहीं, हो ही नहीं सकता। यहाँ किसको दिल में बसाना, कौन तेरा है, कौन रक्षक हो सकता है। कुछ भी तो तेरा नहीं। किसी में मोह मत कर, अपने आत्माराम से अनुराग बना, सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा की उपासना में चित्त लगा। यहाँ किससे बोल चाल करना, कौन है तेरा यहाँ, प्रयोजन भी क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निकलेगा यहाँ। मौन रह, देख सुविधा भी तुझे मौन रहने की मिली है। साधारण गृहस्थ मौन रहे तो उसको लोकसंकोच है, लोग क्या कहेंगे। तुम तो त्यागी वेश में हो, मौन रहोगे तो लोग समझेंगे ही मौन में त्यागी की शोभा ही तो है, वृद्धि ही तो है। मौन भाव में समय व्यतीत कर और निज तत्त्व की उपासना करके अपने अपने स्वरूप का परिपोष कर। किसी पर में तू कर ही क्या सकता है, किसी के लिए तू करेगा क्या। जो जो तू करता है अपने शान्ति लाभ के लिये ही करता है। इस कारण पर में करना ही क्या है। परके कर्तृव्य को बुद्धि को तज कर अपने में अपने स्वभाव की उपासना कर। पर से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं, कुछ भी हित नहीं। पर का ध्यान तज, परसे बड़प्पन मानने की बुद्धि तज, मौन रह, स्वरूपदृष्टि करके स्व का परिपोषण कर।

पर पदार्थ को जोड़ जोड़कर हित क्या पाओगे अहित ही पाओगे

जोड़ने में आने वाले पदार्थ हैं पुद्गल, पुद्गलों को जोड़ जोड़कर पा क्या लोगे। तुम तो ज्ञानमात्र पदार्थ हो। इसका तो अमूर्त स्वभाव है, इसमें आ क्या जायेगा किसी भी बाह्य पदार्थ से। कुछ जरा मरा सा जो यह सोचते हो कि मेरा नाम हो जायेगा। तो नाम क्या, नाम किसका, नाम किन में, कुछ विवेक तो करो, मूर्ख बालक की तरह बेहाल से क्यों भागे जा रहे हो। नाम क्या, दो चार वर्ण हेर फेर कर रख दिया सो। ऐसे नाम हजारों के हैं। नाम किसका, मैं तो अमूर्त चैतन्यमात्र पदार्थ हूँ, यह मैं तो ज्ञानमात्रस्वरूप हूँ उसको जानता ही यहाँ कौन है, उसको लक्ष्य करके बोलता ही यहाँ कौन है, मैं तो नाम रहित हूँ। नाम किनमें, जिनमें नाम चाहते हो वे खुद कर्म के प्रेरे मलीमस नामरहित चेतन हैं। नाम किनमें जगेगा। नाम होने का विचार भी गलत विचार है। अब और बताओ किस लिये पर पदार्थों की जोंड़ की होड़ में लग रहे हो। तुम तो मात्र विकल्प मचाये जा रहे हो और इसके फल में क्लेश सहते जा रहे हो। जब विकल्प के सिवाय तुम अन्य कुछ कर सकते नहीं, तो पुद्गलों के ढेर जोड़ने की धुन क्यों बनाते, क्यों मूढ़ बन रहे हो। विवेक इसी में है कि पर पदार्थ विषयक विकल्प छोड़ो। कौन कैसा क्या परिणम रहा है इस पर भी दिल मत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगाओ। तुम तो अपने ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व को देखो और प्रसन्न रहो। पर पदार्थ को जोड़ जोड़कर हित क्या पाओगे, अहित ही पाओगे।

इच्छा ही विपदा है

आत्मा तो विशुद्ध ज्ञानानन्दमय है, इसमें विपदा का नाम भी नहीं है! यह तो अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त शक्ति व अनन्त आनन्दमय है। इसका वैभव लोक में सर्वोपरि है। अद्भुत वैभव के अधिकारी होकर भी हम विपदा का अनुभव करें यह तो मिथ्यात्व के बिना असम्भव है, मिथ्यात्व में यह सम्भव है। आत्मा में खलबली मचना सो विपदा है। जैसे समुद्र निस्तरंग है तब उसे लोग शान्त कहते हैं किन्तु जब उसमें तरंगें उठती हैं खलबली मचती है तब उसे अशान्त कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा में क्षोभ होने को अशान्ति व विपदा कहते हैं। वह क्षोभ है क्या, वह खलबली है क्या, वह है इच्छा। जब तक आत्मा में इच्छा का प्राबल्य नहीं होता तब तक आत्मा शान्त रहता और जब ही इसमें किसी पर विषयक आकाँक्षा जगी कि यह अशान्त हो जाता है। इच्छा न हो तो यह आत्मा सर्वसमृद्धि सम्पन्न है। इच्छा होते ही यह विपन्न हो जाता है। आत्मा तो उपयोग स्वरूप है। यह तो कहीं न कहीं अपना उपयोग लगावेगा। जब किसी बाह्य पर पदार्थ की प्रगति में उपयोग बनाता है तो पर पदार्थ अपने अधीन न होने से उसकी अनभीष्ट परिणति में यह विषाद करता है। यही इस पर विपदा है। इसे कोई दूसरा देखता है तो इसकी परिणति पर वह हँसता है क्योंकि कोई बात नहीं, विपदा नहीं, पर मान्यता में वह अतीव आकुल है। यदि विपत्ति से छुटकारा चाहता है तो उसे यह निर्णय कर ही लेना चाहिये कि वस्तुतः विपदा क्या ? इच्छा ही विपदा है।

आत्मा को शान्ति निर्लोभता में मिल सकती है

यदि आत्म शान्ति चाहते हो तो धनिकों के बीच रहने का क्या प्रयोजन ? किसी भी एकान्त स्थान में रहो वहाँ का आवश्यक प्रबन्ध तो किन्हीं भी गरीबों के द्वारा भी हो सकता है। धनिकों के बीच रहने से परोपकार के अर्थ कुछ कुछ उनसे दान कराने की भावना होगी उसमें आकुलता और बेसुधि यदि धनिक लोग स्वयं दान करेंगे परोपकारार्थ संस्था आदि के रूप में तो उसकी सुव्यवस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि के विकल्प में पड़े रहोगे। धनिकों को, बड़ों को देखकर दिलपर कुछ दबाव का असर हो सकता है। और कुछ नहीं तो इसमें अपनी इज्ज्त समझ कर अपनी सुध खो बैठ सकते हो। धनिकों के बीच रहने में सच्चे मायने में निर्लोभता की सिद्धि नहीं हो सकती और ज्ञानानुभूति का अवसर नहीं मिल सकता है। बड़ी समस्या है कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ। रहना तो वहीं का शुभ है जहाँ रहकर निर्लोभता बनी रहे। सच तो यह है कि ज्ञानियों के सत्संग में रहो। जहाँ ज्ञान के ज्ञान में ज्ञान रमा करे वहाँ रहो। यद्यपि यह पुरुषार्थ अपना अपने में ही हो सकता है फिर भी बाह्य वातावरण तो लगा हुआ रहता है सो शुद्ध वातावरण में धर्मप्रगति की उमंग रहती है। अथवा कहीं भी रहो, यदि निर्लोभ अविकार ज्ञानस्वरूप में ज्ञान रमा तो मेरा उपयोग कल्याणकारी है। शान्तिलाभ ही सर्वलाभों में श्रेष्ठ लाभ है। आत्मा को शान्ति निर्लोभता में ही मिल सकती है।

विकल्प स्वयंक्लेश रूप है, क्लेश न चाहिये तो विकल्प न करो

पर पदार्थ के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन करने में विकल्प की निष्पत्ति होती है। आत्मा तो निर्विकल्प स्वभाव है। आत्मा का तो विशुद्ध चैतन्य स्वरूप है, यह निज स्वरूप तो आनन्दमय है। जब स्वरूप में कोई तरंग उठे, कोई हलचल हो तो क्षोभ होता है। ऐसी हलचल का नाम विकल्प है। विकल्प में क्लेश है संक्लेश है। क्लेश संक्लेश से आत्म प्राण का, ज्ञान दर्शन प्राण का घात है। अपना घात तो किसी को भी पसंद नहीं है परन्तु बाहरी मोह का नशा, जिस नशे में यह प्राणी अपने भाव प्राण का घात करता जा रहा है और ऐसी अपनी बरबादी करके भी उस ही में रम रहा है। देख जगत में कहीं तेरा है क्या ? अन्तर्दृष्टि करके जानकर फिर सोच जगत में कहीं तेरा है क्या ? कुछ भी नहीं है, फिर क्यों विकल्प करने की हठ बनाता है एक साथ एक ही बार एक दम समस्त विकल्पों से झटके के साथ हट कर निर्भार साम्यरस परिपूर्ण निज ज्ञानानन्द स्वभाव में विश्राम तो करो, सारी समस्यायें तुम्हारी हल हो जाती हैं। निर्विकल्प परम समाधिका यत्न करो इसमें ही सहज परम आनन्द है। विकल्प स्वयं क्लेश रूप है, क्लेश न चाहिये तो विकल्प न करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अकिंचन ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व का अनवरत ध्यान किये बिना कल्याण न होगा

प्रियतम ! करलो चाहे जो कुछ। पुण्योदय है, इष्ट सामग्री मिली हुई है सो मन को जहाँ चाहे लगालो, सामर्थ्य प्राप्त है, लेकिन अकिंचन ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व का ध्यान न हो पाया और पर का चाहे किसी का भी राग कर मौज लूटो, लाभ कुछ नहीं, बल्कि पछताना पड़ेगा। किसी भी पर से तुम्हें मिलेगा क्या। अरे प्रियतम ! अपनी ओर दृष्टि कर अन्य किसी की चिन्तना से क्या पाओगे, तुम अकिंचन हो, तुम में तुम्हारे ही गुण पर्याय प्रदेश हैं अन्य के गुण पर्याय प्रदेश हो नहीं सकते। किन्हीं दूसरों ने कुछ प्रशंसा के शब्द बोल दिये, इससे अधिक और क्या रखा है लौकिक बड़प्पन में सो वह बड़प्पन तो अंधकार है जिसमें विकल्पों का महा अंधेरा है, कुछ अपना सूझता ही नहीं है। पर दृष्टि महा अंधकार है। अरे भाई कुछ सोच समझ, जब परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है तब परमाणु मात्र का भी क्यों चिन्तन चले। वास्तविक निर्मम बनो तब ही कल्याण होगा। अपने आपकी सुध तो लो, देखो अकिंचन हो, तुममें अन्य कुछ नहीं, तुम ज्ञानमात्र हो, यही तुम्हारा अन्तस्तत्त्व है इस निज सहज स्वरूप की उपासना किये जाओ, अकिंचन ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व का अनवरत ध्यान किये बिना कल्याण न होगा।

आत्मा ज्ञानमात्र ही है, पर्याय में भी ज्ञानमात्र रहे तो पूर्ण आनन्द है

आत्मा पर आपत्ति कुछ भी नहीं है, यदि आत्मा अपने शील स्वभाव को समझे और उस रूप ही अपने को ढाले तो। किन्तु अपने को समझना ही नहीं चाहता जब यह तो इस पर होगा क्या, जो हो रहा सो ही तो। मेरा किसी भी अन्य द्रव्य से परमाणुमात्र से रंच भी सम्बन्ध नहीं। यह लोक तो माया रूप है अर्थात् जो कुछ दिख रहा है यह सब मायारूप है, मायामयी दुनिया में बह गये इससे सार क्या निकला। यहाँ तेरा कोई पूछनहार तो है नहीं, तेरी रक्षा करने वाला यहाँ कोई है नहीं, और किये जा रहा है सारे अपनी अरक्षा के काम तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके फल में तू पावेगा क्या। देख तू सुरक्षित है, परिपूर्ण है, पवित्र है, सर्वोत्कृष्ट है, अपने ऐसे चैतन्य स्वरूप को देख तू कृतकृत्यता का अनुभव करेगा। देख, समझना सत्य तुझे ही होगा, अपने आपकी सुध ले, पर की इच्छाओं को तज। पर की इच्छायें कर करके कौन सुखी हो सका। बड़े बड़े चक्री तीर्थंकरों को भी सकल बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह त्याग करके ही मुक्ति की राह मिली, आत्मसंतोष हुआ। तू भी समस्त शक्ति के साथ अपने को अपने में लगा, सब विकल्प तज, सब आशायें छोड़, अपने आत्मा को देख, तेरे में क्या सहज क्या है ज्ञानस्वरूप, तो ऐसा ही देख कर ज्ञानमात्र रहने का उद्यम कर। आत्मा ज्ञानमात्र ही है, पर्याय में भी ज्ञानमात्र रहे तो पूर्ण आनन्द हो।

आत्मा का आत्मा ही शरण है

मेरा अन्य कौन रक्षक हो सकता है। जब मैं परिणमन शील हूँ, मुझमें मेरे से मेरा परिणमन होता है, मुझ में अन्य से कुछ भी परिणमन नहीं हो सकता है तब वस्तुतः मेरी रक्षा कर कौन देगा ? किस में सामर्थ्य है कि कोई मेरी रक्षा कर दे। सभी प्रत्येक में खुद खुद के लिये खुद की सामर्थ्य हुआ करती है। सो वस्तुस्वरूप ही यह बता रहा कि कोई किसी अन्य का रक्षक नहीं हो सकता। अब अपनी ओर दृष्टि देकर सोचिये। जैसे यहाँ चौकी आदि पुद्गल स्कन्धों में दृढ़ जीर्ण आदि जैसी योग्यता है व अन्य निमित्त सन्निधान जैसा प्राप्त करता है उस पर उसी प्रकार की अवस्था बीतती है, वैसे यहाँ इस अमूर्त ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा में आयी वासना सहित होने से जैसी कुछ योग्यता है और पूर्वबद्ध कर्म का विपाकादिरूप निमित्त सन्निधान जैसा प्राप्त होता है इस पर उस प्रकार की अवस्था बीतती है। हाँ जैसे जीवभाव बनने में कर्मदशा निमित्त होती है वैसे ही कर्मभाव बनने में जीव भाव निमित्त होता है सो जीव के विशुद्ध भाव का निमित्त पाकर कर्मनिर्जरण, कर्मसंवरण में विशेषता होती है। यों जो कुछ भी भविष्य है वह सब निज के आश्रित है किसी अन्य जीव के आश्रित नहीं है। तब अन्य कोई मुझे शरण हो जाय यह कभी सम्भव नहीं। अतः अपने में ही विशुद्ध तत्त्वदृष्टि बनाकर अपने में अपनी प्रगति करो। एतदर्थ स्वरूप निहार कर, वास्तविकता परख कर अपना दृढ़ श्रद्धान रखो कि आत्मा का आत्मा ही शरण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम विशुद्ध ज्ञानमात्र हो, क्यों विकल्प करके अपनी दुनिया गन्दी कर रहे हो

तुम अपने में आप स्वयं ज्ञानमात्र पवित्र सहज आनन्दमय हो। कितना विशुद्ध तेज है जिसमें कलंक, आकुलता का स्थान नहीं, लेकिन अपनी भूल से कर क्या डाला है तुमने। कितना गंदा अन्तर का वातावरण बना लिया, चैन ही नहीं पड़ता। मिलना जुलना कुछ नहीं, रहोगे रीते के ही रीते, इस समय भी पर से रिक्त हो, पर से कुछ सम्बन्ध नहीं, किन्तु पर ही से चेतन अचेतन बना हुआ है, इस बड़ी आफत का फल है कि निरन्तर आकुलता रहती है। क्षणमात्र भी तो अपने को अकिंचन निर्भार अनुभव नहीं कर पाते देखो अपने को ज्ञानमात्र निरखो। ज्ञानमात्र अपने को निरखने घर सब गंदगियों का क्षरण हो जाता है। यह मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान ज्योति के सिवाय अन्य कुछ नहीं है मुझमें, केवल ज्ञान प्रकाश ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व में विकार कहाँ। अहो, जब अपने इस पावन शरणभूत सार चैतन्य पर दृष्टि न रही सो यह सारी विड़म्बना बन रही है। चितस्वरूप के चेतने में जो संचेतना बनती है उस संचेतन में कलंक सब जीर्ण हो जाते हैं और यह ज्ञान मात्र अन्तः स्वरूप निखर जाता है। अनवरत अपने को ज्ञानमात्र निहारते रहने का उद्यम करो और अपने को निर्दोष आनन्द मय अनुभव करके कृतार्थ बनो। देखो तुम विशुद्ध ज्ञानमात्र हो, क्यों विकल्प करके अपनी दुनिया गन्दी कर रहे हो।

शान्ति का मूल ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की प्रतीति है

शान्ति के लिये अथक परिश्रम किये जाने पर भी शान्ति का दर्शन भी नहीं होता है। ऐसा क्यों ? यह बात अत्यन्त स्पष्ट है शान्ति का अनुभव तो उपयोग करेगा, उपयोग का आधार है स्वयं आत्मा और वही शान्ति का आधार है। जब उपयोग अपने आधार को छोड़कर दूर अत्यन्त पृथक पर पदार्थों की ओर दृष्टि किये हुये है तब शान्ति से अलग ही तो उपयोग चला गया। अब उस बहिर्मूर्त दृष्टि वाले उपयोग से शान्ति की आशा रखना कहाँ तक सही है। शुद्ध ज्ञान मात्र अपने को निहारने पर अपनी अविकार प्रकृति का उद्बोध होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अविकार परिणमन का उद्‌बोध (जागरण) होता है। इसी अन्तर्मर्म के रुचिया ज्ञानी संतजन केवल में केवल को लगाकर केवलानुभव से केवल रहकर अकलंकता के अनुभवन से तृप्त रहा करते हैं, सच्चे मायने में ऐसे केवल गात्र मात्र बिहारी केवलरत महापुरुष मुनि ऋषि योगी संन्यासी साधु हैं। शान्ति के पूर्ण अधिकारी हैं। वह बस समृद्धि ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की प्रतीति से प्रकट हुई है। हम शान्ति चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि इस संसार को असार जान समस्त पर द्रव्यों से उपेक्षा करके निज सहज ज्ञानस्वभाव मात्र अन्तस्तत्त्व की प्रतीति में अपने को जुटा दें। अध्ययन ध्यान आदि सबका यही प्रयोजन है। शान्ति का यही अमोघ उपाय है। शान्ति का मूल ज्ञान मात्र अन्तस्तत्त्व की प्रतीति है।

जिस किसी भी प्रकार आकुलता न हो, सो ही काम करना चाहिये

किसी ने जीवन भर नाना विकल्प व श्रम कर करके खूब धन संचित कर डाला, इससे लाभ क्या हुआ। जीवन भर क्लेश संक्लेश सहा और मरते समय वियोग का महा क्लेश सहा। क्लेश संक्लेश पूर्वक मरण होने से जिस भव में जायेगा वहाँ भी कठिन क्लेश पावेगा। धन धन में है यहीं पड़ा रह जाता है, छितर बितर हो जाता है इस कार्य से तो कोई लाभ नहीं। किसी ने अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिये अनेक उपाय रचे कदाचित् श्रम कर करके भी कुछ नाम पा लिया तो एक नाम ही क्या है, झूठा नाम, कल्पित, असार और फिर दूसरी बात यह है कि किनसे नाम पाया, कुछ स्वार्थी मूढ़ लोगों ने जरा नाम ले दिया तो क्या हुआ, क्या ये कोई मेरे रक्षक हैं ? अरे ये स्वयं कर्म प्रेरित, जन्म मरण के सताये हुए विकल्पों से विह्वल रहा करते हैं। व्यर्थ है प्रतिष्ठा का विकल्प ! संसार भाव है यह अनर्थ भाव। इस मानसिक विषय के राग में आकुलता ही आकुलता है। इस श्रम से कोई लाभ नहीं किसी ने पंच इन्द्रियों के विषयों के खूब साधन जोड़ कर उनका भोग उपभोग करने के विकल्प रचे, कुछ भोग उपभोग किया तो इससे लाभ क्या पायां जाता सो कुछ नहीं। राग में ऐसा रचता है कि मुझे इस विषय में बहुत मौज मिल रहा है, पर उस समय भी मौज क्या,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैरानी हैं, आकुलता पूर्वक ही तो भोगोपभोग हैं। इन विषयों में भी सार नहीं है। इन सब कामों से हट कर ऐसे पुरुषार्थ में लगो जिसमें आकुलता न हो ! अपना पक्का निर्णय बनाओ जिस किसी भी प्रकार आकुलता न हो, सो ही काम करना चाहिये।

ज्ञानमात्र हूँ ऐसा अनुभवन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय मेरी रक्षा का नहीं

मैं कुछ न कुछ सोचता रहता हूँ, कुछ न कुछ चाहता रहता हूँ, कहीं लगा रहता हूँ, किसी न किसी में धुन बनाये रहता हूँ। अब यह निर्णय करो कि अब तक के सोचने चाहने लगे रहने धुन बनाये रहने से मैंने पाया क्या ? बचपन से लेकर अब तक जितने दिन व्यतीत हो गये उन दिनों में क्या क्या सोचा कहाँ कहाँ रहे सब ख्याल करके सार असार का निर्णय करो। तो देखो सब असार था इसका साक्षात् प्रमाण तो यह है कि उन सब में गुजर कर लिपट कर भी आज तुम रीते के ही रीते हो, कुछ खोए हुए से ही लग रहे हो। देखो तुमने खोया अपना ज्ञान, तुमने खो दी अपनी गम्भीरता, धीरता, लुटे ही लुटे, पाया कुछ नहीं। बचपन में कौन कौन दोस्त बनाये कैसे अज्ञान कार्यों में लगे, गप सप, नतीजा कुछ नहीं, कुछ पढ़ने की धुन की, पढ़ गये, सो पढ़ने का लाभ तो अब उठा सकते हो, उठावोगे तभी ना लाभ है। यदि उस विद्या से लौकिक बड़प्पंन माना, पोजीशन की धुन की, कषाय विकल्प ही बढ़ाये तो लाभ क्या लूटा। परिवार में रागभरी बातें कीं, कुछ मौज सा लगा, उसमें रमे समय गुजर गया, वियोग हो गया, अब तो उसका क्लेश ही हाथ है। चलो गृह छोड़ कर चले, अब तो आशा की गई सत्य शाश्वत शान्ति लाभ खूब लिया जायेगा, किन्तु यहाँ भी लोक समुदाय में स्नेह, परोपकार के काम, नये नये देश के संग बन गये। सच बात तो यह है कि परकी ओर दृष्टि रखने के प्रसंग में तो मेरी रक्षा ही नहीं अन्य किसी विषयक विकल्प करने में बरबादी ही है। जब मैं सब विकल्पों से हट कर अपने अन्तः स्वरूप का अनुभव करूँ तभी वास्तविकता से भेंट होगी। ज्ञानमात्र हूँ ऐसे अनुभवन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय मेरी रक्षा का नहीं !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मा के स्वरूप का स्मरण अतुल धैर्यप्रद सहारा है

4900

मन स्थिर क्यों नहीं रहता, चित्त चंचल क्यों रहता इसका कारण किसी परपदार्थ विषयक राग है। किसी वैभव का, किसी विषय साधन का, किसी भोगोपभोग का राग लगा हो तो वहाँ भी किसी एक ही वैभव में, एक ही विषय साधन में, एक भोग या उपभोग में दिल नहीं रहता है। तब चित्त चंचलता का वेग बढ़ जाता है। ऐसी स्थितियों में कुछ भी मददगार नहीं सूझता है तथा प्रवृत्तियाँ भी जो की जाती हैं वे उल्टी ही सिद्ध होती हैं, बजाय धैर्य के भ्रम ही बढ़ाती हैं। ऐसी कठिन परिस्थिति में भी जब सहजसिद्ध, विशुद्ध चित्स्वरूप सहजानन्दमय परमात्मस्वरूप की स्मृति होती है तथा उसकी लगन होती है, उस ही स्वरूप में रमने को चित्त में उमंग जगती है तब धैर्य होता है, चित्त प्रसन्न होता है, जीवन की सफलता समझ में आने लगती है, जिससे आत्मसंतोष होता है। तो यह निर्णय हुआ कि मुझे परमात्मस्वरूप स्मरण ही शरण है। इस विशुद्ध स्वरूप के स्मरण के प्रसाद से शान्ति का दर्शन होने लगता है। धन्य है परमात्वस्वरूप को। कैसा पवित्र दुःखायहारी आनन्दस्वरूप ज्योतिर्मय है। राग द्वेष आदि कोई कलुषता न होने से पवित्र है, दुःखों से अत्यन्त दूर होने से दुःखायहारी है, आनन्दस्वरूप होने से आनन्दमय है, ज्ञान द्वारा सर्वत्र व्यापक होने से ज्योतिर्मय है। ऐसे अलौकिक तेज स्वरूप परमात्मतत्त्व की सुध होना भी उच्च होनहार का लक्षण है, फिर जिन्हें उस प्रभुता का स्मरण होता रहता है वे तो मुक्ति के निकट हैं ही। किसी भी चिन्ता के समय, किसी भी विपत्ति के समय, किसी भी कलुषता के समय वह ध्यान में ले लो फिर संकट कलुषता मिट कर रहेगी। क्या ? कि परमात्मा के स्वरूप का स्मरण अतुल धैर्यप्रद सहारा है।

अपने ज्ञानमात्र मानने का व्यवहार भी बनाओ

मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसा सच्चा निर्णय किया गया कब कहलाता है जब हमारी व्यवहृति परिणति भी ऐसी बनने लगे कि क्रोध मान माया लोभ भाव न सता सकें, जाननहारमात्र बने। हम दुःखी इसी बात पर तो हैं कि हम बनते तो हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोक में बड़े, और महान बनने का जो हेतु है आभ्यन्तर उसकी दृष्टि तक भी न करे। यदि हम आभ्यन्तर भाव की अपेक्षा छोटे हैं तो व्यवहार में भी हम छोटे रहे, छोटे कहलावें तो वहाँ कुछ क्लेश नहीं है। जैसे हम बहुतेरे देहातियों को देखते हैं खूब गाते हैं, सोते हैं, चिन्ता ही नहीं करते। सांसाररिक विष मल व क्लेश यहाँ और अधिक बढ़ जाता है कि आभ्यन्तर भाव की दृष्टि से तो हम हैं छोटे और लोक में बनना चाहते हैं हम बड़े, बस इस बड़ी विषमता का परिणाम भी बड़ा विषम हो जाता है। आभ्यन्तर में बड़े होने पर लौकिक बड़प्पन कष्टकारी नहीं होता है क्यों कि महत्त्व, आनन्द, धैर्य अनुभवने की वहाँ क्षमता आ जाती है, किन्तु आभ्यन्तर में छोटे हो और लौकिक बड़प्पन बढ़ाये तो बाह्य बड़प्पन कष्टकारी होता है क्योंकि आभ्यन्तर में न महत्त्व है, न आत्मीय आनन्द है, न धैर्य है। हे हितेषनु ! तुम्हारी स्वहित की भावना हुई है तो बाह्य जगत के विकल्प तोड़ कर अपनी स्वहित रचना में लगो। देखो यह तो मौलिक बात है कि अपना सत्य स्वरूप निहार लो। तुम हो ज्ञानमात्र सो अपने ज्ञानमात्र स्वरूप का निर्णय कर लो और व्यवहार में भी तो ज्ञानमात्र रहने का उद्यम करो। कषायें सब अहित रूप हैं उनका एकदम परिहार कर दो और अपने ज्ञान मात्र बनने का व्यवहार भी बनाओ।

स्थिर शान्त उपयोग चाहते हो तो रागभाव का परिहार करो

यह उपयोग कहीं टिकता ही नहीं, इससे भी बड़ी आपत्तियाँ क्लेश संक्लेश भोगने पड़ते हैं यह बड़ी विडम्बना है, कहाँ तो है तेरा आनन्दमय स्वरूप और कहाँ बन रहा तू भिखारी पर की आशा कर करके। इस आत्मघात पर निज के अन्याय पर तुझे कुछ अपने पर तरस नहीं आता। बात बिल्कुल साफ है, तू केवल चैतन्य मात्र है, तुझ में पर द्रव्य का रंच भी सम्बन्ध नहीं, पर से तेरा निस्तारा नहीं, परसे तेरा बड़प्पन नहीं, परकृत प्रशंसा से तेरा उत्थान नहीं, पर कोई तुझे जानता नहीं फिर क्यों ऐसी कठोर पर दृष्टि बनाई है। मेरे प्रियतम ! अपनी रक्षा कर, अपने को गड्ढे में मत पटक, पर की ओर से एकदम दृष्टि हटा। इस शरीर पर कुछ परिचितों की निगाह है इस शरीर को ही तेरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम वाला समझ रहा है यह परिचित लोक, इससे यदि तेरी लौकिक बड़प्पन में बुद्धि जाती है जिससे कि लोभ कषाय जगता है तो तू समझ तेरी शरीर में पर्याय में आत्म बुद्धि बन रही है। जब शरीर में आत्म बुद्धि बन रही है तो तू अकुशल है, दुर्गति का पात्र है। ये दिखने वाले लोग तो न रहेंगे तेरे साथ, अब भी नहीं हैं ये तेरे साथ तो ये आगे भी न रहेंगे तेरे साथ, मात्र विकल्प कलंक बना कर जो तू अपने को डुबो रहा है, इस अनर्थ का फल तू ही भोगेगा। हे आनन्दघन ज्ञानस्वरूप निज कारण परमात्म तत्त्व ! अपने को निहारो, अपने स्वरूप की उपासना करो, इसमें ही तेरी भलाई है, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ शुद्ध चिदस्मि, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ शुद्ध चिदस्मि, देखो देखो शुद्ध सिद्धस्वरूप और देखो देखो शुद्ध निज सहज स्वरूप। निज ध्रुव सारभूत तत्त्व का आश्रय करोगे तो शान्त होओगे, आनन्दामृत का पान करोगे। आनन्द का साधक स्थिर शान्त उपयोग है। स्थिर शान्त उपयोग चाहते हो तो राग भाव का परिहार करो।

सदाचार से बलिष्ट हुए चित्त में धैर्य का निवास होता है

लोग यह अनुभव करते हैं कि मेरे में धैर्य नहीं आता है। किन्तु इस पर विचार नहीं करते कि धैर्य न आ सकने का कारण क्या है। धैर्य न आने की प्रकृति जब चित्त में बन जाती है तब कुछ न कुछ पर का आश्रय बना कर धैर्य न रहने की गति चलती रहती है। धैर्य न आने की प्रकृति चित्त में कैसे बनती है ? जब चित्त में अधैर्य होने की प्रकृति बन जाती है। चित्त में गौरव की हानि क्यों होती है। जब चित्त में सदाचार का माहात्म्य नहीं बसा होता है और सदाचार की आस्था न होने से सदाचार से चित्त डिग जाता है दुराचार की ओर लग जाता है तब आप जानते हैं क्या होता है चित्तपर असर। लोक व्यवहार में अब भी सदाचार पर आस्था है। कोई पुरुष लोक व्यवहार में गौरव से तभी रह सकता है जब उसके चित्त में यह बात समाई हो कि मैं पवित्र हूँ और मुझे लौकिक जन अपवित्र नहीं मानते। किन्तु दुराचारी पुरुष अपने को तो जैसा है तैसा समझता है। उसके चित्त में सब बसा होता है कि मैंने यह पाप किया, अन्याय किया। तथा जिसके पाप वृत्ति भरी रहती है उसके दिल में बल नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहता, दुराचार से दिल बलहीन हो जाता है वहाँ फिर न धैर्य रहता है, न गम्भीरता रहती है, अस्थिर चित्त होने से निरन्तर क्लेशों को भोगता है। अतः सुखी शान्ति होने के लिये सदाचार को अपनाओ। सदाचार होने से धैर्य बढ़ता है। सुख शान्ति समृद्धि से भेंट होती है। यह निश्चय अपनी दृष्टि में रखो— सदाचार से बलिष्ठ हुए चित्त में धैर्य का निवास होता है।

धर्म ही एक मात्र तेरे को समर्थ शरण है

अत्यन्त स्पष्ट निर्णय है—स्वात्मलोक में स्वभाव की झलक पाते ही अलौकिक आनन्द जगता है और उस अनुभव में स्पष्ट निश्चय हो जाता है कि धर्म मात्र मुझे शरण है। किसी भी पर को आश्रय बनाकर विकल्प करता रहूँ उससे मुझे हानि ही है। देखो कहाँ तो यह कर्तव्य था कि सहज ज्ञान स्वभाव में उपयोग रमा कर अपने को तृप्त बनाये रहूँ और कहाँ पराधीन अनावश्यक व्यर्थ अनर्थ कर लौकिक सुख की वाट जोहता हूँ, इस आत्मघातक अन्याय पर तुले रहना महती मूढ़ता है। क्या पता नहीं है यह कि अन्याय का, पाप का फल से एकेन्द्रियादि जीवों में जन्म लेना पड़ता है। इतना महान् क्षयोपशम पाकर भी आत्महित में प्रमाद करोगे तो महा दुष्फल भोगोगे। प्रियतम ! अपने हित से प्रेम करो, अपनी रक्षा कर लो। यह नर भव, यह धर्मसमागम अपनी रक्षा कर लेने का सुन्दर अवसर है। इसका लाभ उठालो, अन्यथा महा अनर्थ हो जायेगा। कितने आराम की बात है, कितना हितप्रद ज्ञान है, कितना साधर्मी जनों का अनुराग है ऐसे सुगम सुविधामय समय में अपने मन पर विजय पा कर ज्ञानेकरस निज अन्तस्तत्त्व की उपासना खूब कर लो, बड़ा आनन्द पाओगे। इस लोक में न तो विकार के आश्रय भूत रूप, रस, गन्ध, स्पर्शात्मक विषय शरण हैं और न तेरे ये विचार विकार शरण हैं ये तो तेरे विकार हैं शरण कहाँ से होंगे। खूब सबकी गोद में जा जाकर परख करले, तेरा तेरे सिवाय अन्य कोई शरण नहीं अर्थात् तेरे अपने स्वभाव रूप चिन्मय धर्म की उपासना के सिवाय अन्य कुछ नहीं है; दृढ़ विश्वास कर, धर्म ही एक मात्र तेरे को समर्थ शरण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रियतम देख लिया जहाँ हो वहीं रहो और आनन्दमय रहो

परिणति— प्रियतम ! तुम कहाँ हो, मैं ढूँढती ढूँढती हैरान हो गई।

आत्मदेव—मैं अब भी मैं मैं पुकार कर शोर मचा रहा हूँ, देख लो आओ ना, यहाँ मैं गुप्त हूँ याने सुरक्षित हूँ।

परिणति—गुप्त हो, छुपे हुए हो, तो मैं कैसे ढूँढ सकूँगी, प्रकट हो जाओ, तुम्हारे बिना मैं निराधार, अशरण, रीती, हैरान रहा करती हूँ।

आत्मदेव— जहाँ मैं हूँ वहीं तो तुम हो, तुम्हारे चित्त में विकार है, परकी ओर तेरी रुचि है, तू परको आश्रय किये हुए है, ऐसी सदोष व्याभिचारिणी परिणति की आँख अन्धी हो जाती है, इससे तुम्हें मेरा दर्शन नहीं हो रहा है।

परिणति—क्या कहा नाथ ! मैं लोगों में सदा तुम्हारा गुण गाती रहती हूँ, अपनी जिह्वा पर तुम्हें बिठाती रहती हूँ, मुझे तुम्हारे सिवाय और किसी की चाह नहीं है।

आत्मदेव—देख जैसा तू बनती ठनती है वैसी वस्तुतः हो जा तो तेरा अनाथपन सब खतम हो जायेगा। तू कुछ समझदार ज्यादा हो गई, पढ़ लिख भी बहुत गई, इससे चतुराई तो बढ़ गई, किन्तु सरलता मिट गई, चतुर को मैं दर्शन देने के लिये बाध्य नहीं हूँ, सरल को दर्शन देने की मेरी बान है।

परिणति— (सोच विचार निर्णय करके) सत्य है नाथ ! मैंने अनन्तकाल जैसे तुम्हारी चर्चा बिना ही खो दिया। अब चर्चा करने लगी तो ऊपरी ही। मुझे किसी से अब प्रयोजन नहीं। मैं अपने आधार में ही समा कर तृप्त हूँ। अब सब रहस्य समझी तुम ही तो मैं हूँ। अब मैं अपने को साधार मानती हुई कृतार्थ हुई। प्रियतम देख लिया। जहाँ हो वहीं रहो और आनन्दमय रहो।

तेरा सब कुछ तेरे ही आधीन है, दृष्टि बनाकर चलकर देख

जिस पर को तू घूरता है वह पर अत्यन्त भिन्न है, उस पर तेरा कुछ अधिकार ही नहीं, उसकी आशा से तो दुःखी रहेगा। पर की तो हठ तू छोड़ ही दे। अब अपनी ओर दृष्टि कर। तू तो स्वतंत्र विज्ञानघन पावन पदार्थ है, तुझमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही तेरी दिव्य ऋद्धि समृद्धियाँ भरी पड़ी हैं। तू रहना चाहता है शान्त, सो शान्त रहने की विधि तू ही है, तुझमें ही है। एक झलक में अपने को ज्ञानमात्र अनुभव करके स्वयं जान जायेगा कि शान्त तो स्वभावतः स्वयं ही है तू। जैसा सहज सत्स्वरूप में है तू वैसा ही अपने को मान, इन्द्रिय जन्य व्यापारों को छोड़। अपने में आपको देख, शेष सबसे मोह राग को छोड़, तू कान्त है, दान्त है, शान्त है। कान्त तो यों है कि ज्ञान मय होने से सर्वोपरि समृद्धिमय है अतएव कमनीय है, सुन्दर है। दान्त यों है कि इन्द्रियों का दमन करना तेरी सहज स्वभाव कला द्वारा साध्य है। पूर्ण निर्णय रख मुझे किसी भी पर की आवश्यकता नहीं; मुझे लोक सुख की जरूरत नहीं, मुझे लोक यश की जरूरत नहीं। मैं हूँ स्वयं स्वरसतः आनन्दधाम, आनन्द तो स्वभाव ही है, दुःख औपाधिक है। मेरा मैं मेरे ही अधीन नहीं रह सका इसका कारण यह है कि मैं हूँ उपयोगवान सो उपयोग अज्ञानवश बाह्य में अभिमुख रहा अब तक। इसी उपयोग को असार जगत से हटाकर सारमय निज अन्तस्तत्त्व में लगाऊँ तो मैं मेरे लिये सुगम साध्य हूँ। मैं तो मैं था ही अब उपयोग ने भी मैं को अंगीकार किया सो अब मैं अपने आधीन स्वाधीन दृढ़ता से हो ही गया! हे प्रियतम! अब अपना उपयोग अपने में दृढ़ रख, तेरा सब कुछ तेरे ही आधीन है, दृष्टि बनाकर चलकर देख।

विकल्प मिटे कि सब कुछ कल्याण मंगल ही है

मेरी समृद्धि की सब कुछ तैयारी सदैव से है। जब से मैं हूँ याने अनादि से हूँ तभी से परिपूर्ण हूँ। प्रभु परमात्मा को मिला क्या है ? जो मिला है, जो उनके प्रकट हुआ है वही स्वरूप तो मेरा है, मेरा ही क्या, जीव मात्र का है। मुझे कुछ और बात लानी हो, और कुछ करना हो, ऐसी अटक ही नहीं है। सिर्फ दृष्टि ही बदलना है। दृष्टि बदलने में क्या परेशानी है। यदि प्राप्त समागम सब कुछ जाता हो, मिटता हो, जावो मिटो। कभी तो जाना था, कभी तो मिटना था। उसमें मेरा क्या गया। देखो बात सब साफ है। मेरा मात्र मैं हूँ, मेरा मेरे से बाहर कुछ नहीं। मेरा सब कुछ मेरे पर निर्भर है। मेरा भविष्य मेरे पर निर्भर है, इसमें दूसरे का दखल क्या। वस्तु पूर्ण सुरक्षित है, मैं पूर्ण सुरक्षित हूँ। केवल समझ की आवश्यकता है समझ सही बनी उसी क्षण से मैं अमीर हूँ, कृतार्थ हूँ, सर्वार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्ध हूँ। काम सब बना बनाया है, कषायवश झगड़ा पड़ा हुआ है। कब्जा सब कानून स्वरूपतः मेरे, सर्व स्व पर मेरा है, पर मेरी गफलत के कारण विषय कषाय आकांक्षाओं से मेरा घर भर गया है। अब तो किसी के आगे रोने से काम नहीं बनने का। मैं ही अपने को अपने में जमाऊँ जिससे मेरी गफलत दूर हो और सारे विकल्प टूट जावें। मेरा काम पूरा तैयार है, अब तो सिर्फ थोड़ी सम्हाल की जरूरत है। समझ सब गया बस विकल्प मिटे कि सब कुछ कल्याण मंगल ही है।

अपने दोष तो देख, दूसरे के दोष देखने में तेरी भलाई नहीं है

जब तू दूसरे के दोष देखता है तब उपयोग की क्या स्थिति होती है इस पर दृष्टिपात तो कर। तेरे उपयोग का विषय देख बन रहा है इसमें तो कोई विवाद ही नहीं, साथ ही यह भी निरख कि यों दोष देखने की वृत्ति में कुछ राग की भी प्रेरणा है या नहीं है। राग की प्रेरणा ! तो इसके मायने हुआ कि तुझे उस दोष के निरखने में रुचि जगी है। तो ऐसी स्थिति में तुझमें भी समाया क्या ? दोष। तो दोष से अनुरक्त होने में तू मलीन ही तो बना। बता ऐसा मलीन बनने से तेरा हित हुआ कि अहित। अरे प्रियतम ! अपनी तो रक्षा करले, अपने पर तो दया करले। अपने दोष को देख, ढूँढ। जब तक तुझ में दोष है तब तक तुझे अपने दोष मेटने का ही तो यत्न करना चाहिये। दूसरों के दोष देखने से तुझे मिला क्या ? उपयोग में मलिनता, भूमिका में मलिनता, भविष्य के लिये मलिनता। मलिनता के सिवाय और क्या रहेगा तेरे साथ। अभी अपने में ही तो खुद में कमी है बहुत, उनको दूर करने का काम पड़ा है, जो किया जा सकता है, सुगम है उसको करने का ही काम पड़ा है अभी, दूसरे में तू क्या तकता है। दोष देखेगा तो दोष तो तभी दिखेंगे जब गुण का भी कुछ भान होगा, अपने विशुद्ध स्वरूप की कुछ दृष्टि होगी। और ऐसी परिस्थिति में तू अपने गुण के अवलम्बन से दोषों को दूर कर लेगा तो समझे अपने दोष देखने में तू भलाई पा लेगा। इस कारण दृढ़ता के साथ अपने कर्तव्य का भान कर। अपने दोष तो देख, दूसरे के दोष देखने में तेरी भलाई नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान की ही सम्हाल में सब कुछ सम्हल गया

सब कुछ तेरा तेरे ज्ञान में ही भरा पड़ा हुआ है। देख तेरे ज्ञान के ही विकल्प रूप परिणमन से तुझे दुःख का अनुभव होता है, कभी सुख का अनुभव होता है तो समझे ना, दुःख कहीं बाहर से नहीं आया, सुख भी कहीं बाहर से नहीं आया। कभी किसी कषाय की मात्रा में बढ़कर अपने को ना काबू व अति विह्वल कर लेते हो सो खुद के ही विकल्प ने तो ऐसी स्थिति कर दी, किसी दूसरे ने तो तेरे इस परिणमन को नहीं किया। तेरे ज्ञान में सब भरा हुआ है। अब यह विवेक करने की बात है कि हम ज्ञान से पायें क्या ? मिल तो हमें सब जायेगा जो कुछ विचार में लायें, लेकिन हमें क्या विचारना चहिये, क्या निरखना चाहिये, क्या पाना चाहिये, कैसे रहना चाहिये, इसका निबटारा जरूर कर लेना है अभी से इस निर्णय के साथ चल कि मुझे कुछ भी पाने के लिये बाहर में कुछ यत्न नहीं करना है। मेरा सब कुछ मेरे में ही है। अपने ज्ञान स्वरूप की सम्हाल कर लो तो सब संकट टल जायेंगे। अपने ज्ञान स्वरूप को न सम्हाल सके, स्वछन्द होकर विषयों में लग गये, व्यर्थ अनर्थ दुरर्थ विषय में अनुराग करने लगे तो इस तुच्छ यत्न का फल बहुत ही विकट संकट बन जावेगा। जो कुछ करता है तू अपने में करता है, संकट विपदा छाने के लिये भी जो कुछ करता है अपने में करता है, संकट मुक्ति के लिये अब जो तुझे करना है अपने में करना है। अपने ज्ञान को सम्हाल लिया, अपने उपयोग में विशुद्ध ज्ञान सामान्य को निर्विकल्प रूप से ले लिया तो सब संकट दूर हो गये, निर्णय रख कि निश्चल ज्ञान की ही सम्हाल में सब कुछ सम्हल गया।

हे आत्मन् ! मैं ऐसी पोजीशन का हूँ इस ख्याल विष का बमन कर दे

हे मानव देहस्थ आत्मन् ! यहाँ तू ने जब जब भी क्लेश पाया है वह क्लेश पोजीशन की समझ से पाया है। बचपन से लेकर अब तक की घटनाओं के विषय में खोज कर लो, यह बात सच्ची है ना। बाल्य काल में तद्योग्य पोजीशन मान मान करके जरा जरासी बात पर रोया। इसका विवरण क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना, अन्य बच्चों की हालतें देख कर परख लो। जब कुछ और बड़े हुये तो तद्योग्य ख्याल बना कर दुःखी होते रहे। वस्तु के स्वतंत्र स्वरूप के माने बिना सर्वत्र ही तो संक्लिष्ट रहे। प्रियतम ! अपने सहज स्वरूप की ओर दृष्टिपात तो कर तू ज्ञानानन्द स्वभाव से रचा हुआ है, ज्ञानानन्द स्वभाव मात्र है। है तो चिन्मात्र, किन्तु वहाँ अनुभव क्या होता है, परिणमन क्या होता है इसके निर्णय में जब हम चलते हैं तो यह विदित होता है कि हम ज्ञान किया करते हैं, जानते रहते हैं निरन्तर और आनन्द का अनुभव करते हैं। मेरा स्वरूप ही ज्ञानानन्द है। अपने स्वरूप को निरखो तो कृतार्थता का अनुभव करोगे। बाह्य संग संचय कर करके कृतार्थता नहीं पाई जा सकती है। परोपयोग, पर्याय पोजीशन की प्रभावना से कृतार्थता नहीं पाई जा सकती है, अस्वावलम्बन से क्षोभ नहीं मिटाया जा सकता है। देख ! तेरी दृष्टि में प्रभु बड़े हैं या नहीं। बड़े नहीं हैं तो उनके स्तवन पूजन को क्यों आया करते हो। प्रभु बड़े हैं तो किस काम के कारण बड़े हैं सो बता। देख प्रभु के पास कुटुम्ब नहीं, घर नहीं, कल कारखाने नहीं, लोगों से बातचीत होने की स्थिति न होने से किसी की मित्रत्ता नहीं, फिर बड़े किस बात से हैं ? इस बात से हैं कि वे अपने में अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्द शक्ति का अनुभवन करते रहते हैं। यही तू कर। अपने को अपने में समाकर निस्प्रह रहकर सत्य प्रकाश और आनन्द प्राप्त कर। ऐसा सार पाने के लिये पहिले यहाँ की मानी हुई पोजीशन में आग लगा। यदि शान्ति चाहते हो तो पहिले ही हे आत्मन् ! मैं ऐसी पोजीशन का हूँ इस ख्याल विष का वमन कर दे।

अपने स्वरूप की सुध लो, अन्यथा तेरी दुर्दशायें ही होती रहेंगी

तुम तुम अपने मात्र हो। जो कुछ गुजरता है तुम पर, तुम ही अकेले से उसका सम्बन्ध है। तुम्हारा साथी अन्य कोई हो ही नहीं सकता। अपना परिणाम जैसा बनाओगे वैसा ही फल पाओगे। बोलो तुम्हें क्या मंजूर है ? परमात्म प्रभु जैसा अनन्त आनन्द अनुभव करना अभीष्ट है। या जड़ वैभव के आकर्षण में रच पचकर जीवन गुजारना मंजूर है। अरे मेरे प्रियतम ! अब तो मत नादान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन। कुबुद्धि कुबुद्धि में तो सारी आयु खो दी है, अनन्त काल बिता दिया है। क्या पता नहीं है कि यह नर भव कितना दुर्लभ श्रेष्ठ समागम है, श्रेष्ठ कार्य करने के लिये श्रेष्ठ साधन है। जरा जीव लोक की ओर दृष्टि करके तो समझ ले। पेड़ हवा आग पानी पृथ्वी जैसे एकेन्द्रिय जीवों से तेरा कितना महान् विकास है। अतुल महान् विकास है। अच्छा दोइन्द्रिय आदि जीवों से कितना अधिक विकास है तेरा ? बहुत अधिक विकास है पन्चेन्द्रिय जीवों में भी अनेकों को तक लो निरख लो, वहाँ भी तुम अपने को अधिक श्रेष्ठ पाओगे। इस श्रेष्ठता का मिलन तेरे ही पुरुषार्थ से तो हुआ है। इससे भी तू अपनी शक्ति का निर्दोषता का अन्दाज कर ले कितने विशुद्ध परिणाम किये होंगे जिससे आज की जैसी प्रखर बुद्धि प्राप्त हुई है। इतने महान विकास को तुमने पा लिया है, ज्ञान भी प्रयोजक पर्याप्त पा लिया है। अब अपने सत्य से अनुराग करो असत्य से मुख मोड़ो। इतना उच्च पद पाकर योग्य कर्तव्य से युक्त हो जाने का अर्थ है संसार में जन्म करके दुर्दशाओं को रचते रहना है। प्रियतम ! अपने स्वरूप की सुध लो, अन्यथा तेरी दुर्दशायें ही होती रहेंगी।

स्वभाव के अनुरूप आचरण में न भय है, न चिन्ता है, न कोई संकट है

यदि कुछ भय है, कुछ चिन्ता है, कुछ संकट है तो अपने में यह खोज करो कि तुम आत्मीयता के विरुद्ध कुछ आचरण तो नहीं कर रहे हो। ज्ञाता दृष्टा रहना, राग द्वेष अन्याय विषय कषाय प्रवर्तन नहीं करना, हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह बुद्धि नहीं करना ये सब आत्मरक्षक आचरण हैं। इनके विरुद्ध प्रवृत्ति करने से ही भय होता है, चिन्ता होती है, संकट आते हैं। अपनी प्रवृत्ति पर विचार करो। यदि कुछ पाप वृत्ति हुई हो तो उसका तत्काल प्रतिकार तो यह है कि उस पाप वृत्ति का परिहार कर दें। फिर बार बार अविकार निज ज्ञानस्वभाव की भावना करें उपासना करें। मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसा अनुभव होने पर इस उपयोग में कोई संकट नहीं रहता। हे आत्मन् ! तुम ज्ञान स्वभाव मात्र हो, तुम्हारा ज्ञानमात्र परिणमन है, इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ पवरता है वह उपाधिका संग वाला भाव है उसके पवरने में भी ज्ञान स्वभाव के महत्त्व का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिचय होता है। यह कर्म उपाधि तो सबके निकट है जहाँ यह उपाधि है वहीं छहों द्रव्य हैं, लोक में सर्वत्र छहों द्रव्य हैं, क्यों नहीं इस कर्म उपाधि के कारण अन्य पदार्थों में पुदग्ल आकाशादि पदार्थों में विकार परिणमन हो जाता है ? केवल जीव जाति के पदार्थों में ही हो सकता है इससे सिद्ध है कि विकार के पवरने में भी ज्ञान स्वभाव की महत्ता विदित होती है किन्तु विकार स्वभावानुरूप आचरण नहीं है अतः हेय है। केवल ज्ञाता दृष्टा रहने का कार्य स्वाभावानुरूप आचरण है। स्वभावानुरूप आचारण में शान्ति समृद्धि का लाभ है। जब भी भय हो, चिन्ता हो, संकट हो स्वभाव के अनुरूप आचरण में वर्त जाओ। स्वभाव के अनुरूप आचरण में न भय है, न चिन्ता है, न कोई संकट है।

हे प्रियतम ! तुम स्वयं ही ब्रह्मचर्य की मूर्ति हो

ब्रह्मचर्य ही एक मात्र कल्याण है, ब्रह्मचर्य ही तेरे स्वरूप में है। तुम चित् ब्रह्म हो, चित् ब्रह्म का महान प्रताप है। विश्व सारा ज्ञान में आ जाय ऐसी असाधारणता है और किस पदार्थ में। यह असाधारण चित् ब्रह्म में ही है। अहा ! मेरा स्वरूप परिस्पष्ट विशुद्ध चिन्मात्र है, इसमें विकार भय, शोक, चिन्ता, मोह, राग, द्वेष, विकल्प, बाधा हैं कहाँ। यह जैसा है तैसा ही आग्रह करके रह जाओ, अन्य कुछ आकांक्षा न करो तो तुम कृतार्थ हो। हे आनन्दमय निज नाथ ! आनन्द स्वरूप होकर भी आनन्द को तरसना, अन्य में अपना आनन्द ढूँढना यह तो प्रकट मूर्खता है। आनन्द रूप तो तुम स्वयं हो, अपने चित् ब्रह्म की ओर आ। अन्य का विकल्प मत कर। प्रयत्न तो यह कर कि किसी विषय का सन्निधान ही न हो, लोगों का सन्धिान ही न हो। एकान्त में रहो एकान्त में रह सकने का साधन इतना ही पर्याप्त है कि कोई एक साधक गृहस्थ रहे। मन रमाने का तू ऐसा अभ्यास कर कि अपने चित् ब्रह्म को ही निरखकर तृप्त रहे। अब किसके निकट रहना, किसको ज्ञान बताना। तुम्हारा तुम्हारे सिवाय और कोई साईं नहीं है। अपने स्वरूप के निकट उपयोग रखने का अभ्यास करो, यह अभ्यास अधिकाधिक निरन्तर हो। इस स्वरूप में जब लीन हो जाओगे तब प्रकट ही ब्रह्मचर्य में ही समृद्धि है, कृतार्थता है। जरा अपनी ओर नम कर झुक कर देखो तो, प्रियतम ! तुम स्वयं ही ब्रह्मचर्य की मूर्ति हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्महित तो आसान है, जरा मन वश में चाहिये

अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों को विषय भूत बन कर जो कषायों की वृत्ति बनाई जा रही है उससे सब कास बिगड़ रहा है। जिस जीवन में निराकुलता की झलक रहा करे वह जीवन क्या नर जीवन है, वह तो पशु जीवन है। यदि निराकुलता के लाभ के अर्थ सर्व कुछ त्यागना पड़े तो क्या बात है, त्याग ही देना चाहिये। त्यागना भी किसका पर पदार्थ का, असार का और फिर मिलता क्या है आत्मीय आनन्द, शुद्ध ज्ञान, अतुल आत्म समृद्धि। इतने पर का लोभ है, पर का आकर्षण है मन की आगुप्ति है तो बिगाड़ किसका है जरा विवेक तो करो। प्रिय आत्मन् ! क्यों नहीं आप अपने में समा जाते हो, क्यों कष्ट भोग रहे हो। आत्मा स्वयं शान्त स्वरूप है शान्ति पा लेना फिर कैसे कठिन है। वस्तु स्वरूप के विरुद्ध यत्न करने में चिन्तन में मन को लगा देते हो इस कारण आत्महित दूर हो गया है। यह दुनिया तुम्हें जानती नहीं है, फिर क्यों इस पर तेरा आकर्षण होता है। प्रियतम ! अब अपनी रक्षा करो, दया करो, सुध करो, सम्हाल करो। बाह्य जगत का आकर्षण तज दो। यदि विकल्पों में जीवन का समय गुजार दिया और मरण किया तो हीन भवों में उत्पन्न होगे, फिर क्या होगा। इस कारण धैर्य धरो अब, कषाय से निवृत्त होओ अब। ये सब ज्ञान द्वारा साध्य हैं, अपनी सिद्धि में कुछ कठिनाई ही नहीं। आत्म हित तो आसान है, जरा मन वश में चाहिये।

वैभव की कुछ हानि तो सह लो, किन्तु शंकित व्यक्ति पर आपत्ति न डालो

लोक वैभव पुण्यानुसार आता है, उस पर कोई गर्व करे कि हम कमाने वाले हैं सो असत्य बात है। उसे सत्य इस प्रकार तो कह सकते हैं कि हमने धर्म के अभिमुख होकर कुछ अच्छे भाव किये थे पहिले, जिसके कारण पुण्य कर्म का बन्ध हुआ था। अब उसके उदय काल में हमारे थोड़े ही उपयोग से श्रम से अथवा बिना आभास के वैभव निकट आ रहा है, किन्तु हम अपनी किसी क्रिया से वैभव को खींच लेते हैं, यह बात असत्य है। तब जो भी वैभव प्राप्त हुआ वह तुम्हारे पुण्य से आया है। यदि कोई पुरुष कुछ हानि कर जाता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा हानि न हुई हो और तुम हानि मान लेते तो जिस पुरुष पर तुम्हें शंका हुई है कि इसने हानि की है उस शंकित पुरुष पर कोई लौकिक आपत्ति दबाव बंधन आदि कठोर उपाय न करो। वैभव तो जो कुछ थोड़ा हानि में आया होगा सो पुण्य पल्ले है तो फिर आ जावेगा तथा पुण्य नहीं है पल्ले तो वह तो जाना ही था यह मान कर संतुष्ट हो जाओ। शंकित व्यक्ति पर सरकारी कोई आपत्ति डालने पर दोनों तरह से अशान्ति पाओगे, यदि उसने अपराध नहीं किया है तो उसकी ओर से या अन्य विधि से तुम विकल्प या आपत्ति शंका कर के दुःखी होओगे। यदि वह निकला भी अपराधी तो अपराध से बढ़कर दण्ड पा लेने का विकल्प करके दुःखी होओगे या कुछ उसमें लाभ न पा सकोगे या झंझट बढ़ जायेगी उससे दुःखी होओगे। अतः अच्छा यही है कि वैभव की कुछ हानि तो सह लो, किन्तु शंकित व्यक्ति पर आपत्ति न डालो।

अपने आपको संतोष से ओत प्रोत रखो

दुनिया में क्या होता है उससे तुम्हारा क्या ? दुनिया के कुछ होने से तुम पर कुछ नहीं बीतती है, तुम पर ही कुछ हो रहा है वही तुम पर बीतती है। अब परख लो ना, तुम पर क्या बीतती है ? तुम में जो पर परिणति विषयक लोभ जग रहा है, किसी पर वस्तु के बारे में इतना यह हो जाय इस प्रकार की जो आकांक्षा जग रही है तथा इसी लोभ और आकांक्षा के कारण जो निरन्तर असंतुष्टता बन रही है यह विपदा तुम पर बीत रही है खूब विवेक करके समझ लेना। इन विकल्पों से कुछ तेरी सिद्धि भी है क्या ? ये कुछ न रहेंगे जिनके सम्बन्ध में विकल्प कर करके पच रहे हो, मर रहे हो तथा फल इसका यह होगा कि अनगिनते युगों तक कीड़े मकोड़े आदि बन बनकर तुच्छ व क्लिष्ट रहोगे। दुनिया में कुछ हो, कुछ बनो, कुछ रहो, उससे तुम्हें क्या ? तुम तो वर्तमान में ही दुःखी असंतुष्ट हो रहे हो फिर इस वृत्ति में भविष्य के सुख शान्ति की क्या आशा की जा सकती है। प्रियतम ! अपने को सुख शान्ति में न रख सके और जो कुछ विकल्प मचाया वह कूड़ा ढो ढो कर बरबाद होना ही है। अपने सम्बन्ध में अधिक विचार करो। दुनिया में कोई क्या कहता है इसका तुम पर कोई प्रभाव नहीं। तुम अज्ञान को छोड़ो, सब दुष्ट भाव अज्ञान का है इसी से दुःखी हो। अपने स्वरूप को समझो, विकल्पों से हट कर विशुद्ध आनन्द को प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करो। तुम्हारा सार इसी में मिलेगा अपने आपको संतोष से ओत प्रोत रखो।

मेरा कुछ नुकसान नहीं, मैं तो अपने में भरा पूरा हूँ

हम जितने हैं उतने ही हैं। इसमें से कुछ निकलता नहीं। पर्यायें, अवस्थायें हमारी होती रहती हैं, होती रहो, मिटती रहती हैं, मिटती रहो, इससे कुछ यह बात नहीं हो जाती है कि मुझमें से कुछ निकल गया। मुझमें से कुछ भी नहीं बाहर जाता है, मैं जितना हूँ, गुण पर्याय वाला हूँ वह मैं उतना पूरा रहता हूँ सदा पूरा रहता हूँ मेरा कहीं कुछ नुकसान नहीं। नुकसान समझने के दो आधार होते हैं—(१) एक तो सम्पर्क के लोगों पर दृष्टि बनाये रहना, (२) दूसरा बाह्य द्रव्य से, इज्जत से, प्रशंसा से, नाम ख्याति से अपना बड़प्पन समझना। जब सम्पर्क के लोगों पर दृष्टि होती है तब अपनी सुध खोकर पर लोगों की दृष्टि में अच्छे जचने का विकल्प बना लिया जाता है और सब की दृष्टि में अच्छे जच जाना यह तो अपने हाथ की बात नहीं सो इसमें अनेकानेक बाधायें आना व बाधा में भी कुछ नहीं अनेकानेक कल्पनायें करके बाधा समझ लेना ये दो कठिनाइयाँ आती हैं तब विह्वल होना पड़ता है। अब दूसरे आधार की पोल देखो—बाह्य धन संचय हो गया कल्पित वैभव एकत्रित हो गया, लोग कुछ इज्जत करने लगे, प्रशंसा भी गाने लगे तो वह सब क्या है मूर्खों का प्रसंग। मूर्खों के व्यवहार में मूर्ख बन कर मैं राजी हुआ चाहता हूँ, इस आधार में भी क्या दम है। इन सबकी कल्पनायें तजो, तुम तो प्रभु स्न् भरे पूरे हो। अपनी ओर दृष्टि दो और तक लो परख लो कि मेरा कहीं कुछ नुकसान नहीं, मैं तो अपने में भरा पूरा हूँ।

संसार में रुचि मत करो, केवल में दृष्टि रखो

तुम्हारा संसार तुम्हारा विकल्प है। तुम्हारा रहना उपयोग द्वारा होता है। जहाँ भी उपयोग दो वहीं तुम्हारा रहना है। अन्यथा तुम्हारा कहाँ रहना है। तुम तो अमूर्त हो, कहीं भी रहो, अमूर्त आकाश में निश्चयतः आकाश ही जैसे रहता है। ऐसे ही अमूर्त तुम में निश्चयतः तुम ही रहते हो और बाहर आकाश में जहाँ रहते हो वहाँ कोई भी चला आये उसको रुकावट ही नहीं। हम जहाँ रहें वहाँ और कोई न रह सके ऐसी यदि व्यवस्था बना दें तब तो हमारा रहना कहलावें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहीं, क्योंकि और किसी का रहना नहीं बनता। जैसे कि गृहस्थ ने जो घर अपना मान रखा है, तहसील में रजिस्टर्ड है, उस घर में अब दूसरों का अधिकार तो नहीं, दूसरे का रहना तो नहीं बनेगा सो उसका उस घर में रहना कहलाता है। ऐसे ही जिन आकाश प्रदेशों में जब जहाँ होता है वहाँ किसी दूसरे को मेरी ओर से रुकावट नहीं फिर मेरा रहना तो नहीं कहलाया। यह शरीर रोकता है किसी को, याने इस शरीर में दूसरे नहीं आ पाते हैं कोई तो इस शरीर से ही कहो, लड़ो, मेरे से क्या मतलब। तो मेरा बाहर घर नहीं, निवास नहीं, संसार नहीं। अज्ञान वश जो भी मैं विकल्प करता हूँ उसी विकल्प में रहता हूँ तो वही विकल्प मेरा संसार है उसमें लगाव रखने में मेरा हित नहीं है। अपने सहज परमात्मस्वरूप में भक्ति रखने में हित है। यही मेरा केवल का स्वरूप है! संसार में रुचि मत करो, केवल में दृष्टि रखो।

पर को व पर भाव को असार जान कर इनसे अलग हो लो, फिर सहज परमात्मतत्त्व के दर्शन सुगम हैं

पर पदार्थ तो अत्यन्त भिन्न हैं, उनसे तुम्हें मिलता ही क्या है। तथा जो रागादि भाव हैं, विकार भाव हैं, पर भाव हैं वे तुम्हें दुःखी करने के लिए ही प्रकट हुए हैं उनसे लगाव लगाकर पाओगे क्या। अतः पर और पर भाव से विरत रहने में ही तुम्हारा कल्याण है। मोटी सी बात एक यही समझ लो कि जो सार है वह तो अनादि से ही है, कुछ भी न हो और हो जाय ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि हो जाय इसका अर्थ क्या है ? कोई व्यक्त परिणमन हो जाय तो उसका उपादान तो चाहिये ही है, वह तो पहिले से ही सिद्ध हुआ ना। तुम भी सत् हो तो अनादि से ही हो, अब से पहिले भी तुम थे, क्या थे सो जगत के जीवों की ओर देख कर निर्णय कर लो ऐसे जीवों में से ही कुछ तुम थे। वहाँ भी समागम था, पर पदार्थों का सम्पर्क था, बताओ उनसे क्या मिला तुम्हें ? कुछ भी नहीं। तो अब भी जो सम्पर्क है उससे क्या पा लोगे ? कुछ भी नहीं। तब तो इनको पर को किसी को चित्त में न बैठाओ। सबको भूल कर, पर का विकल्प त्याग कर अपने में अपने को लगाओ, विश्राम पाओ। शान्ति के आधार तुम ही हो। पर से व पर भाव से जब लगाव न रखोगे, सब कुछ तुम्हें दिखेगा। जो तुम्हारा स्वरूप नहीं उससे हट जाओगे तो केवल तुम्हारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप रह जायेगा, वही तो प्रभु कहलाता है। वह परमात्मतत्त्व तुम में अब भी है। सहज है पर को व पर भाव को असार जान कर इससे अलग हो लो फिर सहज परमात्मतत्त्व के दर्शन सुगम हैं।

तुम तो शान्त ही हो, अशान्ति की अटक क्या है

तुम तुम ही हो, अन्य नहीं हो। तुम्हारे सत्त्व में प्रदेश में तुम ही हो, अन्य कभी आ नहीं सकता। तुम्हारा परिणमन तुम्हारी परिणति क्रिया से ही होता है, अन्य लाखों क्या सारा विश्व भी मिलकर तुम में परिणति नहीं कर सकता। तुम्हारी परिणति हुए बिना तुममें परिणमन होता ही नहीं है, फिर अन्य पदार्थ का भय क्या, अन्य पदार्थ की आशा की सार्थकता क्या। तुम अब भी शान्त हो, निराकुल हो, कृतार्थ हो, जरा अपनी ओर अपनी दृष्टि तो करो। तुम्हें क्या प्रयोजन जो पर के बारे में इतने विकल्प करो। उन विकल्पों की दो ही तो जातियाँ हैं (१) परोपकार की बात, (२) लोकेषणा की बात। परोपकार के विषय की बात देखो—जिन पुरुषों के उपकार के लिये तुम चेष्टा करते हो वे ही पुरुष तुम्हें अच्छा नहीं मानते, कदाचित् यह सोचकर कि कोई अच्छा नहीं मानता तो न सही, कभी ये अच्छा मान लेंगे, लो अच्छा भी मान लिया, पर इतने समय तक तुम्हारा क्या हाल रहा, व्याकुल रहे, चिन्तित रहे, दीन रहे, ठोकरें खाते रहे। वाह रे परोपकार। अपने तन को भी आराम न दिया, मन को भी आराम न दिया, तन को जोतते रहे, मन को जोतते रहे। शरण भूत सहज परमात्म तत्त्व की सुध लेने का अवकाश भी नहीं मिला, ऐसे परोपकार की शान में क्या हित है। लोकेषणा तो प्रकट मूर्खता है। लोग मलिन असार भिन्न दुःखिया कर्म प्रेरित हैं, उनसे तुम चाहते क्या ? वाह री बेवकूफी। अरे सब विकल्प छोड़ो। तुम तो शान्त ही हो, अशान्ति की अटक ही क्या है।

पापों से दूर रहने पर ही धीरता व शान्ति प्राप्त हो सकेगी

जितनी भी अधीरता है वह पाप वृत्ति के कारण है। ये पाप पाँच हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) क्रोध, (३) मान, (४) माया, (५) लोभ। पर वस्तु में मोह,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राग, द्वेष रखकर उससे अपना हित समझना; पर में तन्मयता का उपयोग बनाना मिथ्यात्व है। पर का आश्रय किये जाने पर अध्रुव तत्त्व का आश्रय होने से धीरता कहाँ सम्भव है। अपने शान्त स्वरूप की श्रद्धा नहीं करके परसे अनिष्ट होने की मान्यता से परका आश्रय करके जो रोष भाव उत्पन्न किया जाता है वह क्रोध है। इस क्रोध ने स्वयं को जलाया, संतप्त किया। संतप्त पुरुष के धीरता कहाँ सम्भव है। अपने अनन्त शक्ति सम्पन्न महान परमात्मतत्त्वमय अलौकिक अन्तः प्रकाशमान स्वरूप को न समझकर बाह्यलौकिक पुरुषों से कुछ कल्पित गुण श्रवण के आधार पर वह गुणसम्पन्न मान का अहंकार में डूब जाना मान है। ऐसे मान भाव में धीरता कहाँ से आ सकती है। अपनी खुदगर्जी के लिये, खुदगर्जी को छिपाने की इच्छा से मन वचन काय की अन्य अन्य प्रकार विरुद्ध विरुद्ध परिणति रखना माया है। मायाचार में धीर रहने का कहाँ अवकाश ! पर को अपनाना, पर में आकर्षित होना, पर का संचय करना ये सब लोभ कषायें हैं। लुब्ध चित्त में धीरता का वास नहीं होता। धीरता व शान्ति का लाभ ही आत्महित है। अतः धीरता व शान्ति के लाभ के लिये पापों से दूर रहो। पापों से दूर रहने पर ही धीरता व शान्ति प्राप्त हो सकेगी।

सहज ज्ञानस्वरूप की भूल में सारे संकट आ ही पड़ते हैं

यह लोक समागम सब इन्द्रजाल माया रूप है, असार है, तुमसे अत्यन्त भिन्न है इसके स्नेह से तुम्हें कुछ लाभ नहीं है, बल्कि अपना सब खो और बैठते हो। इस समस्त पर समूह का संकोच छूटे, इस समस्त जाति, धर्म, व्यक्ति आदि से परिचित पुरुषों में महत्त्व जाहिर करने की अन्तर्दाह शान्त हो, इस मायामयी दुनिया में कुछ अपना न बनाकर, खम्ब न गाड़कर, सकल विकल्पों से पूर्णतया निवृत्त होकर अन्तः समा जाने की धुन बनाना। हे मेरे प्रियतम ! इसी में तेरा सर्वस्व कल्याण है। किसी महान् कार्य की सिद्धि के लिये छोटी मोटी बातों का बलिदान करने में किसी को हिचक नहीं होती सब कुछ त्याग देते हैं। तो अपने को निरन्तर सहज ज्ञानस्वरूप अनुभवने का कार्य सर्वाधिक महान कार्य है। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य की सिद्धि के लिये लोगों का संकोच, लोकेषणा, पुद्ग्ल संचय आदि छोड़ना पड़े तो यह तो बहुत छोटी मोटी बात का त्याग है। जिनका होनहार अच्छा है, जो प्रभु बनेंगे उन पावन आत्माओं द्वारा यह सब कुछ क्षणमात्र में ही छोड़ दिया जाता है। देखो लोक में संकट अनगिनते हैं, किन्तु उन समस्त संकटों को दूर करने का एक ही उपाय है और वह भी सुगम, वह उपाय है कि व्यर्थ के पर विकल्प त्याग कर निज वास्तविक सहज पावन चित्स्वरूप की आराधना करो। इस सहज ज्ञान स्वरूप की भूल में सारे संकट आ ही पड़ते हैं।

संयम से चित्त में धीरता आने के कारण ज्ञान में स्वानुभव बल प्रकट होता है

स्वानुभव ही एक लोकोत्तम कार्य है, परिणमन है, वैभव है, समृद्धि है। जिस अनुभव में अखण्ड सहज चित्स्वरूप समाया है उस अनुभव से सम्पन्न आत्मा की महिमा गाये जाने के लिये शब्द ही नहीं तब उसका प्रतिपादन व स्तवन कैसे किया जावे। इस स्वानुभव को प्राप्त करने का बल ज्ञान में प्रकट करना है। ज्ञान जब तक स्वमें विश्राम करने के योग्य नहीं हो पाता तो उसमें स्वानुभव का बल प्रकट किया जाना अशक्य है। ज्ञान स्व में विश्राम कर सके इसके लिये चित्त में धीरता होना सहकारी कारण है। जब चित्त अधीर रहता है तो अभी चित्त का ही ठिकाना पूरा नहीं पड़ रहा है, ज्ञान विश्राम कहाँ से मिले। अब इस निर्णय के लिये आइये कि चित्त में धीरता कैसे आवे। पहले तो यह विचारिये कि चित्त अधीर हो क्यों जाता है। चित्त की अधीरता के क्या क्या कारण हो सकते हैं सो सोचिये— (१) पापकार्यों में मन वचन काय की प्रवृत्ति होती है तब ज्ञानविपरीत कार्य होने से चित्त का बल हीन हो जाता है। (२) पापकार्यों में वृत्ति होने पर अयश से बचने के भाव से विकल्प बढ़ाकर भय उत्पन्न कर लिया जाता है। (३) पापकार्यों में स्पष्ट वृत्ति होने पर भी उसके त्याग का नियमन होने से अस्पष्ट रूप से संयम घात होता रहता है और असयम के भाव रहने के समय में चित्त में सहज स्थाई तत्त्व के प्रति बलवती रुचि नहीं हो पाती है। यों अन्य अनेक कारण सोचे जा सकते हैं, उन सब में मूल बात यही है कि संयम न होने से चित्त स्थिरता नहीं रहती है। अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वानुभव के प्रेमियों ! ज्ञान में स्वानुभव का बल प्रकट करने के लिये अपने को धीर बनाओ। धीरता के लाभ के लिये संयमी रहो। संयम से चित्त में धीरता आने के कारण ज्ञान में स्वानुभव का बल प्रकट होता है।

चैतन्य स्वरसानुभवामृत के पान बिना तू अपने को रीता ही रीता पावेगा

जैसे एक इस नरजीवन में ही अपनी बात विचार लो—बचपन में अपने को छोटा असहाय परावलम्बी अनुभव कर रीता ही रीता समझता रहा और यह समझता रहा कि ये माता पिता ही भरे पूरे, स्वतंत्र समृद्ध सुखी हैं। कुछ और बड़ा हुआ तब भी रीता ही अनुभव किया। और कुछ बड़ा हुआ सपत्नीक हुआ सपुत्र हुआ, मनसूबे अनेक बाँधे, धन संचय भी किया, सब कुछ के बाद भी रीता ही अनुंभव किया अपने को। सारे जीवन भर यह रीता ही रीता रहा और मरण काल में तो अपने को असहाय, हीन, रीता अनुभवता हुआ, हाय जो जोड़ा सो भी छूटा जा रहा है इस खेद के साथ अति संक्लेश पूर्वक मरा। देखो ऐसे ऐसे अनन्त भवों में यही रीतापन अनुभव किया, सचमुच यह अब तक रीता ही रहा। यद्यपि खुद स्वभावतः भरपूर है, किन्तु इसकी सुध तो नहीं, सो उपयोग में रीता ही रीता रहा। यह आत्मा भरपूर कब हो सकता है ? जब अपने सहज सिद्ध चैतन्य स्वरस का अनुभव करे। जिस उपयोग में चैतन्य स्वरस विराजता है वह उपयोग भरा पूरा, तृप्त, समृद्ध, कृतार्थ हो जाता है। यह अपना आन्तरिक काम दृष्टि मात्र से सिद्ध हो जाता है। सहजसिद्ध चैतन्यरस का अनुभव ही अमृत है, इसके पान करने से तू उपयोग में भी अमर हो जायेगा, तृप्त भरपूर हो जायेगा। हे आत्मन् ! अब श्रद्धा सत्य बना, उल्टी पाटी बहुत पढ़ी, उसे मिटाकर अब सीधी पाटी शुरु से पढ़ आत्मतत्त्व की यथार्थ श्रद्धा कर। आत्मज्ञान से ही तू निराकुल शान्त पवित्र निरंजन हो सकेगा। जगत के माया जालों में तू न उलझ यहाँ माया जाल में रहकर चैतन्य स्वरसानुभवामृत के पान बिना तू अपने को रीता ही रीता पावेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा को आत्मा के सहज स्वरूप का उपयोग ही शरण है

बाह्य पदार्थ राग होने के कारण ही जीव को सुहावने लगते हैं, पदार्थों की ओर से सुहावनापन लगने की कोई चेष्टा नहीं हो सकती। एक इस घिनावने मासपिण्ड का ही उदाहरण देख लो—यह देह जिसमें भीतर हड्डी, मांस, मज्जा, खून, कफ, थूक, मल, मूत्र, विष्टा आदि भरा पड़ा है, जो कि एक अपवित्र चमड़ी से ढका हुआ है और ये सब दुर्गन्धित पदार्थ जब चाहे सामने आ जाते हैं। पसीना तो बाहर रोम छिद्रों से निकल कर दुर्गन्ध का वातावरण बना देता है, तब सड़ा सड़ा सा शरीर लगता है, ऐसा घिनावना असार शरीर भी मोहियों को सुहावना लगने लगता है। इस घिनावने देह के प्रेमवश बड़ी झंझटें भी उठाकर इससे प्यार भी क्या ? विकल्प बढ़ाना, इन्द्रियों का प्रयोग करना, चित्त निर्बल करना, अप॰ा को क्षोभ में रखना, बस यही सब तो प्यार है। अनेक पुराण पुरुषों के च.रेत्रों के बीच बीच घटनायें आती हैं एक कन्या के वरण के लिए बड़े-२ युद्ध किये गये। यह देह तो भार है इसे यह चेतन ढोये ढोये फिरता है। देह में सार कुछ नहीं है, मगर राग में देह सुहावना मान लिया जाता है। अन्य सभी बाह्य पदार्थ रागवश अपने भले जंचते हैं, किन्तु इनका संग नियम दुःख फलरूप है। बाहर में किसी भी अन्य पदार्थ का शरण चाहना व्यर्थ है, अनर्थ है। आत्मा तो स्वयं समृद्ध है, ज्ञानानन्दरसनिर्भर है, परिपूर्ण है, कृतार्थ है। आत्मा अपने आपकी ओर उपयोग दे तो इसमें आत्मा का सर्वकल्याण मंगल है। लोक में अन्य कुछ भी आत्मा को शरण नहीं है। आत्मा को आत्मा के सहज स्वरूप का उपयोग ही शरण है।

मैं अपनी राह से उल्टा चलूँ तो उसमें कष्ट ही कष्ट होना प्राकृतिक ही बात है

मेरी राह है ज्ञप्ति, जानकारी की गली पर बिहार करता रहूँ, याने जैसा मेरा ज्ञानमात्र स्वरूप है उसके अनुसार ही मैं अपनी वृत्ति रखूँ, केवल ज्ञाता दृष्टा रहूँ तो उसमें कहाँ विपदा है। कितना सुगम काम है, कितना सीधा काम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, जानना बना रहे, स्वरूप का विकास, उल्लास, विलास चलता रहे, कितना आनन्दमय पुरुषार्थ है, सहज कार्य है। इसके अतिरिक्त अन्य जो कार्य हैं वे क्या हैं, निश्चय से तो विकल्प मात्र हैं। व्यवहार से विषयभूत पदार्थों के सम्बन्ध के कारण नाना हैं वे सब असार हैं, व्यर्थ हैं, अनर्थ हैं। विकल्प बनाना मेरी बात नहीं, मेरी राह नहीं, यह तो तुच्छ वृत्तियों का काम है। मेरे प्रियतम ! अब अपनी अन्तः महिमा देखो, विकल्प बनने रूप तुच्छ कार्यों को तज दो। हे सहजपरमात्मतत्त्वस्वरूप आत्मन् ! तुम्हारी शान, तुम्हारी बान, तुम्हारी राह, तुम्हारा धाम सब कुछ अलौकिक है, अब पूर्ण साहस से काम ले, अन्य बातों को अपने में स्थान मत दे। बाह्य सब बाह्य ही हैं उनकी किसी परिणति में अपनी हानि मत समझ। उन सबका ज्ञाता दृष्टा बन। ऐसी तैयारी के साथ अपने भीतर अपने उपयोग को ले जाकर अपनी ऋद्धि की सम्हाल कर। अहा, यह मैं अमूर्त निर्भार, अबद्ध, स्वतंत्र, परिपूर्ण, चैतन्य, स्वरसनिर्भर अन्तस्तत्त्व कैसा अलौकिक आनन्दमय हूँ। इस शुद्ध चित्तस्वरूप सहज अन्तस्तत्त्व की स्वच्छ जानकारी मेरी ऐसी शुद्ध गली है जिस पर उपयोग द्वारा बिहार करके मैं शाश्वत विशुद्ध आनन्दधाम में पहुँच कर निराकुल हो जाता हूँ। मैं अपनी राह से उल्टा चलूँ तो उसमें कष्ट ही कष्ट होना प्राकृतिक ही बात है।

अपने को दीन अनुभव करना या समृद्ध अनुभव करना सब कुछ ज्ञान दृष्टि पर निर्भर है

जब पर पदार्थों की ओर दृष्टि व आकर्षण होता है तब उपयोग अपने स्रोत से चिग गया और तब स्थान भ्रष्ट हुए मनुष्य की तरह यत्र तत्र अतृप्त होकर डोलना ही पड़ता है उपयोग को। हाय रे हाय ! मोह ही सबसे बड़ी विडम्बना है, यह ही भयंकर आपत्ति है। आत्मा तो आनन्दमय है इसका कुछ बिगड़ा हुआ नहीं है। यह तो समस्त पर वस्तुओं से निराला है, यह सहज ही आनन्दस्वभाव मय है। यह व्यर्थ कष्ट समझ रहा है, क्या बिगड़ा इसका जो दुःख मान रहा है यह। यह है एक अपना प्रदेश मात्र, बाकी दुनिया है इससे निराली, ये अन्य समस्त चेतन व सारे अचेतन पदार्थ, तेरे से कुछ सम्बन्ध है क्या। कुछ भी तो सम्बन्ध नहीं, अपने में आप विकल्प मचाकर व्यर्थ की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पना बनाकर यह दुर्लभ नर जीवन व्यर्थ खो रहे हो और अपने जन्म मरण की परम्परा बढ़ा रहे हो। प्रियतम आत्मन् ! इतने तो धक्के खाये, इतने कष्ट सहे, मिला कुछ भी नहीं, खोया ही है सारा अपना विकास, कल्याण। इतने पर भी दृढ़ संकल्प नहीं बनाते, साहस नहीं जगाते। करना भी तो इतना ही है कि अपने को सबसे निराला परखकर सर्व पर पदार्थों का ख्याल छोड़ देना है, सारे विकल्प से परे होकर अपने में विश्वास के साथ जमकर स्थित हो जाना है। अपने को पर से रिक्त देखकर दीन अनुभव करना तेरे ही ज्ञान की पद्धति का फल है। अपने को पर से विविक्त स्वयं में समृद्धि परख कर तृप्त रहना तेरे ही ज्ञान की पद्धति का फल है। अपने को दीन अनुभव करना या समृद्ध अनुभव करना सब कुछ ज्ञान दृष्टि पर निर्भर है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

हे सनातन विशुद्ध अविकार चिदानन्दघन सहज परमात्मन् ! यद्यपि मुझ पर अनादि से कर्म आवरण छाया है, अज्ञान आवरण छाया है तथापि नाथ अन्तः स्वभाव तो परिपूर्ण चैतन्य तेजः स्वरूप है। इस ही रूप में देखने वाले भक्त (उपयोग) पर अब प्रसन्न होओ और इसे अंधकार से हटाकर ज्योति में ले जाओ। यह उपयोग विषय-कषाय के गहन वन में निस्तेज भाव में रम कर निस्तेज हो रहा है। इसी कारण अस्थिर अधीर व्याकुल हो रहा है। विवेकपूर्ण कर्तव्य तो यह है कि ऐसा अन्तः पुरुषार्थ करो कि जिससे यह उपयोग स्थिर धीर निराकुल हो जाय। यह बात आश्रय की छाँट कर लेने पर निर्भर है। जगत में एक मैं और इसके अतिरिक्त अनन्त जीव, अनन्त पुद्‌गल, एक धर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। अब इनमें से कौन सा पदार्थ तेरे लिये सारभूत है कि जिसका आश्रय करके तू विषय कषाय विकल्प के अन्धकार से हट कर ज्योति में आ जाय। धर्म अधर्म आकाश और काल द्रव्य तो अमूर्त हैं और अचेतन हैं, इनका आश्रय क्या किया जाय, और इनको विकल्प करने से भी लाभ कुछ नहीं है पुद्‌गल भी सब अचेतन हैं और पर हैं, इनका भी वस्तुतः आश्रय नहीं किया जा सकता और फिर इनके विकल्प में भी हित रंच नहीं है। अन्य जीव समस्त पर हैं अमूर्त हैं उनको आश्रयं भी क्या, व उनके विकल्प में भी लाभ क्या ? अब बचे केवल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने आप मैं यह चिदानन्दधन सहज परमात्मतत्त्व। इससे ज्ञान और आनन्द का विकास होता है सो हे निजनाथ ! अब अपने इस सहज अन्तस्तत्त्व के अवलम्बन के प्रसाद से मुझे ज्ञानानुभवस्वरूप कर दो, तमसो मा ज्योर्तिगमय।

निष्पाप जीवन ही धन्य है

मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ ये अन्तरंग पाप हैं और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये वहिरंग पाप हैं। जिन जीवों की प्रवृत्ति इन पापों में है उनका जीवन मरण तुल्य ही है। इस संसार में जीव जन्मते हैं जी कर पाप करते जाते हैं मरते जाते हैं। ऐसे जीवन का क्या मूल्य ? पाप भाव होते हैं वे क्षणिक भाव हैं, असार भाव हैं, मलिन भाव हैं, दुःख रूप भाव हैं। ये जब होने को आते हैं तो इनमें उस क्षण सावधानी चाहिये फिर तो वे नष्ट हो ही जावेंगे और यहाँ आत्मदेव की रक्षा हो जावेगी। पाप करके जिये तो उससे कौन सा लाभ है। अपनी पवित्रता खोई, पापकर्म बाँधे दुर्लभ नर जीवन का लाभ न उठा सके! निष्पाप होकर देख लो कितना लाभ उठा लोगे। मिथ्यात्व न रहे सम्यक्आशय हो जाये, मोक्षमार्ग के अनुकूल दृष्टि हो जाये, क्रोध न आये, शान्तवृत्ति रहे, अभिमान न जगे, छल कपट का भाव न आये, किसी भी विषय में राग न जगे, पंच इन्द्रिय के विषयों में मोह न हो, किसी प्राणी को न सताये, किसी पर अन्याय न करे, निन्दा, चुगली और झूठ के वचन न बोले, किसी की वस्तु को किसी भी भाँति हड़प न करे, किसी भी स्त्री जाति पर विषयाभिलाषा न रखे, परिग्रह का लालच न करे, ज्ञानस्वभावमात्र निजस्वरूप की प्रतीति रखे, निज अन्तस्तत्त्व की ओर अपना झुकाव रहे तो ऐसी पवित्र वृत्ति से जीने वाले जीव निःशंक, प्रसन्न, निराकुल, गम्भीर, धीर रहते हैं। निष्पाप जीवन वाले प्राणी संसार चक्र से छूट कर मुक्ति की ओर अग्रसर होते हैं और निकट भविष्य में मुक्त होकर अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, आनन्द को अनुभव करते हैं फिर सदाकाल ऐसे विशुद्ध बने रहते हैं। यह सब निष्पाप रहने का फल है। निष्पाप जीवन ही धन्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मस्वभाव की दृष्टि बनाये रहना ही मंगल, सार व शरण है

ऐसा कौन सा कार्य है जो मंगल हो अर्थात् पाप को नष्ट करे और सुख को उत्पन्न करे। इसका निर्णय करने से पहिले यह ही निश्चय कर लो कि यह मैं आत्मा क्या क्या कार्य कर सकता हूँ। मैं आत्मा अमूर्त चैतन्य ज्योतिः स्वरूप हूँ इसका जो परिणमन हो सके वही इस का करना कहलावेगा इसका परिणमन प्रतिभास मात्र है अर्थात् यह जाने देखे यही इसका कार्य है। तो जब मैं जानने देखने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कर सकता हूँ तब हमें इस पद्धति से कार्य का निर्णय करना होगा कि मैं क्या जानूँ देखूँ जिससे पाप नष्ट हो और आनन्द उत्पन्न हो ? इसका उत्तर है आत्मस्वभाव। आत्मस्वभाव में स्वयं मैं हूँ मुझमें मैं ही शाश्वत हूँ मुझे ही जानना है अतः प्रतिभास्य को खोजने की समस्या नहीं आती। सो इसका आश्रय करने से व्यग्रता का अभाव हो जाता है अतः पाप स्वयं नष्ट हो जाते हैं। यह आत्म स्वभाव अखण्ड है चित्स्वरूप है अतः इसके चेतने से सहज शुद्ध निराकुलता की वृत्ति जगती है। ऐसा कौन सा कार्य है जो परम सारभूत हो ? वह है अनादि अनन्त अहेतुक अन्तः प्रकाशमान चैतन्य स्वभाव की दृष्टि बनाये रहना। इस परिणति में इस अनुभूति में आत्मा समृद्ध परिपूर्ण विकसित हो जाती है अतः यही सारभूत है। ऐसा कौन सा कार्य है जो शरणभूत हो ! वह है ध्रुव निज कारण समयसार का आलम्बन। इस अन्तस्तत्त्व के सिवाय अन्य किसी भी वस्तु का आलम्बन धोखा पूर्ण है, क्योंकि कल्पना गत वे समस्त पदार्थ भिन्न हैं। इस अभिन्न अन्तस्तेज की उपासना ही शरण भूत है। अन्य कुछ भी मंगल, सार व शरणभूत नहीं है, केवल आत्म स्वभाव की दृष्टि बनाये रहना ही मंगल, सार व शरण है।

शुद्ध चैतन्य तेजः स्वरूप यह आत्मा ही मेरी दृष्टि में रहो

सब देख लिया, सब भुगत लिया, लोक में मेरा कहीं कोई न मिला, वस्तु स्वरूप ही ऐसा है उसके विरुद्ध कुछ हो ही नहीं सकता त्रिकाल भी। अतः किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी जीव से किसी भी पर वस्तु से नेह करना मात्र व्यामोह है, तथ्य कुछ भी नहीं है। मोह राग, द्वेष, भाव, रूप अध्यास ही विपत्ति है। यह अध्यास विडम्बना चैतन्य तेज के समक्ष टिक नहीं सकती जैसे अग्नितेज के समक्ष घास फूस भस्म हो जाते हैं यों ही चैतन्य तेज के समक्ष विकार विलास मलीन हो जाते हैं, चैतन्य तेज की यह समक्षता उपयोग द्वारा की जाती है। जिस उपयोग द्वारा की जाती है, जिस उपयोग का विषय स्वयं स्व चैतन्य तेज है उस उपयोग में चैतन्य तेज समक्ष है और इस समक्षता में रागादि विकार टिक नहीं सकते। अविकार प्रतिभास धाम तेजः स्वरूप सहज परमात्म तत्त्व मेरी दृष्टि में रहो जिसके प्रताप से जगत के सर्व विभाव संकट समाप्त होते हैं। यह सहज परमात्मत्व ही मेरा रक्षक है, साथी है सर्वस्व है इसके अतिरिक्त अन्य सब भाव मेरे कुछ भी नहीं हैं। अहो, स्वकीय तेज को भूल कर निस्तेज होकर बाह्य में शरण गह गहकर अनन्त काल यों ही दीनता में खोया। जैसा हूँ जितना हूँ स्वयं सहज उतना ही वैसा ही अपने को स्वीकारता रहूँ तो इसमें मेरी कृतार्थता है, मेरी सर्व समृद्धि है। मुझे अब अन्य कुछ समागम नहीं सुहाता, अपने स्वरूप से बाहर कहीं भी रमने का उत्साह नहीं है। है भी नहीं कुछ अन्य मेरा हित, सम्बन्धी। मेरा सर्वस्व भविष्य मेरे ही विलास पर आधारित है। मैं भाव ही मात्र कर सकता हूँ और भाव ही पर मेरा भविष्य निर्भर है तब मेरा कर्तव्य मात्र यही है कि मैं अपने सत्य सहज भाव की सम्हाल करूँ। एतदर्थ शुद्ध चैतन्य तेजः स्वरूप यह आत्मा ही मेरी दृष्टि में रहो।

अपना बिगाड़ करते जाते व अपने को चतुर समझते जाते। वाह री कुबुद्धि !

अपने किसी विषय की साधना के लिये दूसरों को सताना और अपनी विषयसिद्धि पर चतुराई समझना यह अज्ञान का फल है इसमें सारा अपना बिगाड़ है, दूसरे का बिगाड़ तो उसके भाव पर है। अपने किसी विषय की साधना के लिये किसी को असत्य बोलकर धोखा देकर चतुराई समझना यह अज्ञान है। इसमें सारा अपना बिगाड़ है। अन्य अन्य विषय प्रयोजन के खातिर दूसरों को धोखा देने में खुद का ही बिगाड़ है; मगर अपना बिगाड़ करते जाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और चतुर समझते जाते। इस कुबुद्धि में कुछ सार नहीं है। पंचेन्द्रिय के विषयों में लगना और यश प्रतिष्ठा में लगना कितना बड़ा अन्धेर है अज्ञान है और संकट है। स्पर्शन इन्द्रिय के विषयों में मुख्य अहित विषय है देहराग, जिससे अब्रह्मचर्य की वृत्ति बन जाती है। सोच लो इस कुवृत्ति में क्या पाया जाता। इस कुवृत्ति में अपना मनोबल खोया, वचनबल खोया, कायबल खोया और शंकित होकर अपने आत्माराम को द्विविधा में डाला, लो बिगाड़ ही बिगाड़ किया अपना। रसीले भोजनों को खाकर मोक्षमार्ग में प्रमाद बढ़ाया, मौज की वासना बनाई, स्वास्थ्य में बाधा डाली, मिला क्या, बिगाड़ ही किया अपना। मनोज्ञ रूप निरखते रहने की वृत्ति में भी बल खोया, उपयोग बिगाड़ा, रागशब्दश्रवण में भी यही बात। लोकेषणा का तो बड़ा विकट व्यर्थ का ज्वर लगा रखा है। हाय बड़े खेद की बात है यह तो, सहज अनाकुल ज्ञाता दृष्टा उत्कृष्ट प्रभुवत् और उपयोग को बिगाड़कर मायामयी वासना बना कर वासनाधीन होकर अपना विकट बिगाड़ किया जा रहा है। इसका फल है अनेक दुर्गतियों में जन्म मरण करते रहना। अब तो कुछ चेतो और खेद करो अपनी कुबुद्धि पर कि अपना बिगाड़ करते जाते व अपने को चतुर समझते जाते। वाह री कुबुद्धि !

अपने को अपने में लगाना ही अपनी सच्ची दया है

विषय कषाय के परिणाम ही वास्तव में मेरे शत्रु हैं। मेरा बिगाड़ कर सकने वाला अन्य कोई नहीं है। यदि यहाँ कोई लोग मेरे बिगाड़ में निमित्त होते हैं तो यह भी मेरे पूर्व कालिक विषय कषाय का फल ही है। विषय कषाय के परिणाम से उस ही प्रकार के दुःख हेतु कर्मों का बन्ध होता है और उसके हृदय में वैसा ही फल भोगना होता है, उसमें अन्य जीव आश्रयभूत हो जाते हैं। वर्तमान में भी देख लो विषय का परिणाम करके कितने दीन व पराधीन बन जाते हो यह ज्ञानस्वभावी सहज आनन्द घन चैतन्य महाप्रभु के लिये कुछ शोभा की बात है क्या। विषय का अनुराग होना यही आत्मा का पतन है। देखो उत्थान का सभी समय मौका है। कितना ही डूब जाने के बाद आखिर करना तो यही होगा कि अपने को यथार्थ जानो और उसके जानन में ही तृप्त रहो। इस आत्मवृत्ति के अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी काम हैं वे सब अनर्थ हैं। पर की ओर लगना, विषय कषाय रूप पर भावों में राजी होना यह सब अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपकी हिंसा है। अपने को अपने में लगाना, विषय कषायरूप पर भावों में राजी न होना यह अपने आपकी वास्तविक दया है। यह सब करना अपने ही तो आधीन है। अपने को बरबाद कर लो या अपना कल्याण कर लो सब अपने आधीन बात है। प्रियतम आत्मन् ! क्यों नहीं अपना कल्याण कर लेता है इस दुर्लभ मौके पर। कैसा सद्‌बोध पाया है, कैसी सुविधा पायी है इस सबका सदुपयोग कर ले। देख, अपना शरण आप ही है, अपनी दया अपने आपको ही करनी है। अपने को अपने में लगाना ही अपनी सच्ची दया है।

ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट पुरुषार्थ है और आखिरी मंजिल है

परमार्थतः परमार्थ स्वरूप निज चैतन्य स्वरूप निज चैतन्य स्वरूप में निस्तरंग होते हुए स्थिर हो जाना सो ब्रह्मचर्य है। इस स्थिति में सर्व समृद्धि है। इस परमधाम को, तीर्थ धाम को पाने के लिये व्यवहारतः भी ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये। जिसका चित्त विषय वासना से रहित हो कर निष्काम व निर्विकार रहता है वह महापुरुष मनोबली, वचनबली व कायबली रहता है। अपने अभिप्रेत शान्ति मार्ग में चलते हुए जो भी कभी बाधा उपसर्ग आते हैं उन्हें सहन करने की पूर्ण क्षमता रहती है, बल्कि उन उपसर्ग व बाधाओं में रह कर और भी विशेष रूप से परमार्थ ब्रह्मचर्य स्वरूप बनने की प्रगति होती है। ग्रीष्मकाल की बाधायें, आतापन उन्हें अन्तः शीतलता का अनुभव कराते हैं। इस अनुभूति पर बहिरात्माओं को विश्वास नहीं हो सकता। ज्ञानानुभवी संत जन इस रहस्य से सुपरिचित हैं। शीतकाल की बाधायें अन्तः प्रतपन का अनुभव कराती हैं। जिसके एक मात्र इस चिदानन्दघन अन्तस्तत्त्व के दर्शन की ही रुचि है वह इस परम धाम को सहज प्राप्त कर लेता है। इस सब साम्राज्य के अभिलाषी आत्महित प्रिय संतों का कर्तव्य है कि निरतिचार निस्त्रुटि, निर्दोष ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। देहवीर्य की रक्षा से उत्पन्न हुए देहतेज से अपने आप में स्वत्व का गौरव करने वाले महापुरुष अन्तस्तत्त्व में ऐसे विलक्षण अलौकिक तेज में आते हैं कि उनको हीनता, अकृतार्थता पास भी नहीं फटक सकती है। जीवन धन्य कहला सके इस का मूल ब्रह्मचर्य व्रत है। ब्रह्मचर्य पालन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके ब्रह्मचर्य मय ही रहना है। अतः यह पूर्ण प्रसिद्ध है कि ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट पुरुषार्थ है और आखिरी मंजिल है।

जड़ में रुचि होने से जड़ता ही हाथ आती है

घर, धन, स्वर्ण आदि पदार्थ जड़ हैं उनकी प्रीति रखने से उपयोग में जड़ ही तो समा गया तो हाथ क्या लगा ? जड़। पुत्र, मित्र, कलत्र आदि में भी प्रीति की तो कहाँ प्रीति की, निर्णय तो करो इस प्रीति करने वाले के उपयोगों में क्या समाया ? मल पूरित देह, यह भी जड़ है और घर, धन, स्वर्ण आदि से अत्यधिक गंदा है यह। देह में तो कुछ सार ही नहीं, बदबू, पसीना, मल, मूत्र, खून, चर्बी, हड्डी आदि ही तो है। इस देह के प्रति प्रीति रखने में उपयोग में जड़ ही तो समा गया सो बन गया जड्ड जड़ तथा पर देह में प्रीति की सो बन गया महा जड्ड जड़। जगत में लोग जड़ में ही प्रीति करते हैं व करना चाहते हैं। कहने मात्र को ही है यह कि कोई किसी जीव से भी प्रीति करता। जीवत्व का तो कुछ परिचय ही नहीं इस प्रीति करने वाले को। कदाचित् कोई ज्ञानी किसी जीव को उसके उद्धार के लिये भी प्रीति पूर्वक समझाता है तो वहाँ भी इस व्यवहार के प्रसंग में उपयोग में अजीव ज्ञेयाकार हुआ है, क्यों कि केवल जीवत्व उपयोग में आये तो शुभ प्रीति को किसी विकल्प को भी वहाँ अवकाश नहीं है सो व्यवहार भी कैसे किया जा सकता। वहाँ भी कैसे किया जा सकता। वहाँ भी हाथ क्या लगा ? जड़ता। कदाचित् धर्म स्नेहवश भी, पूर्वभव आदि के सम्बन्ध बिना भी किसी भी जीव को उद्धार का उपदेश देकर सुधारा जाय तो वहाँ यद्यपि अन्य सब घटनाओं से व्यवहार की पवित्र घटना है, फिर भी उपयोग में तो कुछ रंग आया ही है। वहाँ भी किसी रूप में जड़ता ही हाथ लगी। तथ्य तो यह है केवल सहज परमात्मतत्त्व उपयोग में हो तो वह सचेत उपयोग है उसके अतिरिक्त अन्य किसी भी विकल्प में लगे तो वहाँ किसी न किसी प्रकार जड़ता ही उपयोग में आई। जड़ता में रुचि होने से जड़ता ही हाथ आती है।

प्रभु का दर्शन ही प्रभु की कृपा है

प्रभु का व्यक्त स्वरूप है अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द व अनन्त शक्ति और अन्तः स्वरूप है सहज सिद्ध स्वतः सिद्ध चित्प्रतिभास। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो प्रभु का स्वरूप और अब उपासक की बात देखिये। उपासक का भी अन्तः स्वरूप तो सहज सिद्ध स्वतः सिद्ध चित्प्रतिभास है, किन्तु व्यक्त स्वरूप अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन, अल्प आनन्द व अल्प शक्ति है। अब प्रभु की कृपा के सम्बन्ध में देखिये प्रभु क्या कर सकते हैं और उनकी कृपा क्या हो सकती है। प्रत्येक अपने स्वरूप में अपना परिणमन करते रहते हैं। प्रभु भी अपने स्वरूप में अपना परिणमन करते रहते हैं। अर्थात् निरन्तर अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्द शक्तिरूप बनते रहते हैं, वे अन्य जीव में कुछ नहीं करते और न अन्य जीव पर लक्ष्य करके अपने में विकल्प करते हैं, क्योंकि प्रभु वीतराग हैं। प्रभु निश्चयतः अपने पर ही कृपा बनाये रहते हैं। प्रभु अपने पर अलौकिक कृपा बनाये रहते हैं तभी हम सब उपासक प्रभुभक्ति प्रभु ध्यान करके कल्याण कर लेते हैं, यों यह प्रभु की व्यवहार से कृपा है। अब उपासक प्रभु का दर्शन किस प्रकार कर सकता है सो देखिये। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप में ही परिणमते हैं, आत्मा अपने स्वरूप में परिणमता है, जानता है तो अपने को अपने में, देखता है तो अपने को अपने में। तो उपासक निश्चयतः दर्शन करेगा तो अपने को, सो अपने में प्रभु जैसा सहजसिद्ध, स्वतः सिद्ध, चित्प्रतिभासमय अन्तः स्वरूप तो है ही सो भगवान के व्यक्त स्वरूप को देखकर अन्तः स्वरूप का दर्शन करता है। अन्तः स्वरूप के दर्शन में अनुपम आनन्द व चमत्कार है। इस दर्शन से कर्म कटते हैं, मुक्ति प्राप्त होती है संकट सदा के लिये टल जाते हैं! सो यों प्रभु का दर्शन ही प्रभु की कृपा है।

ज्ञानानन्दस्वरूप निज अन्तस्तत्त्व की शरण गहना ही एक मात्र सार है

यहाँ सारा उपयोग का खेल ही (विलास) है, उपयोग बाह्य पदार्थों में लग गया इतने मात्र से तो असीम विडम्बना बन रही है और उपयोग निज अन्तस्तत्त्व की ओर आ जाय तो असीम सत्य आनन्द हो जायेगा। जब कुछ विवेक बुद्धि जगती है तब प्राप्त समागमों की असारता विदित होती है और प्राप्त समागमों की असारता विदित हो जाने से इन बाह्य प्राप्त समागमों से उपेक्षा हो जाती है। इस परोपेक्षा के होने पर उपयोग अन्तस्तत्त्व की ओर गति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। जब उपयोग केवल अन्तस्तत्त्व को विषय कर रहा हो उस समय जो वास्तविक परमार्थ आनन्द प्रकट होता है लोक में सार मात्र यही है, इस अनुभव के अतिरिक्त अन्य जो कुछ भाव बने सब असार है। पञ्च इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ इस आत्मा के अनर्थ के हेतुभूत हैं। परख लो क्या रखा सार स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में। यह मनुष्य भव का देह हड्डी, खून, चर्बी, चाम, मल, मूत्र का पिण्ड है ऐसा अशुचि शरीर इस उपयोग के लिए रम्य बने यह महा मूढ़ता की बात है, और फिर जिस देही से स्नेह करो उस देही के आधीन बन जाने से अति संक्लेश क्लेश को भोगना पड़ता है, भय, चिन्ता, अपमान, अपयश आदि विडम्बना भोगना पड़ती हैं। ऐसे ही रसना इन्द्रिय के विषय में भी क्या सार है ? सार तो तब है जब क्षुधा प्यास का मूल भी न रहे। ऐसे ही सर्व विषयों की बात समझना सब असार हैं। अनादि से जो अब तक भटकते चले आये यह सब विषयानुराग का परिणाम है। इन क्लेशों में मौज मानना यह और तीव्र विडम्बना है। इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों में कहीं भी रंच मात्र भी सार नहीं है। केवल ज्ञानानन्दस्वरूप निज अन्तस्तत्त्व की शरण गहना ही एक मात्र सार है।

सम्यग्दर्शन ही आत्मा का रक्षा बन्धन है

मेरे करों में कोई ऐसा बन्धन बाँध दे कि मेरी रक्षा हो जाय। बहिन बेटियों ने बच्चों भानजों ने अन्य अन्य भी जनों ने बहुत वर्षों तक राखी डोरा का बन्धन बाँधा मगर रहा मैं भी अरक्षित और वे भी अरक्षित। यहाँ रक्षा कैसी ? बाँधने वाले भी अचेत, जिन करों में बाँधा वह भी अचेत, जिस अवयवी के करों में बाँधा वह भी अचेत, जो डोरा बाँधा गया वह भी अचेत। बात तो अब तक कुछ नहीं बनी, किन्तु आस्था ऐसी हो रही है कि होना चाहिये मेरी रक्षा के लिये कोई बन्धन, क्योंकि बन्धन के बिना स्वच्छन्द होकर मन को स्वच्छन्द करके इन्द्रियों को स्वच्छन्द करके सारा पतन ही पतन किया। ... अच्छा तो ले लो कर्मों का बन्धन ... ! नहीं नहीं, वह तो रक्षा का बन्धन नहीं, हम तो रक्षा का बन्धन चाह रहे हैं। कर्मों का बन्धन तो स्वच्छन्दता का फल है वह हमारा अभिप्रेत बन्धन नहीं है। मेरे कर दो हैं—ज्ञान और दर्शन, इन पर चाहिये रक्षा का बन्धन; वह हो सकता है सम्यग्दर्शन, जिसका बाँधने वाला यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं चेतन, जिसमें कभी नहीं कोई भी अड़चन, जिसके ध्यान में रहते ऋषिजन, जिसका करते गान संत जन, ऐसा चाहिये रक्षाबन्धन। जब उपयोग बाह्य पदार्थो से हट कर शुद्ध चिन्मात्र सहज परमात्म तत्त्व में लगता है बँधता है तब सात तत्त्वों की लपेट से गुजर कर निर्विकल्प की एक गाँठ से बंध कर सम्यग्दर्शन रक्षाबन्धन ज्ञान दर्शन की शोभा बढ़ाता है। यही है सच्चा आत्मा का रक्षाबन्धन। तभी तो यह बात प्रसिद्ध हो गई है कि जिसके सम्यग्दर्शन का रक्षा बन्धन बंध जाय उसका नियम से कल्याण होगा, मोक्ष होगा। अब तो मैंने यही निर्णय कर लिया सम्यग्दर्शन ही आत्मा का रक्षा बन्धन है।

सारा मन मारकर मुझे तो अपने सहज अन्तस्तत्त्व में ठहरना है

इन्द्रियवमन के वश उपयोग रहेगा तो इसे जन्म जन्मान्तरों में भटकना ही पड़ेगा। ऐसा ही तो अब तक होता चला आया है। देखो इन्द्रियाँ तो बन बनकर मिटती गईं और मन भी बन बन कर मिटता गया, किन्तु यह आत्मा इन्द्रिय व मन के विषयों के वश होकर पराधीन हुआ दुःखी हुआ। लाभ इसने कुछ न पाया। अब इन्द्रिय व मन को मार कर अर्थात् जो इच्छा हो उसको मारकर उसकी पूर्ण उपेक्षा करके पूर्ण विश्वास के साथ अपने अन्तस्तत्त्व में तो समा जाओ। यही कार्य अब शेष रहा है इसे अब तक नहीं किया गया, अन्य काम तो खूब कर चुके। इस आत्मीय सुगम सहज कार्य के होने पर फिर कृतकृत्य हो जाओगे, फिर कुछ भी करना शेष न रहेगा। इच्छा को मारना कुछ कठिन काम नहीं। होती है इच्छा पिचाशिनी, तो उसे होने दो, उसके वश न होना यह हमारी बात है। जब अनन्तों बार इच्छाओं की असारता व व्यर्थता परख ली गई तो इच्छाओं की बात पूरी अनसुनी कर देने में क्या अटक है ? एक दो नहीं, सारी इच्छाओं को हमें मार देना है। इच्छाओं से रंच भी हित नहीं और ज्ञायक स्वभाव मुझ आत्मतत्त्व का रंच भी सम्बन्ध नहीं, बल्कि मेरी इच्छादिक विकारों पर इतनी कृपा ही है जो उनके जीवन के लिये मैं अपनी जगह देता रहा। अब मैंने समझा, इच्छायें तो माया हैं, इनका अस्तित्व ही कुछ नहीं, इनको हम जगह न दें और ये मर जायें, तो इनकी तो कुछ खराबी नहीं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये हैं ही नहीं कोई सत्, हाँ इससे हमारी भलाई, शुद्धता, निराकुलता, निरापदता जरूर हो जायेगी। अब तो मैंने ठान लिया—सारा मन मारकर मुझे तो अपने अन्तस्तत्त्व में ठहरना है।

जो मैं हूँ उसे देखता रहूँ इसके आनन्द को भोगकर तुच्छ सुख की कौन चाह करे

चाह करने में बड़ी परेशानी है। शान्ति से हटो, दिल में उधेड़ बुन करो, नये नये विचार बनाओ, शंकाओं को व भयों को भरपूर रहने देने के लिये गंदगी भर भर कर उन्हें अपनी जगह दो, ऐसी ऐसी अनेक झंझटें चाह बनाने में उत्पन्न होती हैं और चाह को राजी से अपने घर में बिठाने की ठान ही लो तो वर्तमान में भी परेशानी और भविष्य में भी परेशानी। और इसमें मिलता है क्या ? कुछ नहीं ? केवल कल्पना करली कि कुछ मौज आया यदि चाह माफिक विषय मिल गया तो। सो वह मौज (सुख) तुच्छ है, निर्मूल है, काल्पनिक है, असंख्य संकटों का कारणभूत है। यह तो है चाह की खासियत। अब जरा अपने स्वरूप साम्राज्य को देखो। शान्तस्वरूप है, ज्ञानप्रकाश मय है, इसके उपयोग से दिल में रंच भी उधेड़ बुन नहीं उठती, विचारों के बनाते रहने की उलझन भी नहीं। एक ज्योतिप्रकाश है उसे निरखते जाना और तृप्त होते रहना है, शंकाओं को व भयों के आने का जरा भी अवकाश नहीं। अपना साम्राज्य, अद्‌भुत आनन्द, यह सब है अपने स्वरूप की खासियत। अब जरा अपने स्वरूप की ओर झुक कर अपने आनन्द को भोगने का अन्तः पौरुष करो। लो इन्द्रियों को संयत किया, आँखों को मीच लिया, मन को भीतर चला दिया, आत्मातिरिक्त अन्य कुछ पर उपयोग नहीं दिया, विराम, ''' विश्राम, अद्‌भुत आल्हाद के साथ ज्ञानज्योतिमात्र का अनुभव। अहा कितना स्वच्छ स्वरस निर्भर आनन्द तो यहीं मात्र है, शेष तो मोह कल्पित तुच्छ सुख हैं, उनमें विषमता, अपवित्रता, आकुलता भरी पड़ी है। जो मैं हूँ उसे देखता रहूँ इसके आनन्द को भोग कर तुच्छ सुख की कौन चाह करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है, इसका सदुपयोग करलो

शरीरों की सब १९७।। लाख करोड़ जातियाँ (कुल) हैं उनमें से केवल १२ लाख करोड़ मनुष्य की जातियाँ हैं, उनमें बहुत थोड़ी प्रकार के ही देह उच्च कुल के हैं। अब समझ लीजिये कि इस जीव का कितना भवभ्रमण हुआ। अनन्ते भव पाकर कुदेहों में जन्म ले लेकर अनन्त काल में आज यह चेतवाला मनुष्य भव पाया है तो अब इसका सदुपयोग कर लो। इसका सदुपयोग क्या है? देखो सब कुछ भविष्य ज्ञानपद्धति पर निर्भर है। यहाँ ज्ञान के साधन हैं ६—स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरेन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय व मन। इनके दुरुपयोग में तो मानव जन्म का दुरुपयोग है और इनके सदुपयोग में मानव जीवन का सदुपयोग है। सो इनका दुरुपयोग सदुपयोग क्या है इसे समझ लेना चाहिये। स्पर्शनेन्द्रिय का दुरुपयोग है काम वासनावश दूसरे के देह का स्पर्शन करना, इष्ट स्पर्श में राग करना, अनिष्ट स्पर्श से द्वेष करना तथा स्पर्शनेन्द्रिय का सदुपयोग है ज्ञान रत विरक्त साधु संतों की सेवा करना, इष्ट अनिष्ट स्पर्श में राग द्वेष न करके उपेक्षा भाव से रहना। रसनेन्द्रिय का दुरुपयोग है इष्टरसों का राग करके भोगना, अप्रिय कठोर अहितकारी वचन बोलना तथा रसनेन्द्रिय का सदुपयोग है इष्टरसों से राग न करके संयत होना, वचन गुप्ति रखना, बोलना ही पड़े तो प्रिय मधुर हितकारी वचन बोलना। घ्राणेन्द्रिय का दुरुपयोग है इष्ट गंधों में राग प्रवृति करना तथा सदुपयोग है गंधों से विरक्त रहकर प्राणायामादि साधना से सहज श्वासानुपयोग से ध्यान में सहयोगी बनाना। चक्षुरेन्द्रिय का दुरुपयोग है इष्टरूष को निरखना तथा सदुपयोग है प्रभु साधु संतों की शान्त मुद्रा को निरखना। कर्णेन्द्रिय का दुरुपयोग है रागभरी वाणी को सुनना तथा सदुपयोग है ज्ञानविकासक वैराग्य वाणी सुनना। मन का दुरुपयोग है इन्द्रिय विषयों में व कषायों में, यश प्रतिष्ठा में मन को लगाना तथा मन का सदुपयोग है वस्तु के वस्तुगत स्वरूप का चिन्तन करना, प्रभुभक्ति में चित्त को लगाना, सहज शुद्ध आत्मस्वरूप में मन को लगाना। इन ज्ञान साधनों का सदुपयोग करने से ही मनुष्य जन्म की सफलता है। अतः यह निश्चय कर लो कि मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है, इसका सदुपयोग कर लो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खेद है ! समय बीता जा रहा है और तुम स्वभाव में समा नहीं पाते

इस मनुष्य भव में तुमने जन्म लिया, शिशुपन बीता, कुमारपन बीता, किशोरपन बीता, जवानी बीती, सब कुछ अमूल्य समय बीतता तो ही जा रहा है। पर समझावन को तो चतुर बनते, अपने आपको कुछ नहीं समझा पाते ! कल्याण लाभ कितना सुगम है, और सब कुछ समझ भी लिया है, कल्याण करने के उपाय को खूब निभाने की क्षमता भी तुम में है, फिर भी मन की इतनी स्वच्छन्दता बना रहे हो तो यह वृत्ति तुम्हारा विघात करने करने वाली है। अपने पुराण पुरुषों की चर्या पर दृष्टिपात करो। ऋषभदेव भगवान से लेकर श्रीधर केवली तक के काल में जो प्रभु हुए हैं उनका प्रताप देखो, सब कुछ वैभव भोग साधन होने पर भी मन थोथी बातों में लगा ही नहीं। अपने अद्यतन निकट पुराण पुरुषों को भी देख लो, गृहवंश में निकट के पुराण पुरुषों को भी विचार लो, कितना गाम्भीर्य था, कितना सहज वैराग्य था, कितना धैर्य था। उस ही वंश में उपजे हो तुम, और फिर निकटवर्ती अतीत वंशज पुरुषों से विशेष ज्ञान लाभ भी पाया है, सुविधा भी सारी प्राप्त है, इतने पर भी अपने स्वभाव में आने की दृष्टि नहीं करते, अपने स्वभाव में समा जाने की युक्ति नहीं करते तो प्रियतम ! बताओ इसे किसकी मूढ़ता कहें। अरे उठों, पतन भूमि से उठो, उत्थानासन पर विराजो, विश्राम करो इस जीवन का रहा सहा समय भी गुजर जाने वाला है। इस समय का सदुपयोग कर लोगे तो संसार संकटों से बच लोगे, असंयम और पराश्रित विचारों में तो हानि ही हानि है। स्वभाव तुम में है, स्वभावकी परख तुम में है, समा जाने की विधि तुम में है, फिर भी यह सहज सुगम अपना काम नहीं करते हो तो क्या कहें। खेद है ! समय बीता जा रहा है और तुम स्वभाव में समा नहीं पाते।

अपने को अपनी दृष्टि में रखो, सारी समृद्धियाँ तुम्हारी तुम ही में हैं

अलौकिक सर्वोत्कृष्ट तुम्हारी समृद्धि क्या है ? अखंड निर्विकल्प शुद्ध चेतना प्रकाश, जिस सहज प्रतिभास में निराबाध शुद्ध आनन्द घनरूप रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस स्वाधीन सहज निज समृद्धि की आकांक्षा करो, इसके समक्ष तीन लोक का अन्य सब वैभव जीर्ण तृणवत असार है। किसी भी पर पदार्थ से, चाहे वह कैसा ही अमूल्य हो, मेरा क्या वास्ता। किसी भी पर में मेरा क्या रखा। अन्य समस्त पर पदार्थों से निराला अपने को निरख कर पर के प्रभाव से एक दम रहित होकर अपने को अपने उपयोग में रखो और सकल समृद्धियाँ प्राप्त करो। तुम दृष्टि में कुछ रखने के अतिरिक्त और करते ही क्या हो। जब संसार चक्र में पड़ रहे, भव भ्रमण में रुल रहे, चिन्ताजाल में फँस रहे तब भी तुम कर ही क्या रहे हो सिवाय इसके कि कुछ न कुछ दृष्टि में रख रहे हो। जब तुम सिवाय दृष्टि के अन्य कुछ नहीं करते फिर तो दृष्टि में ऐसा ही पदार्थ रखो जिसे दृष्टि में रखने से सर्व आनन्द मंगल प्राप्त हो। क्या खोजने चलोगे उस पदार्थ को जिसे दृष्टि में लेकर तुम कृतार्थ व स्वार्थ सिद्धि सम्पन्न हो जाओगे। खोजने क्या चलो, खोजते तो आये हैं, तलाश करते तो आये हैं, अनादि काल से इसी नाम पर कुछ न कुछ, परन्तु आश्चर्य यह है कि स्वयं ही तो यह मंगल पदार्थ है और स्वयं को ही यों पहिचान न सके। प्रियतम ! बाहर तुम्हारा कहीं कुछ नहीं है, बाहर दृष्टि ही मत करो, अन्तर्दृष्टि करके पिछान लो अपने आधार को और उस अपने को अपनी दृष्टि में रखो, सारी समृद्धियाँ तुम्हारी तुम ही में हैं।

अपने को देखूँ, जानूँ और अपने में समा जाऊँ, बस एक यही है काम मेरा इस जीवन में अन्य कुछ काम ही नहीं है

अब तक सब कुछ देख भाल लिया, अपने पर अन्याय ही अन्याय किया। किसी अन्य से हड़प कर; किसी अन्य से बचाकर, किसी अन्य से छुपाकर कुछ विषयसाधन किया, उसमें माना कि मैंने चतुराई की किन्तु यह पता नहीं कि उसमें मैंने अपने आपको ही ठगा। क्या रखा किसी प्रकार धन संचय कर लिया तो, क्या रखा कुछ मन भर कुछ निहार लिया तो क्या रखा, कुछ राग शब्द मन भर कर सुन लिया तो क्या रखा, कुछ चतुराई से सरस कीमती आहार कर लिया तो क्या रखा, किसी मलिन देह में रागकर अपना समय और बल खो दिया तो क्या रखा, कुछ देह का फोटो व नाम का प्रचार करा लिया तो। पंच इन्द्रियों व मन की विषयवृत्ति की सारी बातें थोथी हैं, व्यर्थ हैं। इन वृत्तिकामोहों में अपने मित्रों को ठगा, अपने आपको ठगा, ठगा ही क्या,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब व अपने पर अन्याय ही किया। हे प्रभो ! अरहंत ! सिद्ध ! आपके प्रति भी भक्ति न रही, आपसे मैंने अपना मुँह मोड़ रखा, इस उद्दण्डता का फल तो बड़ा कठिन भोगना पड़ेगा। प्रियतम ! जो हुआ सो हो लिया, अब खेद मत करो, क्योंकि प्रभु का और अन्तस्तत्त्व का, याने धर्माधार का अनुपम विरद स्वभाव है। अब भी यदि पूर्ण श्रद्धा के साथ प्रभुस्वरूप की रटन, अन्तस्तत्त्व की उपासना कर लोगे तो भव भव के एकत्रित पाप कर्म भी क्षणमात्र में ध्वस्त हो लेंगे किन्तु अब प्रमाद करने का समय नहीं है, इस विशुद्ध उपासना में लग ही जाओ। अपना पूर्ण और प्रबल निर्णय बनाओ कि अपने को देखूँ, जानूँ और अपने में ही समा जाऊँ बस एक यही है काम मेरा इस जीवन में अन्य कुछ काम ही नहीं है।

अविकार चित्तस्वभाव की दृष्टि में वास्तविक पूर्ण स्वतन्त्रता है

कुछ भी बाह्य समागम बना लिया जाय, कैसा ही परिकर बना लिया जाय, कैसी भी सुविधायें प्राप्त हो जावें, परन्तु किसी भी बाह्य परिस्थिति में स्वतन्त्रता नहीं। बाह्य सम्पर्क में परतन्त्रता ही है। अच्छा परिवार मिला, तो क्या सिद्धि हुई, परिवार में राग भाव होने से जो क्षोभ, विकल्प, श्रम होंगे उनका दुःख तो होगा ही, साथ ही पर जीव के प्रति जो राग का बन्धन हुआ सो वे सब पर चाहे कितने ही तुम्हारे अनुकूल हों, पर वास्तव में वे अपनी इच्छा से ही अपने कषाय से ही अपना परिणमन करते हैं और इच्छाओं और कषायों में परिणमन सम होने की प्रकृति ही नहीं है अतः विविध विचित्र इच्छा और कषायें बनती रहती हैं सो पद पद पर प्रतिकूलता अथवा अनुकूलता होने पर भी वियोग आदि से भव होते रहते हैं सो परतन्त्रता व कष्टों का अनुभवन होता रहता है। जीवन तो अवश्य ही मिटेगा, कुछ समय के जीवन के कल्पित मौज का भी क्या करें। देश, समाज आदि बाह्य परिकर की स्वतन्त्रता का महत्त्व कुछ अंशों तक इस ही जीवन में है और वह भी अन्तः अनेक विवादों से कलुषित है, क्योंकि बाह्य स्वतन्त्रता का सम्बन्ध अनेक पुरुषों से रहता है। वास्तविक स्वतन्त्रता वहाँ है जहाँ केवल अपने आपसे ही सम्बन्ध रहे। सर्व ओर से उपयोग हटाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल सहज निज अन्तस्तत्त्व में उपयोग हो तो वहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता है, क्योंकि न वहाँ किसी पर का ख्याल है, न राग कल्पना है, साथ ही अन्तस्तत्त्व अविकार है अतः अविकार स्वभाव के आश्रय में उपयोग को क्षोभ का अवकाश नहीं। अविकार चित्स्वभाव की दृष्टि से हटे वहाँ ही पराधीनता है, अविकार चित्स्वभाव की दृष्टि में वास्तविक पूर्ण स्वतन्त्रता है।

सहज ज्ञान स्वभावमय अन्तस्तत्त्व का उपयोग रहे यही एक मात्र हितरूप सार शरण पुरुषार्थ है

दुर्लभ मनुष्य जन्म के क्षण असंयम में, स्वच्छन्द प्रवर्तन में व्यतीत होते चले जावेंगे और शीघ्र ही मरण काल आ जावेगा इस में तुम क्या लाभ पा लोगे। जो जन्म संसार संकटों से छुटकारा पा लेने का उपाय बना लेने के लिये था उस जन्म को तो गँवा दिया संसार संकटों में जन्म मरणों में फँसे रहने के लिये। तो बता इस अशरण संसार में प्राप्त बुद्धि के विकास का लाभ क्या पाया। पशु, पक्षी, कीट, नारकी आदि के देहों में जन्म लेकर दुःख पाते रहने में ही तूने चतुराई समझी है। धिक्कार है ऐसी बुद्धि को, धिक्कार है ऐसी जिन्दगी को। पंच इन्द्रियों के विषयों में चित्त बनाये रहना यह तो नारकीय जीवन है, नरक भव पाने की कुंजी है। पूर्व भव के धर्म आचरण तपश्चरण के प्रसाद से आज बुद्धिमान बन पाये हो। बुद्धि तुम्हारे ज्ञान स्वरूप का विकास है, निजी वैभव है वह भी खतम हो जायेगी विषय का संग में। फिर तेरे पास रहा क्या ? कथनमात्र के ज्ञान के साथ दुर्गतियों में जन्म ले लेकर मरना इस ही में रहने की आदत से तो सदा संसारी दुःखी रहेगा। प्रियतम ! चेत, कितना भी भूला भटक रहा हो, क्षणभर के आत्म दर्शन से और फिर उस अनुभूत आत्मा की प्रतीति से भव भव के बद्ध विकट कर्म बन्धन भी तुम नष्ट कर डालोगे। कितने भी गिर कर आखिर करना है यही आत्म धर्म की उपासना। जगत में किसी भी अन्य पदार्थ के आश्रय से जो भी उपयोग चलेगा वह विपत्ति और विडम्बना ही करावेगा अतः परोपयोग हित रूप सार शरण पुरुषार्थ नहीं है। सहज ज्ञानस्वभाव मय अन्तस्तत्त्व का उपयोग हो, यही एक मात्र हित रूप सार शरण पुरुषार्थ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छाओं से पूर्ण विरक्त रहने में ही शान्ति लाभ है

इच्छाओं का नाम ही संसार है। यह सारा जीव लोक इच्छाओं का ही फल है। इच्छाओं से मिलता क्या है ? व्यर्थ की परेशानी। जिन पदार्थों के सम्बन्ध में इच्छा बनाई जा रही है वे पदार्थ हैं अत्यन्त भिन्न, अपने आधीन नहीं, जैसा चाहे तैसा उनमें परिणमन हो यह सम्भव नहीं, हो भी तो नियम नहीं, अटपट मेल है। ऐसे असार पदार्थों की वांछा में क्या तत्त्व रखा है। इच्छाओं से आत्मा में अन्य कुछ आता नहीं, इच्छा हो ले और खेद हो ले सिवाय इसके और कुछ भी बात नहीं। इच्छायें ही प्रभुता के शत्रु हैं। आत्मा तो उत्कृष्ट पदार्थ है, परिपूर्ण व स्वतः सिद्ध पदार्थ है, यहाँ कुछ भी अधूरापन नहीं है, किन्तु इच्छाओं के सम्बन्ध से इसकी सब शान खतम हो गई। आश्चर्य तो यह है कि इच्छा में रखा कुछ नहीं, न कुछ समृद्धि है, न चमत्कार है, न आनन्द है बल्कि उल्टा अलाभ ही अलाभ है। इच्छाओं के कारण ज्ञान विनाश कुबुद्धि सम्बन्ध आकुलताओं का विस्तार, दीनता व क्लेश पात्रता बन रही है। सुख शान्ति चाहने का एक ही यह उपाय है, चाहे इसे कभी कर लो, जब से करोगे तभी से सुखी रहोगे। इच्छाओं को नष्ट किये बिना शान्ति कभी भी नहीं प्राप्त कर सकते। इच्छा जीव के संकल्प मात्र से हो बैठती है, इससे सस्ती सुगम और प्रिय लगती है, मगर इच्छायें तो जीव की बरबादी की जननी हैं, इच्छाओं से पूर्ण विरक्त रहने में ही शान्ति लाभ है।

आत्मस्वरूप के दर्शन में ही अपना गुजारा है

अन्य अन्य काम करके क्या करना है, क्या कर जाना है, कुछ भी तो हल नहीं निकलता। मेरे साथ तो विपत्ति लगी हैं शरीरों में फँसना, जन्मना, कैसी कैसी कुगति हैं, देखो पशुओं का मनुष्य कितना अपमान कर डालते हैं, उन पर बोझा लादना, मारना, पीटना, लात मारना और कुछ काम कर सकने के न रहे तो एक दम उनका घात कर देना, कितनी विपदायें हैं! इस भव में न चेते तो क्या होगा, ऐसे ही जन्मों को लेकर दुःखी रहेगा। अपना स्वरूप अपना प्रभु है। अपने प्रभु में अपना उपयोग बनाये रहोगे तो तुम्हारी रक्षा है। अन्यथा यह महा अनर्थ जगजाल ही तेरे पर हावी रहेगा। किसी भी बाह्यपदार्थ में प्रीति करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूढ़ता है। क्या है सम्बन्ध परसे तेरा ? रही इच्छा वेदना की बात सो इच्छा की कुछ पूर्ति भी कर लो, इससे क्या शान्ति हो जायेगी ? शान्ति तो दूर रही, अशान्ति ही बढ़ती चली जावेगी। जिन संत पुरुषों ने इच्छा विडम्बना से छुटकारा नहीं पाया, इच्छा दमन करके ही छुटकारा पाया। इच्छा दमन करके ही छुटकारा पाया, इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति करके ही छुटकारा नहीं पाया। बाह्य में किसी भी प्राणी से स्नेह करने में मिलता कुछ नहीं, बन्धन बढ़ जाता, कर्मबन्ध विशेष होता, निज नाथ के मिलन की पात्रता में बाधा आती। प्रियतम ! सर्व ओर से चित्त हटा लो, एकदम पूरे तौर से दृढ़ संकल्प के साथ। बाहर व अन्य किसी काम में भी अपना गुजारा नहीं है। आत्मस्वरूप के दर्शन में ही अपना गुजारा है।

जैसा मैं सहज हूँ वैसा ही मुझे रहना है, अन्य कुछ मेरी कामना नहीं है

मेरा साथी मात्र मैं ही हूँ। मेरा क्या, किसी भी अणु का साथी उसके सिवाय अन्य कोई नहीं। वस्तुस्वरूप है यह। मैं जो भी सहज हूँ, अपने स्वरूप से हूँ। हूँ तब मैं स्वयं कुछ खालिस हूँ, शुद्ध हूँ। जैसा भी जो मैं सहज शुद्ध हूँ वही मात्र प्रकट रहे यही तो धर्म का पूर्ण विकास है। मैं अपने सहज स्वभावमात्र नहीं रह पाता, यही तो मेरी विडम्बना है। मुझ पर कल्पना, राग, द्वेष, चिन्ता, भय, शोक, मौज आदि के मैल चढ़े हैं, इन्हें ही हटाना है, ये सब बाह्यतत्त्व हैं। कुछ भी चीज हो जीव या पुद्गल उसकी दो ही तो स्थितियाँ हो सकती हैं। या तो मैलों से आवृत हो या मैलों से आवृत न हो। तो अब सोचिये आज दशा मेरी मलावृत है, और कभी मलों से अनावृत भी तो हो सकती है। बस जो मलों से अनावृत दशा है उसी में अपना सर्वस्व कल्याण है। उससे परे अन्य कुछ दशा नहीं है याने वह परात्पर दशा है। ऐसा मैं तभी तो हो सकता हूँ जब मैं सहज स्वतः यही मात्र होऊँ। सो हूँ ही मैं कुछ अपने एकत्व स्वरूप। अपना जो भी सहज स्वरूप है उसका मात्र प्रकाश अपने विनाश के लिये, कष्ट के लिये कभी हो ही नहीं सकता। मेरा स्वतः सिद्ध अस्तित्व मेरे चैतन्य स्वरूप मात्र है। सर्व पर तत्त्वों से रहित स्व के एकत्व की भावना दृढ़तर रहें यही एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्र लक्ष्य है, पुरुषार्थ है, कार्य है। जैसा में सहज हूँ वैसा ही मुझे रहना है, अन्य कुछ मेरी कामना नहीं है।

हे प्रभो ! तुम्हारा दर्शन ही सत्य दर्शन है

नाथ ! तुम्हारे सिवा अन्य कुछ भी दर्शनीय नहीं है। जीव सब यहाँ के जो अशुचि असार जन्म विपाक देह को ढोये ढोये फिर रहे हैं इनकी प्रीति में तत्त्व क्या है, तत्त्व तो दूर रहा, संसार में रुलने का ही साधन है इनकी प्रीति। किसी को भी अपना मानकर होगा क्या ? सब अपनी अपनी कषाय के अनुसार अपने अपने ही गर्ज में है। एक इस जिन्दगी को ही कल्पित मौजों में काट लिया तो क्या हुआ, मौज के समय भी शान्ति नहीं मौज मानने के बाद भी शान्ति नहीं, मरण के बाद तो इन मौजों की प्रीति का बड़ा खोटा परिणाम भोगना पड़ेगा, क्योंकि इन विषय वासनाओं से अपने चैतन्य महाप्रभु पर बड़ा अत्याचार किया गया, अन्याय किया गया, यह अन्याय प्रभु पर असह्य हुआ, सो प्रभु बिगड़े तो समझ लो कहाँ तक बिगाड़ सम्भव है। प्रभु बिगड़ा और प्रभु का कुछ न बिगड़ा, उपयोग ही संतप्त रहा। उपयोग। सावधान बन, तुझे तो जानना ही है, सो ऐसा जान जिससे तू भी परेशान न हो। अन्तः जानो तो अपने चैतन्य महाप्रभु के मर्म को, बाह्य में जानो तो परिपूर्ण चिन्दानन्द विकास को, परमात्मा को। ज्ञानानन्दमात्र परमात्म स्वरूप का अन्तर्बल से दर्शन करना ही सत्य दर्शन है। व्यवहार में जिस जिस तत्त्व के दर्शन का कर्तव्य बताया है उस उस तत्त्व का परमात्मा स्वरूप का एक देश सम्बन्ध है तभी वह धर्मकर्त्तव्य में है। परिजन, मित्रजन, पुरजन, सुवर्ण, रजत, मणि आदि किसी का भी दर्शन हितकारी नहीं है, सत्य भी नहीं है, इसी कारण इनके सम्पर्क से जीव आकुलता ही प्राप्त करता है। शुद्ध चिद्घन प्रभु के दर्शन में आकुलताओं का अभाव है। हे प्रभो ! तुम्हारा दर्शन ही सत्य है।

एक मन होकर निर्णय के साथ उपयोग को आत्मानुभूति में लगा दो

संसार में सार कहीं कुछ नहीं है। यह आत्मा प्रतिभास स्वरूप स्वयं स्वभावतः सकलान्यविविक्त हूँ। बाहर में सब कुछ सम्बन्ध ही नहीं किसी का।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी भी अन्य की किसी भी परिणति से इस मुझ में कुछ नहीं बनता है। व्यर्थ ही में दुःखी होता हूँ। क्या रखा इस दुनिया में। यह लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है। केवल एक सामान्य राजू इतना होता है जितने में एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बू द्वीप से एक एक ही तरफ दूने दूने विस्तार वाले समुद्र द्वीप असंख्यात हैं घेरे हुए फिर भी वह क्षेत्र एक छितरे राजू से भी कम है। और यह १ योजन भी दो हजार कोश प्रमाण का है। फिर एक राजू ही मोटा चारों ओर से एक एक राजू हो वह है १ घन राजू ऐसे ऐसे ३४३ घनराजू प्रमाण लोक है। यहाँ से मर कर कहीं के कहीं जनमे, क्या रहा फिर यहाँ पर। काल भी अनन्त है, सदा रहता है। कितने दिन की थोथी असार कल्पना में बह कर दुर्लभ नर जीवन गँवा रहे हो मेरे प्रियतम ! उठो अब, सावधान हो, सर्व पदार्थों की उपेक्षा करके विकल्पों से नाता तोड़ कर प्रतिभास स्वरूप निज अन्तस्तत्त्व में समाओ, लोगों की लोग जाने, संस्था की कमेटी जाने। शरीर भी तेरा नहीं है, और जो लगा है शरीर वह तेरे क्लेश के लिये लगा है। फिर बता, यहाँ कहाँ रहना, यहाँ क्या करना। मन को स्तम्भित कर, अपने में समा जाने का पूर्ण संकल्प कर पूर्ण यत्न कर। मेरे प्रियतम ! तुम तो सहज पवित्र हो, प्रभु हो, एक मन होकर एक निर्णय के साथ उपयोग को आत्मानुभूति में लगा दो।

उपयोग को अपने अन्तः ले जाकर देखो यह है ज्ञान मात्र प्रभु, यही रहना है सदा

अनवरत पूरे पुरुषार्थ के साथ अपने उपयोग को अपने अन्तः ले जाओ। अपना निर्बाध गृह यही है स्वयं। जो इस आत्म गृह में जम गये उनकी बड़े-बड़े ऋषिजन आत्मसम्पूर्ण पद्धति से पूर्णविनय से उपासना करते हैं और वे निज गृहवासी अविकारी केवल ज्ञानी विशुद्ध परिपूर्ण ज्ञानानन्द में अनवरत तृप्त रहते हैं, ऐसे तृप्त कि अनन्त काल तक भी उसमें रंच मात्र भी तरंग न उठेगी, सदा एकरस, सदा एक रूप। धन्य है परमात्मदेव ! तेरे चरण के लिये मेरा सब कुछ न्यौछावर है। करना ही क्या है मुझे सिवाय आपके स्मरण के, अभेदाराधन के। कर भी तो नहीं सकता हूँ कुछ अन्य, केवल अपना भाव में मैं तो उत्पाद व्यय करता हुआ रहा करता हूँ। नाथ ! कभी भी तेरे चरणस्मरण का संग न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छुटो, छुटो तो इस तरह कि यही अभेद बन जाय। अहा, देखा अब अपना नाथ, यह तो चिन्मात्र, निरपराध, अविकार, परमपावन अनन्तानन्द स्वरूपी सर्व मंगलमय, लोकोत्तम, परम शरणभूत यही शाश्वत अन्तः प्रकाशमान था। तीव्र पाप का उदय था अब तक जो परोपयोग के, पराकर्षण के महापाप में अपने को लगाता रहा। नाथ तेरे दर्शन में सब कुछ पा लिया, सर्व अर्थों की सिद्धि हो गई, अन्य कुछ रंच भी वांछा नहीं रही। अन्तस्तत्त्व के दर्शन के प्रसाद से परम आनन्द बरस रहा है, सहज आनन्द बरस रहा है। इसे छोड़कर अब कहाँ जाना, उपयोग को अपने अन्तः ले जाकर देखो यह है ज्ञानमय प्रभु, यहीं रहना है सदा।

मैं खाली कहाँ हूँ, मुझे तो काम पड़ा हुआ है आत्मानुभव का अनवरत

मैं उपयोग ही तो किया करता था, उपयोग ही तो किया करता हूँ, उपयोग ही तो करता रहूँगा, अन्य कुछ बात है ही नहीं। जब उपयोग बाह्य पर पदार्थों की ओर चला करता है तब उपयोग का आश्रय पर होता, और वह है भिन्न, उससे मुझमें कुछ आता है नहीं, और है वह वियोगशील, सो इस स्थिति में विषय बदलते रहते हैं, मन के अनुकूल नहीं मिल पाते हैं, इस बीच उपयोग घबड़ा जाता है और जब चाहे अपने को खाली अनुभव करता है कि अब मैं खाली हूँ, कुछ मुझे काम ही नहीं मिल रहा है, बिना काम के मेरा समय कैसे कटे। यह सब संकट परोपयोग करने की प्रकृति से हुआ है। अब अपनी पद्धति बदलो, परोपयोग करने का ढंग एक दम छोड़ दो। तुम उपयोग ही तो करते आये हो। सो अपने उपयोग को अपने अन्तः ले जाकर देखो, चलो, सरको, एकरस होओ, समा जाओ अपने में, ऐसे समा जाओ कि अपने से बाहर प्रदेशों में बाहर उपयोग न चले, चमाचम, दिखने की भी गुंजाइश नहीं। अहा, कितना पावन काम है, कैसा स्वाधीन चमत्कार है, कैसी अलौकिक समृद्धि है, अहा, ऐसी ही वृत्ति रहो। इस आत्मानुभूति की वृत्ति में विषय स्वयं कारण समय सार, चैतन्य महाप्रभु है जो कि शाश्वत है, अभिन्न है, निज है इस कारण वियोग की कोई संभावना नहीं है, आनन्दधाम भी तो यही है। यह आत्मानुभव का काम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनवरत करने को पड़ा हुआ है काम की क्या, सहज परिणमन, पावन, आनन्दधाम, जिसे कभी छोड़ना ही नहीं है, जिसमें कभी ऊब ही नहीं है, समझ लिया सब अब मैं वास्तविक सम्राट हूँ आनन्द का स्थान हूँ मुझको मत छेड़ो, मुझे अन्य कुछ नहीं करना। मैं खाली कहाँ हूँ, मुझे तो काम पड़ा हुआ है आत्मा का अनवरत।

पर पदार्थ की आशा करना ही तो भिखारीपन है।

भिखारी लोग और दिया ही क्या करते हैं। सेठ लोगों से या किसी समर्थ से कुछ पाने की आशा करते हैं। यह उनकी आशा करने का परिणाम है कि पर वस्तु को माँगते हैं। भिखारियों की यह भीख विषय पूर्ति की आशा से अधिक गन्दी भीख नहीं है। देखो कामासक्त पुरुष काम वासना वश ही रुधिर चाम वाले अपवित्र शरीर के धारी प्राणियों से कैसी आशा करते हैं, उनके आगे कैसे दीन कायर बन जाते हैं। कोई भी प्राणी किसी का कोई लगता नहीं, सब स्वतन्त्र हैं, अतः कामार्थी प्राणी की इच्छानुसार पूर्ति हो जाय यह सम्भव नहीं है, कभी योगवश हो भी जाय तो उससे बात खतम नहीं होती, तृष्णा प्रबल हो जाती है। इस कल्पित पूर्ति में यह प्राणी मनोबल हानि, वचनबल हानि, कायबल हानि, आत्मानुभव पात्रता हानि आदि अनेक हानियाँ कर लेते हैं। लोग रसना इन्द्रिय के विषय की लोलुपता से सरस आहार की मन में आशा करते हैं। क्या कर रहे ये मूढ़ देखो जले मरे मुर्दा जैसे देह के खातिर अथवा विषय वासना वश हो कर क्या विकल्प बना डालते हैं, यह आशा क्या गंदी भीख नहीं है। लोग सुगंध के सूँघने की, स्वरूप के अवलोकन की, रागमयी वाणी के सुनने की आशा बनाये बैठे हैं उसका यत्न करते हैं। प्रभुवत् पावन ज्ञान स्वभावी आत्मा के ऐसे थोथे असार विकल्प उठें यह कहाँ तक उचित है, ऐसी आशायें क्या गंदी भीख नहीं हैं। दूसरों से मान, सम्मान, प्रशंसा, नामवरी, प्रतिष्ठा की आशा करना, यह सब तो समस्त भीखों से अधिकतम गन्दी भीख है। इस भीख से क्या मिलता है, देह को भी क्या मिलता है, आत्मदर्शन की पात्रता और खतम हो जाती है। लोग अन्य भिखारियों को तो घृणा की दृष्टि से देखते हैं, अपने बारे में विचार नहीं करते कि हम कितने तुच्छ भिखारी हैं, पर पदार्थ की आशा करना ही तो भिखारीपन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमूर्त प्रतिभास स्वरूप अन्तस्तत्त्व के निकट उपयोग बनाये रहो

लोक में ऐसा अन्य कुछ भी पदार्थ नहीं है जिसके निकट उपयोग बनाये रखने से शान्ति प्राप्त हो। इसका कारण यह है कि पदार्थ हैं सब ये अन्य, मैं हूँ उनसे जुदा, अतः दो सुविधायें हैं— (१) इन बाह्य पदार्थों के निकट रहना चाहूँ तो ये निकट बने ही रहें इस पर हमारा वश तो है ही नहीं, ये स्वतन्त्र पदार्थ हैं अपने उत्पादव्यय ध्रौव्य से परिणमते हैं जहाँ जैसे रहने का इनका भविष्य है रहेंगे, फिर तो स्नेह रख कर केवल क्लेश ही हाथ लगेगा। (२) इन बाह्य पदार्थों का स्वरूप चतुष्टय इन ही में है, इनसे बाहर इनका न द्रव्य है, न क्षेत्र है, न काल है, न भाव है, अतः इनसे मेरे को कुछ लाभ नहीं हो सकता, इनसे मेरे में कोई परिणमन नहीं आ सकता। रही असर की बात सो मैं ही अपनी योग्यता के अनुसार अपनी कल्पना बना कर इनको विषय मात्र करके अर्थात् इनको ध्यान में लेकर स्वयं विभावित होता हूँ, प्रभावित होता हूँ। जब ऐसी वस्तुस्थिति है तब अन्य के निकट बसने से मेरे को कुछ लाभ नहीं है, बल्कि जब भी वे आश्रयभूत होंगे तो विकार के आश्रयभूत होंगे, विकार ही सर्व आपदाओं का मूल है, जन्म मरण की परम्परा कराने वाला है अतः किसी अन्य पदार्थ के निकट उपयोग बसाने में सार नहीं है। केवल एक सहज स्वयं पदार्थ है ऐसा जिसके ही निकट उपयोग बसाये रहने में शान्ति लाभ है, मुक्ति लाभ है, अपना हित चाहो तो अमूर्त प्रतिभास स्वरूप अन्तस्तत्त्व के निकट उपयोग बनाये रहो।

अपने सारे भविष्यों का जिम्मेदार यह आत्मा स्वयं है

मैं आत्मपदार्थ हूँ, सत् हूँ अतः उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक हूँ। मेरे स्वरूप में ही यह बात बनी पड़ी हुई है तब मैं जो बनता हूँ मेरे से ही तो बनता है, अन्य बाह्य पदार्थ तो कोई निमित्त रहता है, कोई आश्रयमात्र रहता है। जैसे कि मेरे सुख दुःखादि परिणमन में कर्मोदय निमित्त है और उस समय जिन पदार्थों का ख्याल कर करके सुख दुःखादि किया जा रहा है वे पदार्थ आश्रयभूत मात्र हैं। सो निमित्तभूत कर्म कैसे बने ? वे तो मेरे ही कषाय परिणमन का आधार ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो रहा। यों हम भविष्य के जिम्मेदार हमी स्वयं हुए ना। आश्रय की बात देखो, कर्मोदय के समय जो भी मुझमें विकार तरंग बननी चाहिये थी, उसके परिणमन के लिये हमारे उपयोग में जो विषय आया वही तो आश्रयभूत कहलाया सो यहाँ भी हम विकार वेदना न सह सकने के कारण उपयोग ने जिसे शरण समझकर विषय किया वही तो आश्रय हुआ, यों आश्रय प्रसंग में भी हमने ही तो अपना प्रयत्न बनाया अतः आश्रय करके होने वाली सृष्टि की भी जिम्मेदारी हम पर आई। सो हे प्रियतम ! अपने सुधार के लिये आपमें ही कुछ सुधार किये जाने की आवश्यकता है। खूब सोच विचार कर लो। अपने सारे भविष्यों का जिम्मेदार यह आत्मा स्वयं है।

अमूर्त प्रतिभास मात्र स्वतत्त्व में समा जाना ही लोकोत्तम कार्य है

लोग कार्य करते रहने की ऐसी धुन में रहते हैं कि ऐसा कार्य करो जिसमें सर्वस्व लाभ हो और जो ऐसा महान हो कि उसके अलावा अन्य कुछ कार्य न करना पड़े। इसी आशय से दुनियावी बहुत बड़ा कार्य भी जो समझ में आता सो करते हैं, किन्तु एक तो उस कार्य में सफलता नहीं मिलती और कदाचित् सफलता मिल जावे तो उसमें बाधायें अनेक हैं, उसकी सम्हाल में व्यग्रता अवश्य रहती है, उससे तत्त्व लाभ कुछ नहीं मिलता। परन्तु एक मात्र अमूर्त प्रतिभासमात्र स्वतत्त्व में समा जाने का कार्य ऐसा लोकोत्तम है जिसमें प्रवेश पाने पर नियम से सफलता मिलती है और इस कार्य में विषय स्व है, कारण स्व है, प्रयोजन भी यही आनंदेकाधिकरण स्व है, अतः किसी परके द्वारा इसमें बाधा आती नहीं है, यह उपासक स्वयं ही तस्तन्यास के कारण पर की ओर लगता है सो निज में समय की स्थिति से चिग जाय यह उपासक की ओर का अपराध है। हाँ तो अमूर्त प्रतिभासमात्र स्वतत्त्व में समाये जाने की कार्य में सफलता अवश्य मिलती है तथा किसी के द्वारा इसमें बाधा नहीं है। इसके अतिरिक्त इस स्वकार्य की सम्हाल में आनन्द ही बरसता है। तथ्य की बात भी यही है इस जीव का कोई दूसरा न साथी है न शरण है, तब अन्य में कुछ किये जाने से अपना कुछ सम्बन्ध नहीं है। जो कुछ करना है। सो विकल्परूप कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है सो तो कुछ सिद्धि है नहीं। बाह्य वृत्ति वाले सब यत्न असार हैं। अमूर्त प्रतिभासमात्र स्वतत्त्व में समा जाना ही लोकोत्तम कार्य है।

क्या अनादि अनन्त काल में यही सार है

आत्मन् ! पता है तुम्हें कि समय (काल) कब से चला आ रहा है। समय अनादि से चला आ रहा है। समय का कभी आदि न था कि जिस क्षण पहिले समय था ही नहीं। जैसे समय की आदि नहीं, इसी प्रकार आत्मन् ! अपनी भी आदि नहीं। आत्मा सत् है। जो सत् है वह कभी असत् था यह हो ही नहीं सकता। जो भी सत् है वह अनादि से है। अब जरा समय के भविष्य की भी बात सोचो आत्मन् ! पता है तुम्हें कि समय कब तक रहेगा ? समय अनन्त काल तक रहेगा अर्थात् समय का कभी भी अन्त नहीं आवेगा कि किसी क्षण के बाद समय रहेगा ही नहीं। जैसे समय का अन्त नहीं, इसी प्रकार आत्मन् ! अपना भी अन्त नहीं। आत्मा सत् है वह कभी असत् हो जायेगा यह कभी भी नहीं हो सकता। जो भी सत् है वह अनन्त काल तक याने सदैव सत् रहेगा। अब देखो वर्तमान भव को, अनादि अनन्त काल के बीच वर्तमान में मिला भव कितने समय को है। अनाद्यनन्त काल के सामने निल की तरह है तथा अब कभी किसी मिनट कोई विषय प्राप्त होता है तो उस प्रवृत्ति में क्या दम है, बिल्कुल असार प्रवृत्ति है, अहित करने वाली प्रवृत्ति को देखकर तथा अनादि अनन्तकाल तक एवं किस किस उपाय से किस किस दशा में रहना होता है यह भी ध्यान में लाकर इतना तो अपने को कह लिया करो, विचार कोटि में रख लिया करो कि क्या अनादि अनन्त काल में यही सार है।

मान न मान, मैं तेरा महिमान

ये परिचित कल्पित मनुष्य मुझे कुछ मान ही नहीं रहे, ये अपनी धुन में मस्त रहें या तेरा कुछ करें। सर्व पदार्थ अपने स्वरूप में ही रहते हैं परिणमते हैं, विलीन होते हैं। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। ये जीव समूह आपके प्रदेशों में ही रहकर अपना ही कुछ किया करते हैं, परिणमें, विनशें, रहें। अपने से बाहर कोई कुछ कर ही नहीं सकता। यों भी देखो तो कोई भी मुझे मान ही नहीं रहा। क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि वस्तुस्वरूप ही ऐसा है कि कोई मुझे मान ही नहीं सकता। हाँ तेरे सम्बन्ध में विकल्प कर सकता है। राग वश, स्वार्थवश तथा कुछ सज्जनता हो तो शुभ विकल्प कर लेगा मेरे सम्बन्ध में, लेकिन अब तो उनकी इतनी भी सज्जनता नहीं रही। कोई भी मानव मुझे कुछ सब्र ही नहीं कराता, उछल-२ कर मायामय जीवलोक के बीच पहुँचता और विकल्प मचाता कि मैं तेरा सब कुछ हूँ, तुम मेरे सब कुछ हो, मैं तेरा महिमान हूँ। सर्व ओर से प्रयोगात्मक उत्तर मिलता है—हम तो जरा भी नहीं मानते तुम्हें, मान ही नहीं सकते तुम्हें, तो यह मोही कहता है कि तुम मुझे कुछ मानो या न मानो इस पर मैं क्या करूँ, मिन्नत ही कर सकता हूँ, आशा ही कर सकता हूँ कुछ तुमसे, सो मैं अपनी आदत तो न छोड़ूँगा। हाय री कुबुद्धि, कैसा पाशजाल में फाँसा है मुझे। कुछ थोड़ी बहुत समझ पा कर भी मैं दुनिया के तथ्य पर नहीं डट सकता। कैसा मोह का नाच है सब मेरा किनारा कर मर रहे हैं, कोई मुझे कुछ मान नहीं रहा है, किन्तु यह मैं मोही अपनी सारी कलई खोले जा रहा हूँ और जतायें जा रहा हूँ कि मान न मान, मैं तेरा महिमान।

कहीं रहो, कहीं बैठो, आँखें मीचो और अपने स्वरूप में रम जाओ

दुनियावी लोग अपना व्यापार चलाते रहने के लिये साथ में कागज, कलम, पास बुक आदि साधन रखते हैं जिससे वे किसी भी जगह हों अपना व्यापार बनाते रहें। यहाँ अपना असली काम करने के लिए अपनी सत्य आनन्द मय वृत्ति बनाने के लिये साथ में कुछ नहीं चाहिये। साथ कुछ लिपटा हो तो क्या, न हो तो क्या, इससे कुछ प्रयोजन ही नहीं। यहाँ तो अपना काम स्वयं में है, अपने कार्य का साधन स्वयं में है, साधनविधि स्वयं में है, उसके फल में जो अलौकिक लाभ होना है वह स्वयं में है। कितना अलौकिक लाभ, सर्वोत्तम लाभ और कितना सुगम साधन, और वह भी स्वाधीन तथा साथ ही साधना के समय भी आनन्द, सिद्धि में भी आनन्द, सिद्धि होने पर आनन्द। प्रियतम ! एक निर्णय कर लोगे कि मुझे काम एक ही पड़ा अन्य कुछ काम ही नहीं है तो इस निर्णय के साथ ही तुम्हारे अनेक क्लेश समाप्त हो जावेंगे। अपना काम, सहज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काम, स्वाधीन काम, आनन्द मय काम, सुगम काम, फिर भी इस ओर दृष्टि न दोगे तो यह बड़ा अनर्थ होगा, अपने आत्मदेव पर बड़ा अन्याय होगा। जो परदृष्टि, पराश्रय, विकल्प, भोग, उपभोग आदि यहाँ किये जा रहे हैं ऐसा तो करते करते अनन्त काल व्यतीत हो गया। उससे तो कुछ काम नहीं बनना है। अब उन थोथे असार समस्त विकल्पों को तोड़ो। अपने सारभूत, स्वाधीन, सुगम, सहज कार्य में उपयोग लगाओ। कहीं रहो, कहीं बैठो, आँख मीचो और अपने स्वरूप में रम जाओ।

करो कुछ भी, हित स्वरूपरमण में ही है

कषाय की प्रवृत्तियाँ अनेक हैं उनके उदय में अद्‌भुत व विचित्र भाव पैदा होते हैं उन भावों में बहकर कुछ भी यत्न करो, हित का वहाँ नाम भी नहीं है, आत्मा स्वयं शुद्ध ज्ञान दर्शनस्वभावी है, आनन्दमय है। अतः हित अपने आपमें ही मिलेगा, अन्यत्र नहीं। हितमय अपने धाम में उपयोग लगाओ, रमाओ, एकमात्र इस पुरुषार्थ से अन्य कुछ करना ही नहीं है। इस लोक में मेरे को करने योग्य अन्य कुछ है ही नहीं, जिस पर दृष्टि दो; जिसके सम्बन्ध में कुछ सोचो। जिस किसी के प्रति भी आकर्षित होओ, क्या मिलेगा वहाँ से ? केवल संसार क्लेश। प्रियतम निज नाथ ! बड़ी कठिनाई से अनेक दुर्गतियों को पार करके अब तो मनुष्य भव मिला और वह भी अनेक सुविधा वाला फिर भी इस प्राप्त साधना का कुछ महत्त्व नहीं आंक रहे हो, बताओ मेरे प्यारे कैसे कहाँ रहोगे। संसार महादुःखमय है। असार दुःखविपाक के विकल्प को ढोये ढोये कहाँ मर रहे हो। देखो परविकल्प में लगकर अपने चैतन्य प्राण का अहर्निश घात कर रहे हो। क्या तत्त्व पाओगे। ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्व में रम कर सदा के लिये निर्दोष, आनन्दमय हो जाता है, इस तथ्य को मत भूलो। आज पुण्य आया, समागम पाया, बल पाया, सो इसे विषय भोग उपयोग कीर्तिविस्तार आदि किसी भी अनर्थ में लगा दो, तुम्हें रोकने वाला कौन ? किन्तु यह निश्चित है कि कर्म तुझे छोड़ेगा नहीं। रूप, रस, गंध, स्पर्श, इज्जत आदि सभी असार व दुःखरूप हैं इनमें क्या सार है। देखो करो कुछ भी हित स्वरूपरमण में ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुनियावी हट छोड़कर सत्य का आग्रह करो

किसी भी पौद्‌गलिक वैभव के पाने की, किसी भी प्राणी के स्नेह के पाने की, किसी वर्ग से इज्जत के पाने की हठ में कुछ भी हित नहीं है। बाह्य चेतन के प्रति कुछ भी कर देने की हठ कभी सफल नहीं होगी। कभी सफलता भी मिले तो भी सफलता नहीं समझना चाहिये, क्योंकि हठ की सफलता दूसरों की राजी पूर्वक नहीं हुआ करती। बाह्य चेतन अथवा अचेतन पदार्थ के हठ में कुछ लाभ नहीं है, उल्टी हानि ही है। चेतन पदार्थ के प्रति हठ करना तो अत्यधिक विडम्बना का कारण है। जगत में अन्य दुःख है ही क्या ? पाँच इन्द्रियों के तथा मन के विषयों में हठ करना, यही तो किया जा रहा है सो इसके फल में विकल्प विपदा ही हाथ आती है। अहो, कहाँ तो केवल प्रतिभासस्वरूप, शान्तस्वभाव, आनन्दमय है अपना आप और कहाँ छा रही हैं विकल्प विपदायें। इस जीव पर घोर संकट अज्ञान का ही है। अज्ञान के हटते ही समस्त संकट शीघ्र प्रलय को प्राप्त होते हैं। अज्ञान हटा, ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व उपयोग में रहा वहाँ संकट की कहाँ गुंजायश है। संकट तो परके साथ सम्बन्ध मानने का होता है। परसम्बन्ध की कल्पना ही ज्ञान स्थिति में नहीं होती। सो मेरे आत्मन् ! शान्ति के अर्थ अन्य कुछ नहीं करना, पर में कुछ नहीं करना है। मात्र यही कर्तव्य है कि दृढ़ता के साथ, निःशंकता के साथ अपने विशुद्ध प्रतिभासमात्र स्वरूप को निरखते रहो, अन्य कुछ भी विकल्प करने में हित मत मानो ! जो सत्य है उससे अनुराग करो। दुनियावी समागम विनश्वर है उसके अनुराग में क्लेश ही क्लेश है। दुनियावी हठ छोड़कर सत्य का आग्रह करो।

दुर्लभ मौका मत चूको, आत्मोद्धार की नींव बना ही लो

देखो, अनादि से रुलते रुलते आज मनुष्य भव में आये हो। ज्ञान नेत्र खोलकर देखो कितना दुर्लभ सुअवसर प्राप्त कर लिया है। यहाँ वस्तुस्वरूप का यथार्थ बोध कर सकते हो, कर लेते हो, क्या कर्त्तव्य हैं क्या अकर्त्तव्य हैं इसका भी प्रकाश पा लेते हो, संसार संकटों से मुक्त हो जाने का क्या मार्ग है यह भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निःसंदेह जान लेते हो, इतनी बड़ी बड़ी उन्नति, प्रगति, विभूति प्राप्त कर ली हैं, बताओ और क्या चाहिये, अब तो भाव सम्हाले रहने का ही काम है। सो गुप्त ही गुप्त में गुप्त स्वानुभवप्रयोग से गुप्त आत्मोद्धार व्यक्त करना है। इतना सुगम कर्तव्य भी न कर सके तो यह प्रसाद बड़ा मंहगा पड़ेगा। यह संसार वन महान गहन है, इसमें रुल गये नाना जन्म संकटों में बह गये तो फिर बड़ा कठिन है ऐसे मनुष्य भी हो सकना। प्रिय आत्मन् ! अपने सुख के लिये ही तुम सारा श्रम कर रहे हो, परन्तु विषयप्रीति वाला श्रम सुख शान्ति से बिल्कुल विपरीत श्रम है। विषय प्रीति के श्रम में सुख-शान्ति भी नष्ट कर देते हो, मनोबल वचनबल कायबल भी खो देते हो, चिन्ता की चिता में आरूढ़ होकर भावमरण करते हो, सभी प्रकार से बरबाद होते हो, ऐसे बरबाद होते हो कि देखो विषयों में बरबादी ही बरबादी तो सारी है, लाभ का नाम भी नहीं है। यह अवसर तो चेतने का है। देखो मन को जरा संयत कर लो तो सारा मंगल ही मंगल है। बहुत तो पार हो चुके थोड़ा ही संयमलीन का सुगम स्वकार्य रह गया है। यदि इस वर्तमान शेष संसार क्षण को संयम से पार कर दो तो सर्व सम्पन्नता प्राप्त करली समझिये। दुर्लभ मौका मत चूको, आत्मोद्धार की नींव बना ही लो।

सब से निराले ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की खूब सेवा किये जाओ

लोक में निश्चयतः सेवा किये जाने योग्य अन्य कुछ है ही नहीं, अन्य कुछ सेव्य की खोज की बात तो दूर रही, निश्चयतः किसी अन्य की सेवा भी नहीं कर सकते। बाह्य का तो मात्र आलम्बन किया जाता है, सेवा खुद की ही सर्वत्र की जाती है। आलम्बन भी क्या ? इतना ही आलम्बन कि उपयोग का विषय बाह्य पदार्थ हो गया। अब बाह्य अर्थ विषयभूत हों इस पद्धति से अब बाह्य में सेव्य की खोज करें। शुद्ध, बुद्ध, निरंजन परमात्मतत्त्व जो कि कार्य समय सा है, वह सेव्य है, क्योंकि इस कार्य समयसार रूप सहज परमात्मतत्त्व के ध्यान से ज्ञानस्वभावानुरूप शुद्ध निर्विकल्प पूर्ण प्रतिभास स्वरूप को विषय करके प्रतिभास स्वरूप को प्रतिभासने लगता है। जो ज्ञान अपने ज्ञानस्वभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को जाने वह ज्ञान ही मंगल है, लोकोत्तम है, शरण्यभूत है। इस अन्तस्तत्त्व की खूब सेवा किये जाओ। सेवा के योग्य अन्य कुछ है ही नहीं। प्रियतम आत्मन्! अब सब घुण्डी खोल दो, सारी शल्य निकाल दो, अपने को ज्ञानमात्र ही अनुभव करो। बाहर तेरा कुछ भी नहीं है फिर रक्षा की आशा करना बिलकुल व्यर्थ है। कुछ नं पावोगे पर पदार्थ विषयक विकल्प करके। अपने दुर्लभ मानव जीवन के क्षण व्यर्थ क्यों गमा रहे हो। सर्व विकल्प छोड़ कर एक निर्णय के साथ निज ज्ञानस्वभाव मय अन्तस्तत्त्व के निकट आओ, यहीं बसो, सकल संकटों से परे रहो। आज का याने इस भव का सुअवसर इतना सुयोग्य पाया कि जिसकी मिसाल कुछ नहीं है। अब तो सबसे निराले ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व की खूब सेवा किये जाओ।

सब से अलग रहकर ही आबाद हो सकोगे

आत्मन्! अब तक सब में मिलकर रहे, सबके बीच रहे, पाया क्या? कुछ नहीं, खोया ही खोया है सब कुछ। वैभव सम्पदा के बीच रहे याने पौद्‌गलिक पीले सफेद आदि अनेक ढेलों के बीच रहे, पौद्‌गलिक ठाठों को बड़ा महत्त्व दिया। हुआ क्या? होना क्या था, वे तो जहाँ अपने अपने आधार में रहे, यहाँ संयोग वियोग की, इष्ट अनिष्ट की कल्पना करके क्लेशों का बोझ ढोते रहे। परिजन शरीरों के बीच रहे, पाया क्या? कुछ नहीं, विकल्पों के पाप ही मिले। एक तो पर द्रव्य होने के कारण ही नाते का प्रश्न नहीं उठता, और फिर हाड़ मास चाम आदि मलिन पदार्थों का ढेर। पाया क्या? पर दृष्टिकृत पाप ही पापों का संचय किया, चिरकाल तक जन्म मरण की परम्परा बनाये रखने का उपाय रच डाला। स्वयं द्वारा ढोये गये शरीरों के बीच रहा, पाया क्या? कुछ ममता, अहंकार जैसे गंदे विकारों का शिकार रहा मैं, क्षुधा, तृषा, रोग, शीत, गर्मी, बध, बन्धन, अपमान आदि समस्त क्लेश इस शरीर के सम्बन्ध से ही तो सहे। और इन सब प्रसंगों में अन्दर ही अन्दर ऐसे खोखला होते गये कि जिसके परिणाम स्वरूप जन्मान्तर में निगोद, पृथ्वी, पेड़, कीट, पतंग, पशु, नारक आदि जैसी क्लेशप्रद दुर्गतियों में जन्म लेते रहना पड़ा। कर्मों के बीच भी बड़े दृढ़ बन्धन से रहे। सर्व आपदाओं के स्रोत ये कर्म ही हैं, सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकारों के निमित्त ये कर्म ही हैं। इनमें रह कर बरबादी ही अपनी की। विकारों में मैं रहा यह तो साक्षात् बरबादी है, अशान्ति और क्लेश पाये विभावों में अब तक बरबाद ही बरबाद हुए इन सब संगों से। यहाँ रह कर आबाद रहने की गुंजाइश नहीं, सब से अलग रहकर ही आबाद हो सकोगे।

अपने सहज स्वरूप को जानो और स्वरूप को जानने में ही तृप्त रहो

अपने स्वरूप के परिज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ जानकारी बनाने में तृप्ति हो ही नहीं सकती, कृतार्थता हो ही नहीं सकती। बताओ, अच्छा क्या क्या जानोगे फिर। जानने की उत्सुकता तो विषयसाधनों की ही तो होगी। विषय हैं ६ प्रकार के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द और कीर्ति। स्पर्श भी दो किस्म में आते हैं एक तो कामवासना साधक, दूसरे शारीरिक सातावह। कामवासना साधक हैं स्त्री, पुरुष के देह। सो इस स्पर्शविषयसाधन में बड़ा अनर्थ है (१) आत्म रक्षक चैतन्यस्वरूप सहजपरमात्मत्व से भेंट होने की पात्रता समाप्त हो जाना। (२) विविध मलपूरित देह में घृणित रमण कर दुर्लभ नर जीवन के क्षणों को व्यर्थ खोना और पापबंध करना। (३) मनोबल वचनबल व कायबल नष्ट करना। (४) भय चिन्ता शोक अपमान का अवसर बनाना इत्यादि। शारीरिक सातावह स्पर्श से भी क्या गुजारा चलता है। शरीर शीर्ण होने वाला है तत्सम्बन्धित आराम के विकल्प में क्या लाभ है। इसके राग में भी विकट कर्मबन्ध होता है। स्पर्शवान के जानने के श्रम से कोई लाभ नहीं। ऐसे ही बड़े अनर्थ रस, गंध, वर्ण, शब्द के विषयों में रमण करने से होते हैं। कीर्तिकल्पना का विषय तो आत्मा के प्रति बड़ा कड़ा मजाक है। देखो ना, कीर्ति चाहने वाला पदार्थ आत्मा नहीं, जो कीर्ति चाही जाती वह भी परमार्थ तत्त्व नहीं, चाह स्वयं परमार्थ नहीं, तथा ये चारों बातें अनित्य हैं सो कैसा नाटक है कि अनित्य अनित्यों में अनित्य की अनित्य चाह करता है। इन सब बाह्य विषयों से विविक्त आत्मा का सहज स्वरूप परमार्थ तत्त्व है। अपने सहज स्वरूप को जानो और स्वरूप के जानने में ही तृप्त रहो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस दुःखमय संसार में विषय साधन बना लेने से मेरे आत्मा का क्या पूरा पड़ेगा

मान लो खूब मकान हो गये, स्त्री पुत्रादि भले हो गये, अन्न, रस, धन, भंडार विपुल हो गया, नित्य अनेक व्यंजन भोज्य पदार्थ प्राप्त होने लगे, वैभव बढ़ गया, सारे ठाठ हो गये, किन्तु यह तो बताओ कि ये कब तक साथ रहेंगे और जब तक साथ भी हैं, क्या कुछ शान्ति प्राप्त की है। अरे आत्मन् ! तुम स्वयं ही ज्ञान मय हो, आनन्द मय हो, जब कभी बाह्य विषयों के प्रसंग में आनन्द मानते हो सो वह आनन्द तेरा ही है, पदार्थ का नहीं, वह आनन्द तेरे से ही आया है याने तेरे ही आनन्द गुण से व्यक्त हुआ है, बाह्य पदार्थ से नहीं आया। बाह्य साधन कितने ही जुट जाओ, तेरे लिये ये सब भी कुछ नहीं है। तेरा तेरे से बाहर कुछ है ही नहीं, तुझमें बाहर से कुछ आ नहीं सकता। तुम जिस स्वरूप हो उस ही का तुममें विकास है, विलास है। बाह्य साधन के प्रसंग में जो कुछ भी तेरे आनन्द गुण व्यक्त हुआ उससे भी तेरा पूरा न पड़ेगा, वह सुख क्षणिक है, पराश्रयज है, कर्मोदयाधीन है। तब बाह्य विषय साधनों से तो पूरा पड़ने का अवसर ही क्या। पदार्थों के व्यामोह में मत रहो। बाह्य पदार्थों का व्यामोह बड़ा विकट अंधेरा है। व्यामोह भीषण आन्तरिक अन्धकार में भटकना भटकना ही रहेगा। देख तेरा तेरे ही सहज स्वरूप के अनुभव से पूरा पड़ेगा, अपनी स्वरूपानुभूति से ही संकट समाप्त होंगे। खूब परख कर लो मनन कर लो, इस दुःखमय संसार में विषय साधन बना लेने से मेरे आत्मा का क्या पूरा पड़ेगा।

इस असार संसार में कीर्ति स्थापित करने से कौन सा लाभ लूट लिया जायेगा

कुछ लोग तो धन जोड़ जोड़ कर धनिक कहला कर जगत में कीर्ति फैलाने की सोचते हैं, तो कुछ लोग दान दे देकर दानी, दानवीर, कुबेर आदि कहलवाकर जगत में कीर्ति फैलाने की सोचते हैं। कुछ लोग विद्या पढ़कर भाषण दे देकर लोगों से वक्ता, नेता, भूषण आदि कहलवाकर जगत में कीर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फैलाने की सोचते हैं तो कुछ लोग अनेक लेखकों के लेखों को थोड़े हेर फेर के शब्दों से रचकर लेखक, कवि आदि कहलवाकर जगत में कीर्ति फैलाने की सोचते हैं। कोई लोग व्यायाम, कला, युद्ध कौशल आदि दिखाकर जगत में कीर्ति फैलाने की सोचते हैं। तो कोई लोग तपश्चरण, व्रत आदि की बातें दिखा कर जगत में कीर्ति फैलाने की सोचते हैं। जरा पुण्य का उदय मिला, जिसकी जो मर्जी में आये सो करे, लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिये कि हम इतने ही नहीं हैं जैसे कि आज हैं, समय इतना ही नहीं है जितना कि इस भव में या क्षणिक विकल्प में है, दिखने वाले प्राणियों का परमार्थ स्वरूप यह नहीं है जितना कि जो कुछ परिचय माना जा रहा है। मायामय जगत में मायामय लोगों में माया करके मायामय कीर्ति कुछ थोप भी दी जो कि मूलतः असार है तो इससे आत्मा का क्या भला होगा। विकल्पों में जो नरभव के अमूल्य क्षण व्यतीत कर डाले उस महाभूल का दुष्परिणाम तो भोगना ही होगा। हे मन वाले ! मन पर भी कुछ दया कर, अपने पर भी कुछ दया कर। यदि उपयोग अपने सहज स्वरूप में स्थापित कर दे तो इससे परमार्थ आनन्द प्राप्त कर लेगा। दुनियावी संसर्ग से तो तू बरबाद ही हो जायेगा। सोच फिर सोच संसार में कीर्ति स्थापित करने से कौन सा लाभ लूट लिया जायेगा।

भाव की सम्हाल में ही मेरा सर्वस्व कल्याण है

अन्य पदार्थ की सम्हाल के विकल्प में दुर्लभ मानव जीवन का समय खोना है। इसका फल दुर्गमन है। अनादि अनन्त काल में तीनों लोक में अकेला यह मैं स्वयं का शरण हूँ जिम्मेदार हूँ सार हूँ। अतः अपनी ही सम्हाल में कल्याण है। अपनी सम्हाल भी क्या, भाव की सम्हाल ही अपनी सम्हाल है। भाव की सम्हाल में ही मेरा सर्वस्व कल्याण है।

मेरा मैं ही सहाय हो सकूँगा, दूसरा कोई नहीं

कोई भी पदार्थ किसी अन्य पदार्थ में अपना द्रव्यत्व गुण पर्याय कुछ भी नहीं दे सकता अतः कोई पदार्थ किसी अन्य का वस्तुतः सहाय नहीं है। मैं आत्मा हूँ यहाँ तो किसी अन्य का स्पर्श भी नहीं हो सकता। तब अन्य के सहाय हो सकने की गुंजाइश भी नहीं। मेरा मैं ही सहाय हो सकूँगा, दूसरा कोई नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ परमार्थ कुछ नजर ही नहीं आता किसको क्या बताना

प्रशंसा ! प्रशंसा ! प्रशंसा का अर्थ क्या ? मोही अज्ञानी दुःखी संसारी प्राणियों द्वारा अपने स्वार्थवश किसी की पर्याय का कुछ प्रलाप कर देना यही तो प्रशंसा है। इसमें सार क्या है ? बेकार बात है। यहाँ किसको क्या जताना। बाहर में पदार्थ में भी सार क्या है। यहाँ परमार्थ कुछ नजर ही नहीं आता किसको क्या बताना।

इस नर जीवन का एक एक क्षण अमूल्य है, इसे व्यर्थ न खोओ

क्षणों का व्यर्थ खोना तो कहलाता है यह कि विषयों में उपयोग को लगाना और क्षणों का सार्थक करना कहलाता है यह कि उपयोग को स्वभाव में रमाना। विषयों में उपयोग की लगाना इस कारण व्यर्थ कार्य कहलाता है कि विषयों में रमने से पहले, रमण काल व भविष्य में आकुलता रहती है तथा कर्म बन्ध ऐसा कठिन होता है जिसके फल में अनेक दुर्गतियों में जन्म लेना पड़ता है, दुर्गतियों में नरक, पशु, कीट, आग, हवा, जल आदि में जन्म लेना। इससे अधिक अनर्थ और क्या होता। यह सब विषयों में रमने का कुपरिणाम है। अब नरभव के क्षणों को सार्थक बनाने का उपाय सुनिये। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है उसमें उपयोग करने के उद्यम में आनन्द और शान्ति पूर्वक लगा जाता है, उपयोग होने से शुद्ध ज्ञान और आनन्द की अनुभूति और बुद्धि होती है। ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मस्वभाव में समा जाना इस ही को तो मोक्ष कहते हैं। ऐसे परमार्थ कार्य की सिद्धि की पात्रता श्रेष्ठ मन वाले मनुष्य में है। अब समझ लीजिये नर जीवन का क्षण कितना महत्त्वपूर्ण होता है। भले ही आज कल के यहाँ के नरभव से मुक्ति साक्षात् नहीं हो, लेकिन निकट काल में मुक्ति पाने का अन्तरंग साधन तो विशेषतया यहाँ बनाया ही जा सकता है। नर जीवन किसी विशेष पुण्य से ही प्राप्त होता है, यह यों ही नहीं मिल जाता, बड़ा दुर्लभ है यह। इस नर जीवन का एक एक क्षण अमूल्य है, इसे व्यर्थ न खोओ !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय रमण अतीव कठिन हलाहल विषपान है

हलाहल विषपान से यहाँ प्राणवियोग हो जाता है, शरीर यहीं पड़ा रह जाता है, आत्मा परभव में चला जाता है। शरीर अचेतन है, उसका कुछ भी हो, चाहे उसे जला दिया, या गाड़ दिया जाय, कुछ भी हो शरीर का क्या बिगाड़। आत्मा जो परभव में चला गया उसने नया शरीर पा लिया। और नया शरीर पा लिया, इससे भी क्या, बीत तो रही है उस पर अपने अर्जित कर्म विपाक की बात। अब देहियों के देह देखो कैसे विकराल अटपट दुःखधाम देह हैं। पृथ्वी, जल, आग, हवा, वनस्पति, निगोद, कीट, पतंग, पशु, पक्षी, नारकी आदि के देह ही समझ लो कैसे दुःखहेतु हैं। इन सब देहों में फँसना विषयरमण का फल है। देखो इन्द्रिय ज्ञान के साधन हैं इनका दुरुपयोग करने का फल यही है। स्पर्शन इन्द्रिय मिली, हाथ पैर मिले तो इनका सदुपयोग है साधुओं की सेवा करना, उपस्थेन्द्रिय का सदुपयोग है ब्रह्मचर्य से रहना और सर्व में कान्तिमान रहना, लेकिन स्पर्शनेन्द्रिय का विरुद्ध उपयोग किया तो इसका फल है एकेन्द्रिय में जन्म लेना जिससे कि यह प्राणी जड़ सा रहे और कुछ क्रिया भी न कर सके, अन्य भी विकट फल हो सकते हैं। रसनेन्द्रिय का सदुपयोग है हितमित प्रिय वचन बोलना व संयम रखना लेकिन रसनेन्द्रिय का दुरुपयोग किया तो इसका फल है जिह्वाविहीन देहों में जन्म लेना, अन्य भी विकट फल हो सकते हैं। घ्राणेन्द्रिय का सदुपयोग है प्राणायाम, सहज श्वास पूर्वक ध्यान में लगाना, लेकिन गन्धानुरागवश इसका दुरुपयोग किया तो घ्राणविहीन देहों में जन्म लेना इसका फल है, अन्य भी विकट फल हो सकते हैं। चक्षु इन्द्रिय का सदुपयोग का सदुपयोग है देव शास्त्र गुरु के दर्शन से ज्ञानाराधन करना, लेकिन इसका दुरुपयोग किया तो इसका फल है नेत्रविहीन देहों में जन्म लेना, अन्य भी विकट फल हो सकते हैं। कर्णेन्द्रिय का सदुपयोग है ज्ञानप्रद वैराग्यप्रद वचन सुनना, लेकिन दुरुपयोग किया इसका फल है कर्णविहीन देहों में जन्म लेना। मन का सदुपयोग है भेद विज्ञान करके अभेद आत्मस्वभाव में ज्ञान का लगाना, लेकिन मन की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का जो दुरुपयोग किया तो इसका फल है मनविहीन देहों मे जन्म लेना। देखो हलाहल विषपान से तो एक ही मरण होता है, किन्तु विषय रमण से विकट संकट मय विविध देहों में जन्म कर करके मरण कराते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहना। विषयरमण से विरक्त होओ विषय रमण अतीव कठिन हलाहल विषपान है।

प्रभो ! मेंरा मैं मेरी दृष्टि में रहे, बस एक यही आकाँक्षा है

बाह्य विषयक सब तरह का उपयोग बनाकर देख लिया, सर्वत्र हैरानी ही हैरानी रही, इस हैरानी का मुझे कुछ विषाद नहीं, होओ हैरानी लेकिन खास विषाद तो इस बात का है कि उन हैरानी वाले उपयोगों में आनन्द धाम ज्ञायकस्वभाव अन्तः प्रकाशमान सहज परमात्मतत्त्व की सुध भूले रहा पाप तो मैं इस ही को समझता हूँ कि पावन चैतन्य महा प्रभु की सुध भूल जाना। जगत के जितने पाप हैं उन सब पापों में यह मूल में बात पड़ी हुई है कि उन पापों के समय सहज चित्स्वरूप की सुध नहीं है, इसी कारण वे सब मन वचन काय की क्रिया में पाप हैं। हे नाथ ! सब परख लिया, सब देख लिया। परिजनों को उपयोग में बसा कर भी समय खोया, वहाँ भी कुछ न पाया, खोया ही खोया है। समाज में मित्रजनों में उपयोग बसा कर भी देख डाला, वहाँ से इस मुझको मिलता ही क्या, अपना उपयोग आसन चैतन्य महाप्रभु क़े विराजने लायक न रहने दिया। विषयभोग कीर्तिलिप्सा आदि में उपयोग को भ्रमाया, अहर्निश वासना मलीन ही रही, वहाँ पाने का नाम नहीं, खोने की गिनती नहीं। हे वीतराग देव ! तुम्हारे स्वरूप को देख कर स्मृत होने वाली अविकार स्वभाव, आनन्दधाम अन्तस्तत्त्व की सुध में सकल संकट समाप्त हो जाते हैं और सहज आनन्द की अनुभूति होने लगती। वह अलौकिक लाभ है, अदृष्ट दर्शन है, अनिष्टहरण है। अहा, यह सहज स्वरूप में कैसा अद्भुत, अलौकिक, पावन, समृद्ध है। अहं का सहज स्वरूप जानने पर अपना केवल्य प्रकट हो जाता है। केवल्य में केवल की सहज समृद्धता शान्तता परिपूर्ण हो जाती है। प्रभो ! मेरा मैं मेरी दृष्टि में रहे, बस एक यही आकाँक्षा है।

रहे सहे शेष जीवन का पूरा सदुपयोग करो

इस जीवन का भी समय सारा विकल्पों में ही गँवा दिया। जो आदत अनादि से बनाये चले आ रहे हो उस कुटेव से इस पावन जीवन में भी बाज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न आये। सोच तो अपनी गई बीती—बचपन में कुछ विवेक भी न था, व्यर्थ के अनेक प्रयोजन बनाकर, असार बात की भी हठ करके रो रोकर अज्ञान में बचपन गँवाया। यद्यपि वह बचपन सरल जीवन था, निश्चिन्त जीवन था, किन्तु विवेक बिना वह सब व्यर्थ ही गया। जवानी आई तो वहाँ भी विवेक को अवसर न दिया, विवेक करने का सामर्थ्य तो प्रकट हो गया, किन्तु विषयों की इतनी भरमार, विषयों के प्रति इतना अनुराग प्रवाह कि विवेक को जागृत होने का समय ही न दिया गया। कभी कुछ विवेक की झलक होने को होती थी कि विषय, राग आदि की वासना के कारण इसमें सफलता की पूर्ति न हो पाई। जवानी में तन, मन, वचन, बल खो चुकने के बाद वृद्धावस्था में क्या किया जाय। खेद की बात है कि इतना दुर्लभ नर तन पाया जिसमें सदा के लिये संकटों से छुटकारा पाने का उपाय बना सकते थे, विषय कषाय विकल्प विचारों में गँवा दिया। अब क्या होता, पछताना भी कल्याण के लिये मदद करेगा, पर इतने से तो काम न चलेगा, अब जो जीवन बचा है उसमें ही मुक्ति का कुछ उपाय बना लो। क्षण भर भी यदि विशुद्धता आ जावे माया मिथ्या निदान निर्मूल हो जावे तो मुक्ति पाना नियत कर सकते हो। प्रियतम ! अब अपनी बरबादी न करो, अब भी सब कुछ हो सकता है। समस्त विषयों को असार जान कर सर्व विकल्प छोड़ दो, ज्ञानानन्दघन अन्तस्तत्त्व को उपयोग में बना लो, बनाये रहो, निश्चित कल्याण होगा। रहे सहे जीवन का पूरा सदुपयोग करो।

अनधिकृत वस्तु पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करना ही सर्व विडम्बनाओं का मूल है

निश्चय से देखिये तो आत्मा का आत्मातिरिक्त अन्य किसी वस्तु पर कुछ अधिकार ही नहीं है अतः परमाणु मात्र पर भी आत्मीयता का परिणाम करे, परमाणुमात्र में भी कुछ हेर फेर का परिणाम करे तो यह आत्मा की धृष्टता है। जिस पर अपना अधिकार नहीं उसमें अपने कर्तत्व भोक्तृत्व का विकल्प करना अपने आत्मदेव पर अन्याय करने की बात होने से दुष्टता है, दुर्गतियों में गिरने मरने का उपाय होने से ही पाप भाव है। अब व्यवहारतः भी देखिये— गृहस्थ का अपनी गृहिणी के सिवाय अन्य स्त्रीमात्र पर अधिकार नहीं है, यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई गृहस्थ परस्त्री से स्नेह करने लगे उसके संयोग का यत्न करने लगे तो यह उसका अनधिकृत वस्तुपर अधिकार जमाने का प्रयत्न ही तो हुआ, सो देख लो इस प्रयत्न में कितनी विडम्बनायें हो जाती हैं। रात दिन शल्य चिन्ता भय आधीनता के कारण डोलने फिरने आदि का परिश्रम ये सभी आपदायें आ जाती हैं और फिर परलोक में विषय क्लेश सहना तो अतीव कठिन दुष्फल है। इसी प्रकार पर द्रव्य, परकार्य, पराधिकार आदि अनधिकृत बातों पर अधिकार जमाने के प्रयत्न से दुष्फल होता है। अब जरा भूले भटके साधुओं की इस प्रसंग की बात देखो—शरीर, पीछी, कमंडलु, दो पुस्तकें इन चार चीजों के सिवाय उसके पास कुछ नहीं रहना चाहिये, याने इन चार के अलावा बाकी सब चीजें साधु के लिये अनधिकृत हो गईं, अब यदि कोई साधु तखत आसन चौकी, त्रिपाल, बर्तन चूल्हा, चक्की, मोटर साइन बोर्ड आदि कुछ भी रखता है तो उसे कितनी विडम्बनायें होती हैं आत्मध्यान के लक्ष्य से गया, चिन्ता शल्य का घर बन गया, लोगों को खुशामदी वचन कहने पड़ते, परभव में नरक निगोद के दुःख सहन करने पड़ेंगे। सच पूछो तो वह साधु अपना व समाज का सब का अनर्थ कर रहा है क्योंकि उसने अनधिकृत वस्तु पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। अनधिकृत वस्तु पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करना ही सब विडम्बनाओं का मूल है।

विषयों में सार रंच भी नहीं है

विषय से मतलब है विषय भूत साधन का तथा उसके उपयोग इन्द्रिय और मन के विषय भूत साधन हैं स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द और लोकेषणा। स्पर्श से मुझ आत्मा का क्या प्रयोजन तथा क्या सम्बन्ध। मैं आत्मा हूँ स्पर्श रहित अमूर्त प्रतिभास मात्र, स्पर्श बाह्य पदार्थ है मूर्त अचेतना, मूर्त अचेतन से मुझे क्या मिलेगा, उससे ही क्या किसी भी द्रव्य से मुझे कुछ नहीं मिल सकता। स्पर्श का विकल्प बनाकर व्यर्थ बरबाद ही हो लेता हूँ। स्पर्श में मेरा रंच भी हित नहीं है। मुझ में रस, गंध, रूप, शब्द की भी ऐसी ही भिन्नता एवं असारता है तथा विकल्प का आश्रय होने से क्लेशहेतु है। लोकेषणा तो व्यर्थ की बुरी बला है, पवन का कठिन साधन है। मायामयी दुनिया के लोगों से जो खुद ही कर्म प्रेरित, अशरण, अपावन एवं क्लिष्ट हैं, भव भव में भटकनहारे हैं, इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोगों से भला कहलवा लेने की चाह करना कितनी गंदी तृष्णा है। यह सारा लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है याने संख्यातीत घन प्रमाण है इतने बड़े लोक में कहीं के मरे कहीं भी जनम ले सकते हैं ! यहाँ मरण किये बाद न जाने कितने दूर कहाँ जन्म होगा, और यहीं के यहीं भी जन्म हो तो भी नया जन्म हो जाने से परिचित सब पूर्ण अपरिचित हो जावेगा सो मेरे बाद फिर इसका क्या। यदि निर्मल भाव पूर्वक जिये तो जीवन सफल है, अन्यथा जीवन बेकार है। किसी विषय में किसी भी बाह्य पदार्थ में उपयोग मत फंसाओ। बाह्य अर्थों में, विषयों में सार रंच भी नहीं है।

चित्स्वरूप स्मरण के अतिरिक्त अन्य कुछ काम ही करने को नहीं है

अमूर्त प्रतिभासमात्र यह मैं आत्मा अपने से बाहर कुछ कर ही नहीं पाता हूँ। प्रत्येक प्रसंग में मैं केवल भावरूप परिणमता हूँ, इसके विपरीत कुछ हो ही नहीं सकता। अनादि से भव भव में भटकता देह धरता चला आया, बहुत व्याकुलतायें करता आया, मगर वहाँ देखो तो वहाँ भी सिवाय भाव के और क्या कर पाया। इच्छा, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, विषयोपभोग आदि के सब भाव ही तो हैं। विषय प्रसंग में जरा यह जीव विशेष भ्रम कर लेता है कि लो मैं भोजन को चबा तो रहा हूँ, परिजनों को पाल तो रहा हूँ, वैभव को कमा रहा हूँ, अरे और भी कितनी बातें बताते जाओ, सर्वत्र भाव ही भाव होता रहा। अमूर्त आत्मा में मूर्त वस्तु का सम्बन्ध ही नहीं हो पाता करने की बात तो दूर है। मैं मात्र अपने भावों को ही कर पाता हूँ साधारणतया तो यह पूर्ण निश्चित हो ही गया कि भाव करने के अतिरिक्त अन्य कुछ काम करने को पड़ा ही नहीं है। अब भावों भावों में ही छंटनी कर लो कि भावों में कौन सा भाव करणीय है, हितरूप है, और कौन भाव अकरणीय है, अहितरूप है। जो दुःखरूप भाव हैं वे अकरणीय हैं। दुःखरूप भाव वे हैं जो पराश्रयी हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द और दृश्यमान मानव देह के सम्बन्ध में जो विचार बनाते हैं जो राग द्वेष की सृष्टि करते हैं वे भाव सब दुःखरूप हैं। निज सहज स्वरूप के उपयोग में जो भाव होता है वह शान्ति है। परमात्मस्वरूप के स्मरण में भी चितस्वरूप का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही तो स्मरण है मंगल लोकोत्तम शरण्यभूत काम यही है। चित्स्वरूप स्मरण के अतिरिक्त अन्य कुछ काम ही करने को नहीं है।

निरन्तर सहज चिन्मात्र अन्तस्तत्त्व की दृष्टि रहना इससे बढ़कर अन्य कोई समृद्धि नहीं

विकार हुआ, च्यवन हुआ, पतन हुआ, दुर्गतिगमन हुआ, जन्म और मरण हुआ, सब कुछ बरबाद होने के बावजूद भी अब सोचो गुजारा किसमें है। हम तुच्छ हैं, प्रगति कर ही नहीं सकते यों सोचकर पहिले से निरुत्साह होकर विभाव गर्त में पड़े रहने से तो आत्मा का गुजारा होगा नहीं! कितनी भी बरबादी हुई हो, कितना ही बाह्यदृष्टि में उलझ गया हो, कितना ही स्नेहतन्त्रता हो गई हो; आखिर हित मार्ग यही है कि यथार्थ आत्मस्वरूप की जानकारी करना। विकार अवस्था में विशेष उपयोग हो गया हो, तब भी यह अनुत्साह नहीं करना कि इतना वाह्यासक्त उपयोग परमात्मत्व की भक्ति करने का यत्न करे वह बेतुकी बात है। अपवित्र हो या पवित्र हो, किसी भी अवस्था में हो परमत्मस्वरूप का ध्यान पवित्र बना देता है, पापों से छुटा देता है। ज्ञानानन्दस्वभावमय निजतत्त्व की जितनी झलक व दृष्टि बन सकती हो, कुछ भी होती हो, रंच भी बनती हो वह भी सुधाबिन्दु है। परमपिता सहज परमात्मत्व की उपासना में रंच रंच भी रह सकोगे तो कभी यह उपासना परमकृपा का रूप रखकर भला कर देगी। लोक में आदेयतत्त्व अन्य कुछ है नहीं। सारा विश्व पिण्ढोला, सारे भोग, सारी सम्पदा, सब जीर्ण तृणवृत असार हैं। आत्मातिरिक्त अन्य कुछ भी इसका रंच भी कुछ नहीं है। निरन्तर सहज चिन्मात्र अन्तस्तत्त्व की दृष्टि रहना, इससे बढ़ कर अन्य कोई समृद्धि नहीं।

सर्व पर पदार्थ का सम्पर्क अत्यन्त व्यावृत्त करने योग्य है

कुछ वैभव निकट हो गया तो क्या जागीर मिल गयी ? आत्माराम के हाथ तो वही फल आयेगा जैसाकि परिणाम किया जा रहा हो। पर पदार्थ की ओर वह जाने वाला परिणाम तो वहिर्गत व मिथ्यापरिणाम में रहने वाले को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्गति व दुर्देह ही प्राप्त होगा। वर्तमान के निकट वैभव से क्या राजी होना वह तो भिन्न है और शान्तिपथ से हटा देने का आश्रय है। कुछ राग दिखाने वाले प्राणी मिल गये तो क्या सर्वस्व मिल गया ? आत्माराम को परतन्त्र, दुःखित और जन्म मरण की परम्परा में लगा देने वाला साधन है वह तो। किसी के क्षणिक राग से, तत्काल छल पूर्वक एवं दुःखविपाक राग से क्या पूरा पड़ता, बल्कि इसी भव में इन्हीं क्षणों में भय, शोक, चिन्ता, अपमान व शल्य का घर बनना पड़ता है। समस्त पर पदार्थ आखिर पर ही तो हैं ! उनसे सम्बन्ध क्या, मिलना ही क्या। मिलता है भला बुरा सब कुछ अपने आपमें अपने भावों से। जो भव पर का आश्रय करते हैं और पर को विषय करके अपने आप में मलिनताकी दृष्टि करते हैं उनसे तो अनिष्ट ही संसार ही क्लेश ही फल मिलता है, इससे है तो परिहार्य विभाव ही, किन्तु विभावों के नोकर्मों का परिहार रखा करें तो वृत्ति से विभावों के प्रक्षय होने का अवसर रहेगा और तब स्वाश्रय भावरूप परिणम कर विशुद्ध आनन्द का लाभ ले लिया जायेगा। पर पदार्थ पर सम्पर्क रंच भी हितरूप नहीं। अतः आत्महित दृढ़ता से प्रगति की चाह वालों यह निःशंक अंगीकार करो सर्व पर पदार्थ का सम्पर्क अत्यन्त व्यावृत्त करने योग्य है।

निर्विकल्प चैतन्य रस निर्भर अन्तस्तत्त्व का आलम्बन ही एक मात्र शरण है

यह मैं आत्मा अपने ही क्षेत्र में प्रदेश में रहकर अपना परिणमन किया करता हूँ। बस इतना ही मेरा संक्षिप्त परिचय हित के लिये पर्याप्त है। वस्तुतः मैं अपने किसी परिणमन के लिये परका अवलम्बन नहीं लेता हूँ, मेरे समस्त परिणमन मेरे अवलम्बन से ही प्रकट होते हैं, परन्तु जिन परिणमनों के लिये बाह्य पदार्थों का विषय होना होता है उन परिणमनों को परावलम्बी परिणमन कहा जाता है। तथा जिन परिणमनों के लिये परका विषयमात्ररूप से भी आश्रय नहीं किया जाता है उसे स्वावलम्बी परिणमन कहते हैं। वस्तुतः मेरे शुद्ध, शुभ सभी परिणमन मेरे ही अवलम्बन से, मेरे ही उपादान से प्रकट होते हैं अब इस निज में ही छटनी करिये जो परिणमन रागरसनिर्भर भाव का आलम्बन लेकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकट होते हैं वे अहित और अशुद्ध परिणमन तथा जो परिणमन चैतन्यरसनिर्भर भाव का आलम्बन लेकर प्रकट होते हैं वे हैं हितरूप और शुद्ध परिणमन। रागरसनिर्भर बहिरतत्त्व के आलम्बन में सारा अकल्याण ही अकल्याण है, आकुलता हो, जन्म मरण हो, शरीर प्राप्ति की परम्परा बने, सारा ही क्लेश है उसे शरण कैसे कह सकते हैं वह तो बरबादी का ही कारण है, पर मोही लोग इस बहिस्तत्त्व का ही आलम्बन लेकर राजी रहने का स्वप्न देख रहे हैं। इधर देखो यह मैं चैतन्यरसनिर्भर निर्विकल्प अन्तस्तत्त्व आनन्दधाम हूँ इसकी दृष्टि मात्र से ही सारे पाप, क्लेश दूर हो जाते हैं। निर्विकल्प चैतन्यरस निर्भर अन्तस्तत्त्व का आलम्बन ही एक मात्र शरण है।

केवल सहज चिन्मात्र यह मैं मेरी दृष्टि में रहूँ इससे बढ़कर अन्य कुछ भी निधि नहीं

निधि वह कहलाती है जिसे पाकर सारे प्रयोजन सिद्ध किये जा सकें और अपने को भरा पूरा अनुभवा जा सके। अब संसार के पदार्थों पर नजर डाल कर परख लो कि लोक में है कहीं कोई ऐसा पदार्थ कि जिसे पा कर हमारे समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जायें फिर कोई काम करने को पड़ा न रहे और मैं अपने को भरापूरा अनुभव सकूँ। सुनते हैं ऐसी निधि चक्रवर्ती के पास होती है लेकिन चक्रवर्ती के तो प्रयोजन व काम और अधिक बढ़ जाते हैं तो उसकी निधि से तो उसे सुख न मिला, उल्टा क्लेश ही बढ़ा। चक्रवर्ती की निधि से बढ़ कर और क्या बताओगे दुनियावी निधि। यहाँ तो लोग साधारण वैभव पाकर भी उसमें चित्त बसाये रहते हैं, पर पदार्थ है ये ऐसा ख्याल तक भी नहीं लाते। ये प्राप्त सामागम चेतन मित्रजन क्या तुम्हारा साथ निभावेंगे। अरे जिनका ख्याल कर करके तू पाप कमा रहा है वे अपने कल्पित सुख तक ही राजी हैं और तब तक ही दिखावटी साथी हैं। ये प्राप्त समागम अचेतन वैभव धन सम्पदा तुम्हारे परिणाम में क्या ये प्रसाद उत्पन्न कर देंगे, कैसे शान्तिदायक होंगे, शान्ति तो रहो दूर, उल्टा भय, शोक, चिन्ता, बरबादी ही के कारण बनते हैं। बाहर में मेरा कहीं कुछ भी शरण नहीं है, न कुछ है मेरा। मेरा सर्वस्व मुझ में ही है। जब ब्रह्म पदार्थ का आश्रय करके भी कुछ सुख सा आता है वह भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाह्य में नहीं आता, बाह्य से नहीं आता, मेरे में ही मेरे से वह सुख प्रकट होता है। विशुद्ध आनन्द का तो मैं स्वभाव वाला ही सहज स्वरूप हूँ। मेरे विशुद्ध के अवलम्बन में सर्व समृद्धियाँ प्रकट होती हैं। केवल सहज चिन्मात्र यह मैं मेरी दृष्टि में रहूँ इससे बढ़कर अन्य कुछ भी निधि नहीं।

निज सहज स्वरूप की दृष्टि का ही यत्न किये जावो, कभी पार होओगे ही

वाह्य समागमों का अवलम्बन लेना निज सहज स्वरूप की दृष्टि का बाधक है। यह स्वयं की ही कमजोरी है कि वाह्य समागम मिलने पर उस समागम की ओर झुकाव होता है, उससे भी विशेष कमजोरी यह है कि वाह्य समागमों में रहने के लिये ही राजी है राजी रहता है, उससे भी विशेष कमजोरी यह है कि प्रयत्न कर करके वाह्य समागम जुटाता है और उसमें राजी रहता है। ये सब वाह्य यत्न, विकल्प जीव को अहितकारी हैं। हितकारी तो मात्र निज सहज स्वरूप का अवलम्बन है। निज सहज स्वरूप के उपयोग में, निज सहज स्वरूप की प्रतीति में, निज सहज स्वरूप के निकट उपयोग रखने में ही वास्तविक तृप्ति, तुष्टि व शान्ति रहती है। वाह्य समागम में यदि अनिष्ट समागम हो गया तो जीव प्रकट अशान्त रहता ही है, यदि इष्ट समागम भी हो गया तो अनेक विकल्प कर करके वह अशान्त रहता है, यह तो अन्तः विपत्ति है ही, किन्तु इस पर एक विपत्ति और नई खड़ी हो जाती है कि इसको व्यक्त विपत्ति न मान कर इसमें राजी रहता है और इस विपदा को बढ़ावा देता रहता है। तथ्य तो यह है कि निज सहज स्वरूप की दृष्टि छोड़ कर वाह्य में उपयोग लगाये तो वह उपयोग पर का आश्रय करने से चलित रहा करता है इसमें क्लेश होना प्राकृतिक वात है और निज सहज स्वरूप की दृष्टि में रहने से निज ध्रुव की प्राप्ति है इसी कारण संसार संकटों से मुक्त हो जाता है, संसार सागर से पार हो जाता है। अतः निज सहज स्वरूप की दृष्टि का यत्न किये जावो, कभी पार होओगे ही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी भी पर वस्तु की इच्छा, आशा व प्रतीक्षा मत करो

समस्त पर वस्तुयें मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं, वे अपना अपना स्वरूप लिये हुये हैं अतः अपने ही परिणाम के उत्पादव्यय से परिणमते रहते हैं, उन पर तेरा अधिकार कभी हो ही नहीं सकता है। अब अनाधिकृत वस्तु पर जी मचलाना अनर्थ की बात है। ऐसी हठ यह जीव अनादि से करता चला आया है और दुःखी होता आया है। देखो जब किसी पर वस्तु की इच्छा करने का विचार जगता है तब ही यह जीव दुःखी हो जाता है, जब उस पर वस्तु की इच्छा बन जाती है तब उसकी सिद्धि के लिये आतुर, व्यग्र हो जाता है। पर है क्या ? कुछ तथ्य नहीं, कुछ लाभ नहीं। यह जगत व्यवहार, इसकी एष इस जीव पर बड़ा उपसर्ग है। इन मायामय पुरुषों में मेरी इज्जत कम न हो जाय ऐसी मायामयी परिणति इस मायामय मुझ पर बड़ी विपदा है। मैं अन्तः सहज ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, इस स्वरूप में विकार ही नहीं है, फिर विपदा का नाम भी क्या ? इस मुझ सहज ज्ञानानन्द स्वरूप को यह पुरुषसमूह जानता ही नहीं है, फिर इन सब के लिये मैं क्या ? अहा, अन्तः परखते जाओ, कैसा सहज चित्प्रकाश है, कैसा सहज आनन्द है। खुद ही में तो सर्व वैभव है। खुद का पता नहीं तो लापता लिफाफे की तरह बेकार है अथवा डोलना मात्र है। खुद के अपरिचत में ही इच्छा जगती है, फिर आशा बनती है, फिर कुछ सिद्धि की आशा करके प्रतीक्षा की महाज्वाला में भुनना पड़ता है। यदि सर्व संकटों से दूर रहना चाहते हो तो किसी भी पर वस्तु की इच्छा, आशा व प्रतीक्षा मत करो।

इस मायामय देह की अपनायत ही सर्व संकटों का मूल है

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीट, पंतग आदि जीव भी अपने देह में अपनायत बुद्धि रख ही रहे हैं, उनका बोध, अव्यक्त कीट पंतगों की तो चेष्टा से कुछ उनकी बुद्धि विदित भी हो जाती है, किन्तु पृथ्वी आदि की बुद्धि भी सर्वसाधारणों को विदित नहीं होती, लेकिन देह की अपनायत पृथ्वी आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवों के भी है इसी बुद्धि पर जन्म मरण ये करते रहते हैं। जन्म मरण के संकटों के समान और संकट है भी क्या। और फिर क्षुधातृषा के संकट इन पर लदे हैं, शीत या गरमी से ये सब मुरझा जाते हैं प्राण छोड़ देते हैं ऐसी शीत गर्मी का इन पर संकट। ये सारे संकट देह की अपनायत से ही तो हो रहे हैं। अब संज्ञी जीव के संकट विचारो जो पृथ्वी आदि पतंगों तक असैनी पञ्चेन्द्रियों तक जो संकट लदे हैं वे तो सब संकट इस पर हैं ही, पर विकल्पों से इज्जत मान की वासना बढ़ जाने से व्यर्थ के अनर्थ के भय संकट और छा जाते हैं। इन संज्ञी जीवों में भी बड़ी दुर्दशा अज्ञानी मनुष्यों की हो रही है मेरी इज्जत रहे पर, किसकी ? मायामय असार देह को निरखकर कहता है इस मेरे की। इस मायामय इज्जत की आशा में यह अज्ञानी मानव बेचैन रहता है, कल्पित संकटों से इतना घिरा हुआ रहता है कि हार्टफैल जैसी नौबत जब चाहे तैयार रहती है। ये सब संकट इस मायामय देह की अपनायत से ही तो होते हैं। संकटों से मुक्त होने का तेरा अभिप्राय है तो सर्वप्रथम यह निर्णय कर कि इस मायामय देह की अपनायत ही सर्व संकटों का मूल है।

सत्य देखो, सत्य समझो, सत्य रहो रंच भी क्लेश नहीं है

हमारा सत्य वह है जो लाग लपेट से रहित है। वह हमारा निज सहज स्वभाव है हमारा चैतन्य स्वरूप। यह निज सहज सिद्ध शाश्वत चैतन्यस्वरूप ही हमारा देव है, यही हमारा परमगुरु है, यही हमारा नायक है, यही मैं हूँ। इस सत्य को देखने पर अन्य कुछ भी देखने की लालसा नहीं रहती। हमारा सत्य निज सहज प्रतिभास मात्र अन्तस्तत्त्व है, जो मेरे सत् में सहज शाश्वत हो वही हमारा सत्य है इस सत्य को समझने पर अन्य किसी भी पदार्थ के समझने की उत्सुकता ही नहीं रहती। हमारा सत्य है अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण चैतन्य स्वभाव। इस रूप उपयोग बनाये रहने की स्थिति में ऐसा सहज स्वाधीन विलक्षण उत्कृष्ट एकरस आनन्द अनुभूत होता है कि फिर अन्यत्र रमने का भाव ही नहीं होता। किन्हीं शब्दों में कहो शान्ति के उपाय की बात निज अन्तस्तत्त्व में ही मिलेगी। तब यही निष्कर्ष निकला कि सत्य देखो, सत्य समझो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य रहो, इस ही पुरुषार्थ में उत्कर्ष है, कल्याण है। इसको ही आर्ष में रत्नत्रय कहा गया है। यह रत्नों का त्रितय संसार संकटों से छूटने का उपाय है। अब तक इस चेतन सत् से जो अत्यन्त विविक्त है ऐसे देह को आत्मा माना आत्मा जाना और इसी ही में रमा, इसी से जन्म मरणादि के नाना संकट सहे। अब इस असत्य के लगाव को हटाकर सत्य अंगीकार करो। सत्य देखो, सत्य समझो, सत्य रहो, फिर रंच भी क्लेश नहीं है।

क्या यह कोई उत्कृष्ट तत्त्व है जिसमें चित्त लगा रहे हो, ठीक ठीक निर्णय कर लो।

उत्कृष्ट तत्त्व तो अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण अमूर्त चैतन्य मात्र अन्तस्तत्त्व है, जिसके अवलम्बन से भव भव के संचित कर्म भी ध्वस्त हो जाते हैं, जिसके उपयोग में कोई विकल्प क्लेश रहते नहीं, जिसके आश्रय से सहज स्वाधीन शाश्वत रह सकने वाला आनन्द प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है, पर है, परभाव है वह सब तेरे लिये कुछ नहीं है। परभाव से तेरा कुछ भी लाभ नहीं है बल्कि पर की ओर, परभाव की ओर उपयोग लगाने से तेरे ही विभाव परिणमन के कारण तेरी विडम्बना हो रही है यह पूर्ण सत्य है कि तेरा निज सहज ज्ञायक स्वरूप ही सर्वस्व है, अन्य कुछ तेरा है ही नहीं। तेरा कल्याण अर्थात् आनन्दमय परिणमन तेरे केवल स्वरूपमात्र रहने में ही है। स्वरूपमात्र रह सकने का उपाय अर्थात् विकार रहित होकर केवल अनादि अनन्त सहज ज्ञानस्वरूप का संवेदन करते हुए सहज आनन्द अनुभवते रहने का उपाय अपने आपको केवल ज्ञानमात्र निरखते रहना है ! इस पावन शिव स्वरूप अलौकिक पुरुषार्थ के अलावा अन्य कुछ विकल्प करना शान्ति का आधार नहीं है। पंचइन्द्रिय के विषयों में चित्त लगाना, यश कीर्ति सन्मान इज्जत प्रतिष्ठा प्रशंसा पाने का ख्याल बनाना ये सब तो महती मूर्खतायें हैं। इन इन्द्रिय व मन के विषयों की प्राप्ति के उपाय में भी उलझन खेद, इनके भोगते समय में भी क्षोभखेद, इनके भोगने के पश्चात् ताप संताप, उत्तरकाल में दुर्गतियों के संकट, देखो—जहाँ विडम्बनायें हैं। प्रियतम ! विवेक करो—क्या यह कोई उत्कृष्ट तत्त्व है जिसमें चित्त लगा रहे हो, ठीक ठीक निर्णय करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धन्य है उस स्वस्थ ज्ञान को जहाँ तर्क, विचार, चिन्तन भी परिग्रह जँचते हैं।

जब ज्ञान शान्त, विश्रान्त, विकल्पश्रमहीन रहना चाहता है वहाँ वह तर्कहीन, विचारहीन, चिन्तनहीन भी रहना चाहता है। ऐसे स्वस्थ ज्ञान में ही शान्ति है। धन्य है उस स्वस्थ ज्ञान को जहाँ तर्क, विचार, चिन्तन भी परिग्रह जँचते हैं।

किसी भी पर द्रव्य का किसी भी प्रकार संपर्क करना व्यर्थ अनर्थ है

पर द्रव्य से अपना सुख समझना पहिली तो यही गलती है, फिर उसके वियोग में आकुलता करना, पर द्रव्य के संयोग की प्रतीक्षा करना यें सारी व्यर्थ की गलतियाँ हैं। इनमें न तो आत्मा को लाभ है और न भविष्य का कुछ लाभ है, बरबादी ही बरबादी सदा है। किसी भी पर द्रव्य का किसी भी प्रकार संपर्क करना व्यर्थ अनर्थ है।

इस जीवन में करने को केवल एक ही काम है सहज ज्ञान स्वभाव में ज्ञान को रमाओ

किसी भी पर पदार्थ में चित्त लगाओ, सिवाय व्याकुलता के और कुछ नहीं पाओगे। पर में चित्त लगाने का प्रयोजन इस जीव ने सुख समझा है और सुख के साधन ६ प्रकार के विषय माने हैं जिनका ग्रहण यह जीव ५ इन्द्रिय व १ मन इन छह करणों द्वारा करता है। ये विषय विषयसाधना व सुखमान्यता ये सब निपट असार हैं। (१) मन से प्रेरित स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में प्रधान विषय हैं स्त्री पुरुष के देह में रमना सो यह विषय मूढ़तापूर्ण एवं अत्यन्त कुत्सित हैं। इसमें न तो देह की पुष्टि है, न मनोबल वृद्धि है, न वचनातिशय की सामग्री है, न बाद में कुछ तृप्ति के योग्य लाभ है, बल्कि देह निर्बल जीर्ण शीर्ण हो जाता है जिससे अनेक व्याधियाँ लग ज़ाती हैं, मन का बल नष्ट हो जाता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिससे कायरता भय चिन्ता आदि की स्थिति बन जाती है, वचनबल भी नष्ट हो जाता है जिससे इसके वचन से दूसरे प्रभावित नहीं हो पाते, इतना ही नहीं, किन्तु ग्लानि भी करने लगते हैं, इस काममूढ़ता में आगे के लिये तो मिलेगा ही क्या, वर्तमान में भी ईमान, पवित्रता, देहवीर्य, मनोबल, वचन बल सब कुछ खोया जा रहा है। (२) और कर्म बन्ध की विपदा ऊपर से लाद ली जाती है, रसनेन्द्रियविषय साधन है रसास्वाद में रमना, इसमें क्या मिला घाटी नीचे माटी, कर्मबन्ध की विपदा और ऊपर से लाद ली। (३) घ्राण, नेत्र व कर्ण इन्द्रिय के विषयसाधन में भी मिलता कुछ नहीं, उपयोग बिगाड़ कर कर्मबंध की विपदा और लाद ली जाती। (६) मन का विषय है लोगों में बड़प्पन साबित करना, यह तो महामूढ़ताभरी चाह है। जब प्रत्येक वस्तु स्वरूपचतुष्टय से है परचतुष्टय से नहीं और इसी कारण यह जीव स्वयं ही स्वयं का सृष्टा है तब पर दृष्टि करके मिथ्या विकल्प करना और उपयोग बिगाड़ कर जन्म मरण की परम्परा बढ़ाना व कर्मबन्ध की विपदा अपने पर लादना इसमें अनर्थ ही अनर्थ है। अन्य कुछ भी काम करना अनर्थ है। इस जीवन में करने को केवल एक ही काम है सहज ज्ञानस्वभाव में ज्ञान को रमाओ।

हित क्या इस भाव में है, कल्पना उठे तो पूछ लो और निर्णय कर लो

जो निर्विकल्प समाधि में रत नहीं, जिनके विकल्प कल्पनायें उठ रही हैं उनको अपने आप में चल रही परिणति के प्रति पूछ लेना चाहिये—"हित क्या इस भाव में है।" बात यह है कि वर्तमान स्थिति में जो भाव उठ रहे हैं वे भाव कषाय वृत्ति वाले हैं, साथ ही मन्दकषाय होने से, सत्ज्ञान प्रकाश होने से धर्म वृत्तिका अंश भी है तो भी पूछने और निर्णय के प्रसंग में आलोचना के लिये उसका लक्ष्य नहीं होता क्योंकि जिस औपाधिक भाव को दूर करना है पृच्छना और निर्णयता उसी भाव की होती है। हाँ तो जो परिणति हो रही हो जो कषाय विकल्प चल रहा हो उसके प्रति पूछें कि—हित क्या इस भाव में है। यह विभाव बन्धन है, विपदा है, विपदा का हेतुभूत है, यह भाव अहित रूप ही है, औपाधिक परिणति में हितपना नहीं है। जगत के जीव, अज्ञानी जीव इस विभाव को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वीकार करते हैं अर्थात् विभाव को स्वरूप मानकर रहते हैं। अहित, भिन्न, विपत्तिरूप, बन्धरूप व जन्म मरण की परम्परा बनाने वाले भाव को स्व अंगीकार करने वाले भाव में कुशलता संभव ही नहीं है। हित क्या इस भाव में है कल्पना उठे तो पूछ लो और निर्णय कर लो।

अन्तर्भावना

१. मैं देह से निराला, अमूर्त ज्ञानमात्र हूँ।

२. मैं ज्ञान को ही करता हूँ व ज्ञान को ही भोगता हूँ।

३. मैं ज्ञान सिवाय अन्य कुछ न करता हूँ और ज्ञान सिवाय अन्य कुछ न भोगता हूँ।

४. मैं तो ज्ञानमात्र हूँ इस ज्ञानमात्र मुझ का स्वरूप ज्ञान स्वरूप सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।

५. मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, इसका केवल जानना ही काम है, इसके आकुलता का कोई काम ही नहीं।

६. मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, इसमें विकार का कोई काम ही नहीं।

७. मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान स्वरूप का ही स्वामी हूँ विकार का स्वामी नहीं।

८. मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। विकार का जिससे अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध हो वह विकारों को पाल पोष सके तो पाले पोषे, मुझसे तो विकारों का लगाव बनाने का व्यवसाय नहीं हो सकेगा।

९. मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, सो ज्ञानभावस्वरूप पदार्थों में किसी वस्तु का चिपकाव ही कैसे हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi